1784
रामायण
के
पात्र
नानाभाई भट्ट

अभिनंदन

हमारे परम मित्र श्री काशिनाथजी त्रिवेदी महात्मा गांधी के समय में उनके आश्रम में रहे हैं। तब से गुजरात के अनेक साहित्यकारों तथा शिक्षा-विदों के साथ उनके प्रेम-संबंध स्थापित हुए हैं और उनकी गुजराती भाषा की उत्तमोत्तम कृतियों का हिंदी में अनुवाद करके उन्हें हिंदी के पाठकों के समक्ष पहुंचाने में विशेष प्रयत्नशील रहे हैं।

श्री काशिनाथ के इस प्रकार के सराहनीय प्रयत्नों में श्री नानाभाई भट्ट कृत 'रामायणनां पात्रो' नामक पुस्तकावली का हिंदी अनुवाद उन्होंने सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली के द्वारा हिंदी पाठकों के समक्ष पहुंचाया है।

श्री नानाभाई भट्ट गुजरात के एक उत्तम शिक्षाविद् हो गये हैं। वह महात्मा गांधीजी के शिक्षा-संबंधी विचारों में श्रद्धा रखने वाले थे और अपनी शिक्षा-संस्थाओं में इसका प्रयोग भी किया। काशिनाथजी त्रिवेदी के हाथों इस पुस्तकावली के द्वारा हिंदी पाठकों की बहुत अच्छी सेवा की गई है। उसके लिए मैं उनका सप्रेम अभिनंदन करता हूं।

गांधी विद्यापीठ
वेड़छी (गुजरात)

—जुगतराम दवे

नानाभाई भट्ट विरचित

रामायण के पात्र

खण्ड २

भरत, हनुमान, कैकेयी, विभीषण, मंदोदरी तथा
रावण के चरित्र का प्रेरणादायक अनुशीलन

अनुवादक
काशिनाथ त्रिवेदी

१९७८

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक के पहले खंड में पाठक राम, सीता और लक्ष्मण के जीवन से संबंधित सामग्री का अनुशीलन कर चुके हैं। इस खंड में भरत, कैकेयी, हनुमान, विभीषण, मंदोदरी और रावण का चरित्र-चित्रण किया गया है।

जैसा कि हम पहले निवेदन कर चुके हैं, हम पूरी सामग्री को एक ही पुस्तक में देना चाहते थे और उसी प्रकार की योजना हमने तैयार की थी, लेकिन उससे पुस्तक का आकार बहुत बढ़ जाता। इसलिए उसे दो खंडों में विभाजित कर देना पड़ा। यद्यपि प्रत्येक चरित्र अपने आपमें स्वतंत्र है, फिर भी सारे चरित्रों में एकसूत्रता है। अत: पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे दोनों खंडों को मिलाकर पढ़ने की कृपा करें। लेखक ने प्रत्येक पात्र के चित्रण में कोई-न-कोई विशेषता रखी है।

मूल पुस्तक गुजराती में है। उसका अनुवाद श्री काशिनाथ त्रिवेदी ने इतना सुंदर किया है कि लगता है, मानो मूल पुस्तक हिंदी में ही लिखी गई है।

इस पुस्तक के विद्वान लेखक द्वारा रचित और मंडल से प्रकाशित महाभारत की पात्र-माला पाठक पढ़ चुके हैं। हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर भी वे अपूर्व आनंद अनुभव करेंगे, साथ ही लाभ तो उन्हें होगा ही।

स्वर्गीय नानाभाई भट्ट के अनन्य साथी और सहयोगी श्री जुगतराम दवे ने इस पुस्तक के लिए अपने आशीर्वाद के रूप में प्रेरणा और प्रोत्साहन से भरपूर पंक्तियां लिख भेजी हैं, उसके लिए हम आंतरिक कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

स्वर्गीय नानाभाई के सुपुत्र श्री भरत भट्ट ने इस पुस्तक के हिंदी अनुवाद को प्रकाशित करने की अनुमति देकर हमें अनुगृहीत किया है।

—मंत्री

अनुक्रम

भरत ५–३०

१. मामा के घर ५
२. माता की भर्त्सना ८
३. रामचंद्र की खोज में १६
४. चरण-पादुका २१
५. बंधु-मिलन २६
६. महाप्रस्थान ३०

कैकेयी ३१–५७

१. विष के बीज ३१
२. बेचारे दशरथ ! ३८
३. अयोध्या की राजरानी ४५
४. बाजी बिगड़ी ५०
५. पश्चाताप ५५

हनुमान ५८–९५

१. अंजना-सुत ५८
२. रामचंद्र-दर्शन ६२
३. सागरोल्लंघन ६८
४. सीता की खोज ७४
५. मूक सेवक ८१
६. भक्त हनुमान ८६

विभीषण ९६–११६

१. लंका-वास का निर्णय ९६
२. अंतर का उद्वेग १००
३. रावण का त्याग १०५
४. लंका में राज्याभिषेक ११३

मंदोदरी ११७–१४०

१. मनोव्यथा ११७
२. अरण्यरुदन १२३
३. सौभाग्य की लालसा १३०
४. मंदोदरी-विलाप १३७

रावण १४१–२२०

१. वरदान १४१
२. राक्षसकुल-भूषण १५०
३. मंगलाचरण १६३
४. छोटी-सी बदली १६७
५. मामा-भानजा १७१
६. तपस्वी के वेश में १७७
७. लंका में सीता १८२
८. अशोक वन में १८९
९. विभीषण का त्याग १९४
१०. घिरते बादल २०२
११. अंतिम संग्राम २१५

रामायण के पात्र

खंड २

भरत

: १ :

मामा के घर

कैकेयी केकय देश के राजा की कन्या थी। राजगृह केकय देश की राजधानी का नगर था; भरत कैकेयी का पुत्र और लक्ष्मण-शत्रुघ्न सुमित्रा के पुत्र थे। किंतु आपसी स्नेह की दृष्टि से जैसे राम-लक्ष्मण की एक जोड़ी थी, वैसे ही दूसरी जोड़ी भरत-शत्रुघ्न की थी।

अयोध्या में महाराज दशरथ के स्वर्गवासी बनने के काफी समय पहले से भरत और शत्रुघ्न मामा के यहां गये हुए थे। जब महाराज दशरथ ने राम का अभिषेक करने का संकल्प किया, उस समय ये दोनों भाई राजगृह में थे। जिस समय कैकेयी ने दशरथ से आग्रह करके राम को वनवास और अपने भरत को अयोध्या का राज्य दिलाया, तब भी ये दोनों भाई मामा के यहां थे। राम, लक्ष्मण और सीता वन में रहने गए, उस समय भी ये दोनों भाई मामा के घर थे और आखिर राम के वियोग के कारण जिस समय दशरथ ने अपनी देह छोड़ी, उस समय भी ये दोनों भाई मामा के साथ थे। केकय देश की प्राकृतिक छटा, राजगृह का विपुल वैभव, नाना अश्वपति का लाड़-दुलार और मामा युधाजित की भावपूर्ण मित्रता के वातावरण में भरत-शत्रुघ्न अपने जीवन का आनंद लूट रहे थे।

एक दिन दोपहर के समय मामा-भानजे बगीचे में बैठे बात कर रहे थे।

युधाजित ने कहा, "भरत ! आज तू जितना दुःखी दिखाई दे रहा है, उतना मैंने तुझे कभी नहीं देखा। आज सुबह से ही तेरे चेहरे की चमक

गायब हुई लगती है। इसीलिए सुबह मैंने बात करनेवालों को बुलवा भेजा था और इसीलिए आज संगीत का जलसा भी रखा है। ये नाटक भी इसी-लिए किये जा रहे हैं; लेकिन तू न तो हँसता है, न बोलता है, न ध्यान ही देता है। तुझे हो क्या गया है? यदि किसी ने तुझे बुरा लगने योग्य कोई काम किया हो, तो तू मुझे बता। मैं उसका फैसला करूं।"

शत्रुघ्न बोला, "बड़े भैया! मुझे भी आप आज सुबह से ही उदास दीख रहे हैं; लेकिन मैं कारण पूछ नहीं पाया। कहिए तो सही, आखिर हुआ क्या है?"

भरत ने कहा, "मामा! भैया शत्रुघ्न! आज रात मुझे इतना बुरा सपना दिखाई दिया है कि उसकी याद मेरे मन से हट ही नहीं रही है।"

युधाजित ने पूछा, "ऐसा क्या सपना देखा है? और क्या सपने की बातें सब सच ही होती हैं? हमारे मन में जो विचार छिपे रहते हैं, मौका पाकर वे ही सपने के रूप में बाहर आ जाते हैं।"

भरत बोला, "बात इतनी ही नहीं है। सपनों का भी एक प्रामाणिक शास्त्र है और इस शास्त्र के ज्ञाता सपनों का ठीक-ठीक अर्थ भी बता देते हैं।"

शत्रुघ्न ने पूछा, "पहले अपना सपना तो सुनाइए।"

भरत ने कहा, "मैंने नींद में देखा कि महाराज दशरथ गायों के मल-मूत्र से भरे एक बड़े गड्ढे में पड़े हैं। उसी में पड़े-पड़े वे तैरने लगे हैं और हँसते-हँसते अंजलि भर-भरकर तेल पीने लगे हैं। तेलवाला पानी पीते-पीते उनका सिर अंदर चला गया और वे डूब गए। फिर सागर सूख गया और सारी पृथ्वी अंधकार से घिर गई। महाराज जिस हाथी पर बैठा करते हैं, उसका एक दांत टूटा और सारे पेड़ बिना डालियों और पत्तों के दिखाई पड़े। आगे यह भी देखा कि महाराज काले वस्त्र पहनकर लोहे के एक सिंहासन पर बैठे हैं और काले और पीले वर्ण वाली स्त्रियां उन्हें पीट रही हैं। फिर देखा, महाराज के गले में लाल फूलों की माला है, भाल पर लाल चंदन का तिलक है और वे गधे जुते रथ में बैठकर तेजी से दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं। इसके अलावा, ऐसा लगा, मानो लाल वस्त्रोंवाली एक स्त्री उन्हें हँसते-हँसते खींच रही है। मामा! आप चाहे जो सोचें, मैं तो

निश्चित रूप से मानता हूं कि या तो मैं नहीं, या महाराज नहीं, या राम-लक्ष्मण दो में से कोई एक नहीं। इसी कारण मैं आज इतना हैरान हो गया हूं। मेरा मुंह सूख रहा है। वैसे, डर का कोई प्रकट कारण नहीं दीखता है; फिर भी मेरा मन भयभीत हो गया है।"

इस प्रकार बातचीत चल रही थी कि इतने में अयोध्या से वसिष्ठ के भेजे राजदूत राजगृह आ पहुंचे। बगीचे में आकर उन्होंने भरत के चरण छुये और बोले, "महाराज भरत ! वसिष्ठ ने आपकी कुशल पूछी है और अत्यंत आवश्यक काम के लिए आपको वापस बुलाया है। आप दोनों के लिए और मामा के लिए ये मूल्यवान उपहार भेजे हैं। इन्हें स्वीकार कीजिए।"

दूतों की ये बातें सुनकर भरत ने पूछा, "मेरे पिता दशरथ तो कुशलपूर्वक हैं ? महात्मा रामचंद्र और लक्ष्मण अच्छी तरह हैं न ? माता सुमित्रा और माता कौशल्या दोनों सानंद हैं ? मेरी स्वार्थी, क्रोधी और अभिमानी माता कैकेयी भी ठीक है न ?"

वसिष्ठ ने दूतों को कड़ी चेतावनी दी थी कि वे भरत को अयोध्या-संबंधी कोई सच्ची जानकारी न दें; इसलिए दूतों ने कहा, "महाराज ! आप जिन-जिनकी कुशल पूछ रहे हैं, वे सब ठीक हैं। आप रथ तैयार करवाइए।"

भरत तुरंत अपने नाना अश्वपति के पास पहुंचा और बोला, "महाराज ! मुझे तत्काल अयोध्या बुलाया है। मैं जा रहा हूं। फिर आऊंगा।"

अश्वपति बोले, "बेटा ! मैंने सोचा भी नहीं था कि तुम्हें इतनी जल्दी में जाना पड़ेगा। अपनी माता को हम सबके कुशल समाचार देना। अपने पिता, अपने राम-लक्ष्मण और वसिष्ठ को भी हमारी कुशल कहना। तू इतने वर्षों के बाद हमारे घर आया; लेकिन हमें तुझको जो देना चाहिए, सो सब देने के लिए तूने हमें समय ही नहीं दिया। खैर, तुम लोग जाओ। भानजे के नाते जो देना है, वह बाद में भेज दिया जायगा।"

: २ :

माता की भर्त्सना

राजगृह से अयोध्या आने में भरत को पूरे सात दिन लग गये। रास्ते में सुदामा और शतद्रू, गंगा और सरस्वती, कुलिंगा और यमुना-जैसी नदियों की पवित्रता को अपने अंतर में स्थान देता हुआ और अंशुधान तथा प्राग्वट, तोरण तथा जम्बूप्रस्थ, वरुण एवं हस्ति पृष्ठक-जैसे गांवों की जनता को निहारता-निरखता भरत आठवें दिन अयोध्या के निकट पहुंचा। दूर से ही अयोध्या को देखकर भरत बोला, "शत्रुघ्न ! मुझे अपनी अयोध्या आज अयोध्या ही नहीं लग रही है। सूर्य महाराज की किरणों के क्षितिज पर आने के पहले ही जिस अयोध्या के नर-नारियों का शांत कोलाहल शुरू हो जाता है,वह अयोध्या आज एकदम गूंगी-सी क्यों लग रही है ? अयोध्या के जो बाग-बगीचे रसिक नर-नारियों के प्रणय-कल्लोल से सुबह-शाम गूंजा करते हैं, वे बाग-बगीचे आज सूने क्यों दिखाई पड़ रहे हैं ? इस समय तक तो हाथियों पर, घोड़ों पर और दूसरे वाहनों पर चढ़कर जाने-आनेवालों की खासी चहल-पहल जिन रास्तों पर शुरू हो जाती है, वे रास्ते आज वीरान क्यों हैं ? आकाश से बातें करने की इच्छा रखनेवाले पेड़ों की ये कतारें इस प्रकार स्तब्ध क्यों खड़ी हैं ? सवेरे-सवेरे ही पेड़ों पर बने अपने घोंसलों में चहचहानेवाले पक्षी आज कहीं दीखते क्यों नहीं हैं ? मामा के घर जाते समय हम जो अयोध्या अपने पीछे छोड़ गए थे, मुझे ऐसा लग रहा है, मानो वह अयोध्या ही अब नहीं रही। शत्रुघ्न ! मुझे ये सारे अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं। मन में शंका उठ रही है कि अयोध्या में सब कुछ कुशल है या नहीं ?"

भरत के रथ ने वैजयंत द्वार के रास्ते से अयोध्या में प्रवेश किया। द्वार पर खड़े लोगों के मुरझाए मुंह देखकर भरत का हृदय व्याकुल हो उठा। वह फिर बोला, "हमें इतनी जल्दी में क्यों बुलाया गया है ? मेरे मन में अनेक आशंकाएं उठ रही हैं। शत्रुघ्न ! अयोध्या के इन घरों को

तो देख ? क्या ये ऐसे नहीं लगते, मानो सालों की धूल इन पर चढ़ी हो ? और देख, क्या चबूतरों पर बैठे इन लोगों के फीके चेहरों से ऐसा नहीं लगता, मानो ये अधपेट खा रहे हों ? इन देवालयों में कहीं लोगों की कोई हलचल नहीं दीखती। ऐसा लग रहा है, जैसे कई दिनों से कोई इन देवों की पूजा नहीं कर रहा। और ये बाजार देखे ? बिलकुल सूने। जान पड़ता है, जैसे कई दिनों से कोई सामान ही नहीं खरीद रहा है। व्यापारियों के मुंह बिलकुल निस्तेज हो गए हैं। शत्रुघ्न ! क्या ऐसा नहीं लगता कि नगर के सभी स्त्री-पुरुषों की आंखें रो-रोकर सूज गई हैं ?"

इस प्रकार कहता हुआ भरत राजमहल में पहुंचा। वहां महाराज दशरथ को न पाकर वह सीधा कैकेयी के राजमहल में चला गया।

कैकेयी महल के एक विशाल कक्ष में सोने के आसन पर बैठी थी। भरत का आना सुनकर वह अचानक उठ खड़ी हुई। भरत ने माता के चरणों में मस्तक रखा। कैकेयी ने भरत का सिर थपथपाया और उसे मन-ही-मन आशीर्वाद दिया। फिर उसे अपनी बांहों में समेटकर और गोद में बिठाकर पूछने लगी, "बेटा ! नानाजी का घर छोड़े आज कितने दिन हुए ? आने में जल्दी करनी पड़ी है, इसलिए थक गया होगा। क्यों नानाजी सकुशल हैं ? मामा ठीक हैं ? राजगृह के सारे समाचार शुरू से सुना।"

कैकेयी के ये वचन सुनकर भरत बोला, "नानाजी ठीक हैं, मामा भी अच्छी तरह हैं। सबने तुम्हारी कुशल पूछी है। राजगृह छोड़े आज आठवां दिन है। नानाजी ने उपहार आदि तो बहुत भेजे हैं। वे सब बाद में आयेंगे। हमें जल्दी थी, इसलिए हम आगे चले आए। मां ! अब मैं जो पूछूं, उसका जवाब दे ! तेरा यह सोने का पलंग सूना क्यों है ? इन नौकर-चाकरों के चेहरों पर मुझे रौनक क्यों नहीं दिखाई देती ? महाराज दशरथ अधिकतर तो हमारे महल में ही रहते हैं। वे आज यहां दीख क्यों नहीं रहे हैं ? क्या आजकल महाराज माता कौशल्या के महल में रहने लगे हैं ? मुझे उनके चरणों की वंदना करनी है, इसीलिए मैं यहां आया हूं।"

कैकेयी को इस बात की खूब शिक्षा मिली थी कि किस समय क्या कहना, कैसे कहना और कितना कहना। भरत के प्रश्नों के उत्तर में उसने कहा, "बेटा भरत ! जो गति एक दिन सब प्राणियों की होती है, वही

गति महाराज की हुई है।"

कैकेयी के मुंह से ये शब्द निकले ही थे कि भरत को मूर्च्छा आ गई और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ा। बेहोशी की हालत में ही उसके मुंह से एक 'आह' निकल गई। कुछ समय बाद जब मूर्च्छा दूर हुई, तो वह एक बालक की तरह विलाप करने लगा। भरत को इस प्रकार शोक करते देखकर कैकेयी ने कहा, "उठ, बेटा भरत ! उठ। तेरे-जैसे लोग इस तरह शोकवश होंगे, तो दुनिया में धीरज कौन रख पायेगा ? तुझ-जैसे चरित्रवान और संयमी लोग तो कभी दुखी होते ही नहीं। तुझे तो अपनी बुद्धि स्वस्थ रखकर अब इस बात का निर्णय कर लेना चाहिए कि आगे क्या होगा।"

भरत फूट-फूटकर रोने लगा, रोते-रोते जमीन पर चारों ओर लोटने लगा और बोला, "माता ! हम तो इस बात की राह देख रहे थे कि जब रामचंद्र का राज्याभिषेक होगा, तो महाराज हमें बुलावा भेजेंगे; किंतु आज आकर देखता हूं तो महाराज ही परलोक सिधार गए हैं। मां ! महाराज को ऐसा कौन-सा रोग हो गया था कि हमें खबर भेजने का समय भी तुझे नहीं मिला ? राम-लक्ष्मण बड़े भाग्यशाली रहे कि उन्हें अंत में महाराज का अग्निसंस्कार करने का अवसर मिला। मुझे बाहर से आया जानकर महाराज मुझको तुरंत बुलाते थे और अपने पास खींचकर मेरा सिर थपथपाये बिना नहीं रहते थे। यही क्यों, वे तो अपने हाथों मेरे मुंह पर जमी धूल पोंछा करते थे। भरत को उन हाथों का वह मीठा स्पर्श अब कहां मिलेगा ? मां ! अब तो एक रामचंद्र ही हैं। वही पिता हैं, वही बड़े भाई हैं। मेरे यहां आ जाने के समाचार उनके पास भेज दो। महाराज नहीं हैं, तो बड़े भैया के चरणों में वंदना करके ही मैं पवित्र हो लूंगा। माता कैकेयी ! महाराज अंतिम समय में क्या कह गए हैं ? मैं उनके अंत समय के शब्द सुनना चाहता हूं। मां ! मुझे उनका अंतिम संदेश कह सुनाओ, उन शब्दों को मैं अपने हृदय में अंकित करके रखूंगा।"

कैकेयी बोली, "महाराज ने 'हा राम ! हा सीता ! हा लक्ष्मण !' कहते-कहते अपना शरीर छोड़ा। अब अयोध्या के हितैषी यह आशा रखते हैं कि वे राम; लक्ष्मण और सीता को वापस अयोध्या ला सकेंगे।"

भरत ने आश्चर्य से पूछा, "माता ! क्या बड़े भैया आज अयोध्या में

नहीं ? राम, सीता और लक्ष्मण कहां हैं ? क्या महाराज के अवसान के समय रामचंद्र भी यहां नहीं थे ?"

कैकेयी ने जवाब दिया, "नहीं। रामचंद्र तो सीता और लक्ष्मण को अपने साथ लेकर और वल्कलधारी बनकर दंडकारण्य चला गया है।"

भरत का कुतूहल बढ़ा। उसने पूछा, "दंडकारण्य ? क्या राम ने किसी सुपात्र ब्राह्मण का द्रव्य चुरा लिया था ? क्या राम ने किसी गरीब आदमी को पीड़ा पहुंचाई थी ? क्या राम ने पर-स्त्री पर कुदृष्टि डाली थी ?"

जवाब में कैकेयी बोली, "भरत ! ऐसी कोई बात नहीं हुई। इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती कि रामचंद्र ब्राह्मण का धन चुरा ले, किसी को पीड़ा पहुंचाए या किसी पर-स्त्री पर कुदृष्टि डाले। बेटा, भरत ! असल में बात यों हुई है। जब मैंने सुना कि राम का राजतिलक होने जा रहा है, तो मेरे मन में तेरे लिए लोभ जागा और मैंने महाराज से मांगा कि मेरे भरत को युवराज बनाइये और राम को वनवास दीजिये। महाराज ने मुझे बहुतेरा समझाया, पर मैं अपनी बात पर अटल रही। इस पर महाराज ने अपने वचन की रक्षा के लिए वही किया, जो मैंने चाहा था। उन्होंने सीता और लक्ष्मण के साथ राम को वन के लिए बिदा किया। राम का वियोग असह्य हो जाने के कारण स्वयं महाराज ने अपना शरीर छोड़ दिया। बेटा, भरत ! मैं तो स्त्री ठहरी, मुझे कौन अपने माथे पर मुकुट धारण करना है ! मैंने जो कुछ किया है, वह अपने भरत के लिए ही किया है। तू इसे समझ ले और राजगद्दी को स्वीकार कर ले। शोक-संताप करना हो, तो वह भी कर ले। फिर शांत हो जा। बाद में वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों द्वारा अभिषेक सम्पन्न होने पर अयोध्या के शासन की बागडोर अपने हाथ में थाम ले।"

कैकेयी की इन बातों ने भरत के लिए आग में घी का काम किया। वह बोला, "कैकेयी ! यह तूने क्या किया ? महाराज के जाने का दुःख तो था ही, उस पर तूने तो बड़े भैया के वनवास की बात करके घाव पर नमक छिड़का है। तू कैसी भी क्यों न हो, आखिर है तो स्त्री ही। तेरे मोह के कारण महाराज उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाये। जब पुरुष ढलती उमर में जवान स्त्री से विवाह करता है, तो उसके हाथों यही सब

होता है। मूर्ख कैकेयी ! मुझे लग रहा है, मानो तेरा जन्म इक्ष्वाकु-कुल का नाश करने के लिए ही हुआ है। कौशल्या और सुमित्रा ने तेरा क्या बिगाड़ा था ? कौशल्या तो उल्टे तेरी भूलों को पी जाती है, तेरे हठी स्वभाव को सहन करती है और तुझे छोटी बहन की तरह रखती है। उसी कौशल्या के पुत्र को वन में भेजने की हिम्मत तूने कैसे की ? अपने थोड़े-से स्वार्थ के लिए तूने सारे कुल का सत्यानाश कर डाला ! मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि महाराज के मंत्रियों ने महाराज को भी क्यों नहीं रोका ? पापिनी ! तूने हमारे कुल की परंपरा को भारी आघात पहुंचाया है; पर मैं उस परंपरा को खंडित नहीं होने दूंगा। हमारे कुल की परंपरा है कि सबसे बड़ा बेटा ही गद्दी पर बैठता है। तेरे समान मूर्ख स्त्रियां इस परंपरा को तोड़ना चाहें और राजा मोहवश वैसा करने को तैयार भी हो जाय, तो भी किसी को इसे बरदाश्त नहीं करना चाहिए। अयोध्या के विशाल राज्य का भार उठाने की शक्ति रामचंद्र के सिवाय और किसमें है ? मुझमें यह शक्ति होती, तो भी ओ दुष्ट माता ! उस शक्ति का उपयोग करके तेरा मनोरथ पूरा करने की मेरी इच्छा ही नहीं है। मैं रामचंद्र को वन में से वापस लाऊंगा और अयोध्या में उनका क्षुद्र सेवक बनकर रहूंगा।"

इतना कहकर भरत कुछ समय के लिए शांत हुआ, पर कैकेयी पर निगाह पड़ते ही फिर उबल उठा, "पापिनी माता ! तू ही अयोध्या छोड़कर चली जा। महाराज का नाम लेकर झूठ-मूठ के आँसू मत बहा ! राम ने तेरा क्या बिगाड़ा था कि उन्हें वन में भेजकर तू आज सारे राज्य का विनाश करने को तुल गई ? तूने नौ महीने तक मुझे गर्भ में रखा, पर तू ही मेरी शत्रु निकली। मैं समझ नहीं पाता हूं कि अश्वपति की पुत्री ऐसी राक्षसी कैसे निकली ? हाय, तूने राम को तो वन में भेज दिया, पर क्या कभी यह भी सोचा कि बाद में कौशल्या की क्या दशा होगी ? तू मेरी माता है, इस-लिए माँ बनने का मतलब तो तू समझती ही है। मां बनने का मतलब होता है बच्चों के लिए तड़प उठना; मां बनने का मतलब होता है अपने बच्चों के लिए मर मिटना; मां बनने का मतलब होता है कि बच्चे कहीं बाहर गए हों, तो उनके लिए चिंतित होना; मां बनने का मतलब होता है कि

बच्चों की आंख दुखे या सिर दुखे, तो मन में घबराहट अनुभव करना; मां बनने का मतलब होता है कि बच्चों के परदेश में होने पर स्वयं सुख से सोना नहीं; मां बनने का मतलब होता है, बच्चों के लिए जीना। तू जानती है, आज कौशल्या सिर पीट-पीट कर किस तरह अपनी रातें बिताती होंगी ? जानती है, आज सुमित्रा लक्ष्मण की याद कर-करके अपने आंसुओं से अपना बिछौना किस तरह भिगोती होंगी ? कैकेयी ! कौशल्या राम के बिना छटपटाकर मर जायेंगी। मैं आज ही जाकर रामचंद्र को अयोध्या वापस लाता हूं और आवश्यकता हुई, तो उनके बदले मैं चौदह वर्षों का वनवास भुगत लेता हूं ! अरे, तू ही वन में जा अथवा तू आग में जलकर मर जा। अयोध्या में तेरा क्या काम है ?" इस तरह कैकेयी को उलाहना देता हुआ और मन-ही-मन भारी दुःख का अनुभव करता हुआ भरत धरती पर बैठ गया।

इसी बीच अयोध्या के सुमंत आदि मंत्री भरत के पास आये। उन्हें देखकर भरत की आंखें फिर डबडबा आईं। उससे रहा नहीं गया। वह बोला, "महाशयो ! मुझे राज्य की लेशमात्र भी इच्छा नहीं है। मुझे न तो अभिषेक का पता चला और न वनवास का ही। अब मुझे मालूम हुआ है कि ये सारे काम मेरी पापिनी माता के हैं। किंतु महाशयो ! मुझे कुछ क्रोध आप सब पर भी हो आता है। महाराज ने तो मेरी मां के वश होकर रामचंद्र को वनवास का आदेश दे दिया; पर आपने महाराज को रोका क्यों नहीं ? आप ब्राह्मण तो वेद के परम अभ्यासी हैं और शुभ परंपराओं के रक्षक हैं। जब राजा मोह-वश विपरीत आचरण करे, तो आपका धर्म होता है कि आप उसे वैसा करने से रोकें। अयोध्या का राज्य महाराज की अपनी व्यक्तिगत संपत्ति नहीं थी कि वे स्वयं और कैकेयी दोनों जैसा चाहें, उसके विषय में निर्णय कर सकें। महाराज तो राज्य के पालक-भर थे। राज्य के हित को ठुकराकर केवल अपनी मूर्ख स्त्री को प्रसन्न रखने के लिए राम को वन में भेजने का महाराज को क्या अधिकार था ? महाशयो ! सच तो यह है कि आप ब्राह्मणों ने भी इस विषय में अपनी दीर्घ दृष्टि का उपयोग नहीं किया और चुपचाप सबकुछ सह लिया। ऐसे समय में भी आप ब्राह्मण सत्य के नाम पर आगे न बढ़ेंगे तो संसार के स्वास्थ्य की रक्षा कौन कर पावेगा ? मुझे तो इसमें आप सबका दोष दीखता है।"

इस प्रकार ब्राह्मणों के सामने अपने दिल का भार हलका करके भरत कौशल्या और सुमित्रा के पैर छूने उनके पास पहुंचा और उनके चरणों में वंदन करके अपराधी की भांति खड़ा रह गया। कौशल्या ने भरत के सामने राम के वियोग से विह्वल बना अपना दिल हलका किया औरजब उसे पता चला कि इस विषय में भरत का कोई हाथ नहीं था, तो उसके मन पर से बोझ हट गया।

भरत का बोझ कम हो जाने पर वसिष्ठ ने कहा, "भरत ! अब शोक मत करो। अब महाराज के उत्तरकार्य की ओर अपना ध्यान दो।"

इसके बाद भरत ने महाराज के शव को तेल के कुंड में से बाहर निकाला। वस्त्राभूषण पहनाकर उसे बड़ी पालकी मेंरखा और फिर उसका अग्नि-संस्कार किया। इस क्रिया के चलते भरत का हृदय फिर शोकाकुल हो उठा। वह बोला, "हे पिता ! मुझ दीन को अकेला छोड़कर आप कहां चले गये ? रामचंद्र वन में चले गये और आप स्वर्ग को सिधार गये, इससे अयोध्या तो विधवा ही हो गई है।"

इसके बाद बारहवेंदिन भरत ने महाराज का श्राद्ध-कर्म किया, ब्राह्मणों को दान दिये और तेरहवें दिन सारी उत्तर-क्रिया समाप्त की।

... ...

चौदहवें दिन का सवेरा होते ही राज्य के अधिकारी और महाजन भरत के पास पहुंचे और कहने लगे, "महाराज ! दशरथ महाराज को विदा किये आज चौदह दिन हुए हैं। अब उनका श्राद्ध-कार्य भी पूरा हो चुका है। इसलिए अब आप आज ही अयोध्या की इस गद्दी को स्वीकार कीजिये और प्रजा का पालन कीजिये। आप समझते ही हैं कि समाज के तंत्र का अपना एक स्वामी अवश्य होना चाहिए। ऐसे किसी एक स्वामी या राजा के न होने पर समूचा समाज अस्त-व्यस्त हो जाता है और चारों-ओर अव्यवस्था फैल जाती है। महाराज ! दशरथ महाराज ने आपको हमारा राजा बनाया है, इसलिए आप हमारे शिरछत्ररूप हैं। अब शोक भुलाकर प्रजापालन के काम में अपना मन लगाइये। हमारे कुलगुरु वसिष्ठ आपके मस्तक पर संस्कार-जल का अभिषेक कर दें, तो हम निश्चिंत हो जायं।"

राज्य के अधिकारियों के मुंह से निकले इन शब्दों को सुनकर भरत बोला, "अयोध्या के हितचिंतको ! आपने ठीक ही कहा है। राज्य का अपना कोई स्वामी होना ही चाहिए, नहीं तो राज्य में अवांछनीय तत्वों का जोर बढ़ जाता है और समाज छिन्न-भिन्न हो जाता है। पर हमारा सच्चा स्वामी आज दंडक-वन में जाकर बैठा है। मैं जब अपने मामा के घर था, तब आपने उसे जाने दिया, मेरे विचार में यही आपकी बड़ी भूल हुई है।"

किसी ने कहा, "महाराज ! पिताजी का आदेश हो जाने के बाद हम क्या करते ?"

भरत बोला, "पिताजी का आदेश भी पागलपन से भरा हो, तो हम उसे रोकें और कहें, 'पिताजी ! यह तो किसी भी दशा में हो ही नहीं सकेगा।' फिर भले ही हमें कोल्हू में डलवाकर हमारा तेल ही क्यों न निकलवा लें ? राजा के सामने ऐसा समझदारी-भरा तूफान खड़ा करने का अधिकार प्रजा को ही है। जो प्रजा इस अधिकार का उपभोग नहीं कर सकती, वह निस्तेज बन जाती है।"

दूसरा नागरिक बोला, "हमें तो महाराज का और कैकेयी माता का आदेश सिर-माथे चढ़ाना है।"

भरत ने कहा, "तो फिर आप महाजन कैसे ? प्रजा के संकट के समय जो राजा को सच्ची बात कहता है, वही सच्चा महाजन है। मेरी माता कैकेयी पर तो भूत सवार हो गया था। आप सबने खड़े होकर रामचंद्र के पीछे समूची अयोध्या को खाली कर दिया होता, तो महाराज की या कैकेयी की हिम्मत न थी कि वे रामचंद्र को वन में भेज देते ? लेकिन आप सब चुपचाप बैठे रहे और अयोध्या का सत्यानाश हो गया।"

एक वृद्ध बोला, "महाराज ! जो हुआ, सो हुआ। अब आप इस सारी बिगड़ी को बना लीजिए।"

भरत ने कहा, "बिगड़ी को बनाने का काम तो हमारे रामचंद्र करेंगे। मैं रामचंद्र को, सीता को और लक्ष्मण को वापस लिवा लाने के लिए जा रहा हूं। यह संभव ही नहीं है कि रामचंद्र को छोड़कर भरत कभी इस गद्दी पर बैठेगा। सेनापति ! अपनी चतुरंगिणी सेना को तैयार कीजिए और गुरु वसिष्ठ आदि को सूचित कर दीजिए। आपमें से जिन्हें साथ चलना

हो, वे खुशी से मेरे साथ चल सकते हैं। अयोध्या के गद्दीपति तो रामचंद्र ही हैं। इसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होगा।"

यों कहकर भरत अपने महल में गया और महाजन आदि सब लोग अपने-अपने स्थान को चले गये।

: ३ :

रामचंद्र की खोज में

सवेरा होते ही भरत रामचंद्र की खोज में निकल पड़ा। भरत के पीछे वसिष्ठ निकले; मंत्री और पुरोहित निकले; भरत के पीछे कौशल्या निकलीं; सुमित्रा और कैकेयी निकलीं; भरत के पीछे रथ निकले, हाथी निकले और घोड़े निकले; भरत के पीछे कुम्हार निकले, राज-कारीगर निकले, बुनकर निकले, लुहार निकले, धोबी और दरजी निकले। सारी अयोध्या भरत के पीछे उमड़ पड़ी।

गंगा नदी के किनारे भील लोगों का बड़ा राज्य था। गुह इन भीलों का राजा था। भरत के गंगा-किनारे पहुंचने तक सब बहुत ही थक चुके थे, इसलिए पड़ाव शृंगवेरपुर में डाला गया। अपने गांव की सीमा पर इतनी बड़ी सेना की छावनी देखकर गुह सोच में पड़ गया, "यह सेना तो अयोध्या की दिखाई देती है। इस रथ का झंडा अयोध्यापति का है। कहीं इनमें भरत तो नहीं है? कहीं कैकेयी की प्रेरणा से भरत रामचंद्र को मारने के लिए तो नहीं जा रहा है? रामचंद्र मेरे मित्र हैं। क्यों न अपनी सेना को सूचित और सावधान कर दूं? क्यों न गंगा में लगी अपनी नावों को एक सिलसिले से लगवा दूं? क्यों न अपने भीलों से कह दूं कि वे तीर-कमान लेकर पेड़ों पर चढ़ जायं? यदि भरत रामचंद्र का पीछा करने निकला हो, तो मैं समूची सेना को क्यों न यहीं ठिकाने लगा दूं?" इस तरह सोच-विचार करके उसने अपनी सारी व्यवस्था कर ली। फिर

वह भरत से मिलने निकला।

अपने हाथ में रखी फूलों और फलों की टोकनी देते हुए गुह ने कहा, "महाराज भरत ! मैं इस भील प्रदेश का राजा गुह हूं। आप इसे अपना घर ही समझिए। आज यहीं ठहरिए। कल आगे बढ़िए।"

गुह के इस विवेक-युक्त व्यवहार से प्रसन्न होकर भरत बोला, "भील-राज ! आपने मेरी बहुत अच्छी सेवा की। यहां से मैं रामचंद्र के पास जाना चाहता हूं। हमें बताइए कि किस रास्ते से जाना हमारे लिए अधिक अनुकूल होगा। हम आपके बहुत आभारी होंगे।"

भरत की इन बातों को सुनकर गुह ने अधीर होकर पूछा, "महाराज भरत ! अविनय के लिए मुझे क्षमा कीजिए। आपके साथ इतनी बड़ी सेना देखकर मेरे मन में संदेह पैदा हो रहा है। मैं जानना चाहता हूं कि आप रामचंद्र के मित्र के रूप में जा रहे हैं या शत्रु के रूप में ?"

गुह का ऐसा सीधा प्रश्न सुनकर भरत ने कहा, "निषादराज ! आप अपने मन में किसी प्रकार की कोई शंका मत रखिये। रामचंद्र मेरे लिए पिता के समान हैं। मैं रामचंद्र को वापस अयोध्या ले जाने के लिए जा रहा हूं। भैया ! मेरे राम-लक्ष्मण भी इसी रास्ते गये होंगे ? हाय, मैं अभागा पीछे रह गया !"

भरत को इस प्रकार दुःखी देखकर गुह बोला, "महाराज ! राम और लक्ष्मण एक रात मेरे घर रहे थे। देखिए, वह सामने इंगुदी का जो पेड़ है, रात को उसी की छाया में उनका निवास था। रामचंद्र तो मेरे मित्र और मेरे प्राण ठहरे। मैंने उनके सामने फल-फूल रखे, पर उन्होंने तो हाथ-भर लगाकर मुझे वापस कर दिये। उन्होंने वनवास का धर्म स्वीकार किया था। लक्ष्मण जो पानी लाये, वही पिया। जब लक्ष्मण ने उनके लिए घास का बिछौना बिछा दिया, तो वे उसी पर सोये।"

भरत सहसा बोला, "बड़े भैया की ऐसी सेवा करने का अवसर मुझे कब मिलेगा ?"

गुह ने कहा, "भरत ! लक्ष्मण की सेवा की तो बात ही मत पूछिए। जब महाराज रामचंद्र और सीता रात को सो गये, तब दूर जाकर पहरा देते हुए लक्ष्मण खड़े रहे। मैंने कहा, 'मेरे आदमी चारों तरफ घूम रहे हैं,

इसलिए डर की कोई बात नहीं है, आप सो जाइए।' लेकिन लक्ष्मण यों क्यों सोने लगे ? 'पलंग पर सोने वाले मेरे राम और सीता जब जमीन पर सोये हों, तो मुझे नींद कैसे आ सकती है ? हृदय को वेधनेवाली ऐसी अनेक बातें उन्होंने हमसे उस रात कहीं।"

इस तरह गुह भरत से बातचीत कर रहा था तभी कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी भी वहां आ पहुंचीं। फिर जिस जगह राम सोए थे, जिस जगह सीता ने अपना रेशमी वस्त्र टांगा था, जहां राम ने फल-फूल का आहार किया था, जिस जगह खड़े रहकर लक्ष्मण ने रात-भर पहरा दिया था, उन सब जगहों को बारी-बारी से देखकर और राम के दुःखों की याद से दुःखी होकर सब रोने लगे। भरत का दिल भर आया और उसने गद्‌गद् कंठ से कहा, "आज से मैं जमीन पर अथवा घास की शय्या पर सोऊंगा, फल-फूल खाकर रहूंगा, सिर पर जटा बढ़ाऊंगा और वल्कल पहनकर रहूंगा। रामचंद्र अयोध्या के राजा बनेंगे और उनके बदले मैं वन में जाकर रहूंगा। प्रभो ! मेरे इस मनोरथ को सिद्ध करो।"

इस तरह अनेक प्रकार से रामचंद्र का स्मरण करते हुए वे एक-दूसरे से अलग हुए।

दूसरे दिन गुह ने और उसके आदमियों ने मिलकर सबको गंगा पार उतार दिया। फिर भरत भरद्वाज ऋषि के आश्रम में होता हुआ वहां पहुंचा, जहां चित्रकूट पर्वत पर रामचंद्र रहने लगे थे।

... ...

चित्रकूट पर्वत पर बनी पर्णशाला से बाहर निकलते-निकलते रामचंद्र बोले, "वैदेही ! अयोध्या से रवाना होते समय तो तुझे यही विचार रहा होगा कि पता नहीं, वनवास कितना भयंकर रहेगा। किंतु ऐसा सुंदर पर्वत और ऐसी सुंदर पर्णकुटी अयोध्या में भी कहां मिलने को है? यह चित्रकूट, इसके ये सारे रंग-बिरंगे शिखर, आकाश से बातें करनेवाले ये वृक्ष, निरंतर कलरव करते ये पक्षी—यह वनवास है या स्वर्गवास ?"

सीता ने कहा, "स्वामी ! मुझे तो अयोध्या की याद भी नहीं आती। किंतु जब माता कौशल्या की याद आती है, तो रुलाई आ जाती है। और तो किसी की याद नहीं आती।"

राम कहने लगे, "सीता ! जरा इधर देख, तूने ये फूल देखे ? देख, ये भौंरे कैसे इनका रस पीने आते हैं और कैसे इन पर झूला झूलते हैं ? और उधर देख, वह हाथियों का बड़ा झुंड जा रहा है। देख, यह गजराज कैसी मस्त चाल सं धीमे-धीमे बढ़ रहा है। सीता! देख, वह भरद्वाज का आश्रम है। हम उसी रास्ते इधर आये थे। हमारे चारों ओर ऐसे कई आश्रम हैं। हम इन आश्रमों के दर्शन करने जायंगे। सीता ! लक्ष्मण अभी तक लौटा क्यों नहीं ?"

सीता बोलीं, "उनके आने का समय तो हो चुका है। मैंने तो बहुतेरा कहा कि तुम्हारा पैर दुखता है, तो मुझे पानी का घड़ा भरकर ले आने दो, पर वे क्यों मानने लगे ? वे तो आपके भाई ठहरे ! एक बार बात मन में आ जाने पर उसे कभी छोड़ते नहीं। देखिए, वे लंगड़ाते-लंगड़ाते चले आ रहे हैं।"

सीता और रामचंद्र इस प्रकार बात कर रहे थे, तभी लक्ष्मण आ पहुंचा और बोला, "महाराज ! देखिए, उधर दूर धूल का बड़ा बादल-सा कुछ दीख रहा है ?"

राम ने पूछा, "धूल का बादल ! किस तरफ ?"

सीता बोली, "जी, इस तरफ। कोई बड़ा बवंडर-सा लगता है।"

लक्ष्मण बोला, "महाराज ! मैं पानी लेकर इस तरफ आ रहा था, तभी पहाड़ की तलहटी में मैंने दो पुरुषों को इधर आते देखा।"

राम ने कहा, "वे पुरुष तो इन पहाड़ों पर भटकनेवाले कोई गडरिए होंगे।"

लक्ष्मण बोला, "कपड़े तो गडरिए-जैसे ही थे। जब मैं उन्हें अधिक ध्यान से देखने लगा, तो वे एक ओर मुड़कर अदृश्य हो गये, इसलिए मैं लौट आया।"

सीता ने कहा, "भैया ! अब इस पेड़ पर चढ़कर जरा देखो तो !"

रामचंद्र बोले, "उसका पैर दुख रहा है। वह पेड़ पर कैसे चढ़ेगा ? मैं चढ़ जाता हूं।"

लेकिन इस बीच लक्ष्मण पेड़ पर चढ़ गया और बोला, "बिलकुल साफ दिखाई पड़ रहा है। अरे, उसकी शान तो देखो। महाराज ! यह कौन हो

सकता है ?"

रामचंद्र ने पूछा, "क्या अयोध्या से सुमंत्र आ रहे हैं ?"

लक्ष्मण ने कहा, "सुमंत्र तो हैं ही; पर दूसरा कौन है ?" कहते-कहते लक्ष्मण पेड़ से नीचे उतर आया।

सीता ने पूछा, "लक्ष्मण ! कौन है ? कहते क्यों नहीं हो ?"

लक्ष्मण फुफकार-भरी आवाज में बोला, "पहले मुझे धनुष-त्राण ले आने दो। फिर मैं वताऊंगा कि कौन है ?"

राम ने पूछा, "ऐसी क्या वात है ? धनुष-वाण की जरूरत क्यों पड़ गई ?"

लक्ष्मण के हाथ कांपने लगे। वह वोला, "महाराज, यह पापी अब भी आपका पीछा छोड़ नहीं रहा है।"

राम ने फिर पूछा, "पहले यह तो कहो कि है कौन ? क्या भरत है?"

लक्ष्मण कहने लगा, "हां, वही पापी है। क्या वह वन में भी आपको चैन से नहीं रहने देगा ?"

सीता से नहीं रहा गया। बोली, "अब हमारा क्या होगा ?"

रामचंद्र ने कहा, "होना क्या था ? तू तनिक भी डर मत।"

लक्ष्मण बोला, "महाराज ! आप तो सोलहों आने सज्जन हैं। आप नहीं जानते कि लोगों के मन में कैसा छल-कपट भरा रहता है। देखिए, अब वह दीख रही है भरत की सेना ! अबतक धूल के बादलों में छिपी थी। कैकेयी का पुत्र अयोध्या की सेना लेकर आपको मारने आया है। मैंने तो आपसे उसी समय कहा था कि मैं महाराज दशरथ को पकड़कर बंदी वना लूं और आप गद्दी संभाल लें।"

रामचंद्र बोले, "भैया ! तुम इस तरह उतावले न बनो। हमें क्या मालूम कि भरत यहां किसलिए आ रहा है।"

लक्ष्मण ने क्रुद्ध स्वर में कहा, "क्या यह भी देखना जरूरी है कि सांप किसलिए मुंह फाड़ता है ? आप पूछते हैं, किसलिए आ रहा है ? आपका जीवित रहना उसे खटक रहा है, इसलिए वह आपको जड़-मूल से मिटाने आया है।"

रामचंद्र बोले, "लक्ष्मण ! तुम भरत को पहचानते नहीं।"

लक्ष्मण ने कहा, "महाराज ! याद रखिए, भरत कैकेयी का पुत्र है, कौशल्या अथवा सुमित्रा का नहीं ।"

सीता बोली, "लक्ष्मण ठीक कह रहे हैं ।"

रामचंद्र ने कहा, "तू भी मूर्ख बन गई ? इक्ष्वाकु-कुल में ऐसा कोई उत्पन्न नहीं हो सकता ।"

लाल-सुर्ख आंखों के साथ लक्ष्मण बोला, "महाराज ! आप जानते नहीं । क्या आप यह मानते हैं कि कैकेयी ने यह सब जो किया, उसकी जानकारी भरत को नहीं थी ? मुझे तो अयोध्या में ही ख़बर मिली थी कि यह सब पहले से रचा हुआ एक व्यवस्थित षड्यंत्र था । कैकेयी ने अपने विवाह के समय ही इसकी रचना कर ली थी । इस भरत ने भी कैकेयी का ही दूध पिया है ।"

इस तरह बातचीत चल रही थी कि लक्ष्मण धनुष-बाण लाने के लिए अंदर दौड़ गया । लौटकर देखता क्या है कि भरत सीता के चरणों में प्रणाम कर रहा है ।

: ४ :

चरण-पादुका

पैरों में पड़े भरत को छाती से लगाकर उसे अपनी गोद में बैठाते हुए रामचंद्र बोले, "भरत, इस तरह रो क्यों रहे हो ?"

भरत ने कहा, "भरत रोये नहीं तो और क्या करे ? भैया ! मुझे इस बात का दुःख नहीं कि कैकेयी ने मुझे पहचाना नहीं; दुःख इस बात का भी नहीं कि महाराज दशरथ ने मुझे पहचाना नहीं; कुलगुरु वसिष्ठ के भी मुझे न पहचानने का मेरे मन में कोई दुःख नहीं; किंतु मुझे इस बात का भारी दुःख है कि मेरे भाई रामचंद्र ने भी मुझे नहीं पहचाना !"

भरत की पीठ थपथपाते हुए रामचंद्र बोले, "भैया ! पहचानता हूं, मैं तुझे बहुत अच्छी तरह पहचानता हूं ।"

सिर हिलाते-हिलाते भरत ने जवाब में कहा, "नहीं, आप नहीं पहचानते। यदि पहचानते होते, तो इस तरह अयोध्या छोड़कर अचानक चले न आते। महाराज ! क्या आपने यह सोचा था कि कौशल्या और सीता के आंसुओं से भीगी गद्दी पर भरत कभी नहीं बैठेगा ? क्या आपने यह अनुभव किया था कि यह जो कैकेयी बोल रही है, सो भरत की माता नहीं, कोई और ही बोल रही है ? महाराज ! क्या आपको यह लगा था कि रामचंद्र-विहीन अयोध्या में भरत एक रात भी नहीं बितायेगा ? बड़े भैया ! आपने मुझे नहीं पहचाना।"

रामचंद्र ने भरत की आंखें पोंछते हुए कहा, "भरत ! मैंने तुझे पहचाना है या नहीं पहचाना, इसे तो मैं तुझे बाद में समझाऊंगा। तू पहले यह बता कि अपने पिता तो कुशल हैं ? अपनी तीनों माताएं सानंद हैं ? अपनी अयोध्या में सब ठीक हैं ?"

भरत रो उठा और बोला, "बड़े भैया ! आप पिता को कुशल देखना चाहते, तो इस तरह वन में न चले आते। आप माताओं की क्षेम-कुशल चाहते, तो वन में न चले आते। आप अपनी अयोध्या को आनंद में देखना चाहते, तो यहां वन में न चले आते। माताएं किस प्रकार सानंद हैं, इसे आप अभी अपनी आंखों से देख सकेंगे। कौशल्या और सुमित्रा के चेहरों पर उनकी कुशलता अंकित है। पर मुझे बताना होगा कि अयोध्या किस प्रकार कुशल है ? जिस दिन अयोध्या लौटा हूं, उसी दिन से मैं उसे विधवा देख रहा हूं।"

रामचंद्र ने कहा, "भरत ! ऐसी अमंगल बात मुंह से न बोलो।"

भरत बोला, "जो अमंगल है, क्या उसे छिपाये रखूं ? अयोध्या तो आज सचमुच अनाथ बन चुकी है।"

राम कहने लगे, "भरत ! जबतक अयोध्या के पालनकर्त्ता महाराज दशरथ बैठे हैं, तबतक तुझे ऐसा कहना शोभा नहीं देता !"

भरत का गला भर आया। वह रुआंसी आवाज में बोला, "बड़े भैया, महाराज तो स्वर्गवासी बन चुके हैं और अपने पीछे चार विधवाएं छोड़ गये हैं।"

जैसे ही भरत के मुंह से ये शब्द सुने, राम विह्वल हो उठे। उनकी

आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। बोले, "हे तात ! हे महाराज ! आप मुझे छोड़कर कहां चले गये ?"

महाराज दशरथ के ऐसे समाचार सुनकर सीता और लक्ष्मण भी रोने लगे और समूचे आश्रम में थोड़े समय तक रोना-विलखना चलता रहा। कुछ देर वाद भरत बोला, "भैया ! अव शांत हो जाइये।"

फिर भरत ने सवको सिलसिलेवार बताया कि रामचंद्र के अयोध्या छोड़ने के बाद वहां क्या-क्या हुआ।

रामचंद्र ने कहा, "भैया भरत ! जब महाराज रहे नहीं हैं, ऐसी हालत में अयोध्या को सूनी छोड़कर तू यहां क्यों आ गया? और, तूने यह तापस-वेश क्यों धारण कर लिया है ? भैया ! तुरंत वापस जा और अपनी अयोध्या को संभाल।"

भरत ने स्वस्थ चित्त से कहना शुरू किया, "भैया ! जबतक आप अयोध्या के बाहर हैं, तबतक अयोध्या सूनी ही रहनेवाली है। महाराज के रहते भी आपके बिना वह सूनी थी। आज भरत के जाने पर भी सूनी ही रहेगी। भरत अकेला वापस अयोध्या जाने के लिए नहीं आया है। मैं तो आपको लिवा ले जाने के लिए आया हूं। अयोध्या का भार आप ही को संभालना है। भरत आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए सदा तैयार है।"

रामचंद्र कहने लगे, "भैया भरत ! तुझे यही शोभा देता है। अयोध्या की गद्दी भोग-विलास के लिए नहीं, बल्कि लोक-सेवा के कठिन व्रत के लिए है। अपने कुल की इस परंपरा को तूने आज अधिक पुष्ट किया हैं, यह देख कर मेरा मन प्रसन्न हो रहा है।"

भरत बोला, "महाराज ! अब आप चलिए। विलंब मत कीजिए। प्रजा आपकी बाट जोह रही है।"

रामचंद्र ने कहा, "भरत ! क्या तू यह कहना चाहता है कि पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके मैं वापस अयोध्या चलूं ? राम ने माता कैकेयी और पिता दशरथ की आज्ञा को सिर-माथे चढ़ाकर ये वल्कल पहने हैं। आज मैं इस वल्कल को उतारकर फेंक दूं, तो क्या उससे मेरी शोभा बढ़ेगी ?"

भरत बोला, "किंतु आज मेरी माता स्वयं आपको बुलाने आई हैं।"

रामचंद्र ने कहा, "माता कैकेयी तो आयंगी। महाराज होते, तो वे भी आते। किंतु यदि ऐसी आज्ञाओं का मूल्यांकन हम इस रीति से करने लगेंगे, तो संसार की मर्यादा सुरक्षित नहीं रह पायगी। पिता की आज्ञा के मूल में सत्य वचन की उनकी टेक थी। पिता के सत्य वचन की रक्षा करना मुझे अपना धर्म प्रतीत हुआ, इसीलिए मैंने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य माना।"

भरत चिढ़कर बोला, "यह सारा दोष तो मेरी दुष्ट माता का है।"

रामचंद्र ने कहा, "भरत ! यहां तू भूल कर रहा है। जो लोग आज हमें प्रत्यक्ष दोषी प्रतीत होतेहैं, वे स्वयं तो सृष्टि की किन्हीं अज्ञात शक्तियों के निमित्त-मात्र होते हैं। अतः उन पर गुस्सा करना उचित नहीं। क्या तू यह मानता है कि केवल एक मंथरा या कैकेयी संसार में ऐसे परिवर्तन कर सकती है ? भरत ! तू जा, और अपनी अयोध्या को संभाल। चौदह वर्षों का समय तो चुटकी बजाते बीत जायेगा। फिर मैं वापस आ ही जाऊंगा। मैं महाराज दशरथ के सत्य वचन पर टिका रहना चाहता हूं। हमारे कुल में किसी के सत्य का अनादर हुआ नहीं है। महाराज का भी नहीं होना चाहिए।"

भरत बोला, "रामचंद्र ! मैंने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि मैं आपके बिना अयोध्या में फिर पैर नहीं रखूंगा। आपके बदले में चौदह वर्ष वन में रहूंगा। आप अयोध्या की गद्दी पर विराजिए।"

रामचंद्र ने हँसकर कहा, "भरत ! तपश्चर्या में और व्रतों में ऐसी अदला-बदली काम नहीं देती। जिस अयोध्या के लिए तू मुझसे इतना अधिक आग्रह कर रहा है, उस अयोध्या के विषय में तू स्वयं क्यों नहीं सोचता ? मैं तो पिता की प्रतिज्ञा से बंधा होने के कारण पराधीन हूं।"

भरत फिर बोला, "भैया ! दूसरी सब बातों को मैं छोड़ भी दूं, फिर भी अयोध्या के समूचे राज्य का भार उठाने की शक्ति ही मुझमें कहां है?"

रामचंद्र ने कहा, "भरत ! ऐसा न कहो। मुझसे यह छिपा नहीं है कि भरत अयोध्या का तो ठीक, बल्कि समूची पृथ्वी का राज चलाने की शक्ति रखता है।"

भरत ने अधिक निकट आकर कहा, "बड़े भैया ! यदि ऐसा ही है, तो इन पादुकाओं पर अपने चरण रख दीजिए। मैं इन्हें अयोध्या की गद्दी पर रख दूंगा और इस तपस्वी के वेश में ही एक नम्र प्रतिनिधि के रूप में राज्य चलाऊंगा।" यों कहकर भरत ने रामचंद्र के सामने पादुकाएं रख दीं और राम ने उन पर पैर रखकर उन्हें भरत को वापस सौंप दिया।

रामचंद्र बोले, "भरत! अब तू जा। तेरी धर्म-बुद्धि ने आखिर रास्ता खोज ही लिया !"

भरत ने फिर कहा, "चौदह वर्षों तक मैं अयोध्या के बाहर नंदीग्राम में रहूंगा। यदि ठीक चौदहवें वर्ष के अंत में आप नहीं लौटे, तो..." कहते-कहते भरत की आंखें डबडबा आईं।

रामचंद्र ने भरत को पुनः अपनी बांहों में भर लिया और कहा, "भरत! मैं आऊंगा, अवश्य आऊंगा।"

फिर सीता और लक्ष्मण की ओर मुड़कर रामचंद्र बोले, "सीता, लक्ष्मण ! तुमने क्या सोचा था और क्या निकला ? भरत ! तुम लक्ष्मण से मिलो और कुछ समय उसके साथ शांति से बैठो।"

भरत ने कहा, "भैया ! ये लक्ष्मण तो शिकार के लिए तैयार हुए-से लगते हैं।"

"भरत ! शिकार तो तुम्हारा ही हो जाता!" कहकर सीता हँस पड़ी और लक्ष्मण के धनुष-बाण पर्णशाला में रखने लगी।

भरत बोला, "भैया ! शत्रुघ्न, अपनी माताएं, पूरा राज-परिवार, सभी आपको लिवा ले जाने आये हैं। वहां दूर पर उनका पड़ाव पड़ा है।"

रामचंद्र ने कहा, "तब तो उन सबको प्रणाम करने के लिए मुझे वहीं चलना होगा। चलो, हम सब उधर ही चलें।"

कहकर रामचंद्र चल पड़े। उनके पीछे सीता चली, सीता के पीछे लक्ष्मण और लक्ष्मण के पीछे सिर पर रामचंद्र की पादुका धारण किये भरत। सुमंत्र सबके आगे चलकर मार्ग दिखा रहा था।

: ५ :

बंधु-मिलन

नंदिग्राम के एकांत कोने में भरत का आश्रम; आश्रम के कोने में भरत की पर्णकुटी; पर्णकुटी के एक अत्यंत स्वच्छ और सुंदर कक्ष में रामचंद्र की पादुकाएं। भरत प्रतिदिन इन पादुकाओं की विधिवत् पूजा करता, प्रतिदिन पादुका को प्रणाम करता और फिर मानो पादुकाओं से अलौकिक प्रेरणा प्राप्त की हो, ऐसी भावना से अयोध्या के राज्य का सारा कारोबार चलाता। पादुकाओं के सिंहासन कीएक ओर भरत का दर्भासन था। उस पर वह बैठता और अयोध्या का यह बल्कलधारी राजा रामचंद्र की अयोध्या को संभालता।

भरत को नंदिग्राम में आए कई वर्ष बीत गए—एक, दो, चार, दस, बारह, तेरह...। चौदहवां वर्ष भी लगभग बीतने आया। भरत की जटा चौदह वर्ष की होने को हुई; भरत की दाढ़ी चौदह वर्ष की होने आई; भरत की पर्णशाला पर चौदह वर्ष के जाड़े, वर्षा, धूप निकल गई; किंतु रामचंद्र के कोई समाचार नहीं मिले, इससे भरत चिंतित रहने लगा। भरत रोज शाम को दक्षिण दिशा के दरवाजे पर खड़ा रहकर दूर तक दृष्टि डालता और रोज निराश होकर वापस आ जाता।

जैसे-जैसे रामचंद्र के लौटने की अवधि पूरी होने लगी, वैसे-वैसे भरत की चिंता बढ़ने लगी। एक बार पादुकाओं की वंदना करते समय भरत सहसा बोल उठा, "भैया ! महाराज दशरथ का सत्य-वचन पालने के लिए आपने वनवास स्वीकार किया, तो क्या आप मुझे दिया अपना वचन सत्य नहीं करेंगे ? रामचंद्र, रामचंद्र ! अयोध्या छोड़ते समय आपने मुझे नहीं पहचाना, तो कोई बात नहीं; किंतु अब यदि आप समय से न पहुंचे, तो याद रखिए, आप ही को पछताना पड़ेगा। हे राम, राम, राम !"

ऐसी चिंतित स्थिति में एक दिन भरत आश्रम के चौक में टहल रहा था कि इतने में दक्षिण द्वार से हनुमान ने प्रवेश किया और वह भरत को

प्रणाम करके बोला, "आपकी वेश-भूषा को देखने से मुझे लगता है कि आप ही भरत हैं।"

भरत ने पूछा, "तुम कौन हो ?"

हनुमान बोला, "मैं हनुमान नाम का वानर हूं।"

भरत ने दूसरा प्रश्न पूछा, "तुम कहां रहते हो और कहां से आये हो ?"

हनुमान ने कहा, "मैं रहनेवाला तो ऋष्यमूक पर्वत का हूं; किंतु आज तो आपको शुभ समाचार देने आया हूं।"

भरत ने पूछा, "शुभ समाचार ? क्या तुमने मेरे रामचंद्र को देखा है ?"

हनुमान ने कहा, "न केवल देखा है, बल्कि मैं तो उनका एक साथी हूं। सीता और लक्ष्मण के साथ रामचंद्र इधर आ रहे हैं। आपको यह समाचार देने के लिए ही उन्होंने मुझे आगे भेजा है।"

भरत बोला, "हनुमान ! भगवान तुम्हारा भला करें। आज मैं कृतार्थ हुआ। भैया ! तुम थके होगे। थोड़ा विश्राम कर लो।"

हनुमान ने कहा, "महाराज भरत ! मुझे विश्राम की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो रामचंद्र के पास जल्दी ही वापस पहुंचना है। महाराज रामचंद्र विमान में आ रहे हैं। उन्हें आपके समाचार देने के लिए मैं वापस उधर जा रहा हूं।"

इतना कहकर हनुमान भरद्वाज के आश्रम में पहुंचा। इधर भरत रामचंद्र के समाचारों से प्रफुल्लित होकर उनके स्वागत की तैयारी में जुट गया।

शरीर पर वल्कल, सिर पर जटा, हाथ में पूजा की सामग्री, एक ओर हनुमान, दूसरी ओर शत्रुघ्न, पीछे नंदिग्राम का लोक-समाज—पानी छिड़के रास्ते पर भरत रामचंद्र के आने की बाट देखता खड़ा था। इतने में सरसराहट के साथ राम का विमान उतरा। विमान को मैदान में उतरते देखकर भरत और साथ का समूचा समाज उस तरफ बढ़ गया। विमान के पास पहुंचने के तुरंत बाद भरत उसकी सीढ़ियों पर चढ़कर विमान के अगले हिस्से में बैठे रामचंद्र के पास पहुंचा और उसने उनकी गोद में

अपना सिर रख दिया। रामचंद्र ने भरत के सिर-पीठ पर हाथ फिराया और प्रसन्न स्वर में कहा, "भरत ! मैं समय पर आ पहुंचा हूं न ? भैया ! कुशल तो हो ? हमारी माताएं ठीक हैं ? हमारी अयोध्या सानंद है ?"

जीवन में कभी जिसका अनुभव न किया हो, ऐसे अवर्णनीय आनंद का अनुभव करते हुए भरत बोला, "भैया ! आज मैं कृतार्थ हुआ, आज अयोध्या कृतार्थ हुई, आज सारा इक्ष्वाकु-कुल कृतार्थ हुआ ?"

विमान में बैठे सुग्रीव ने कहा, "लेकिन महाराज ! आपकी यह पूजा-सामग्री तो रक्खी ही रह गई !"

भरत ने कहा, "क्षमा कीजिए, मुझे तो इसकी याद ही नहीं रही।"

इतना कहकर भरत ने सीता की पूजा की, राम की पूजा की और फिर जब वह लक्ष्मण के पास पहुंचा, तो उसने अपना मुंह छिपा लिया। इस कारण भरत कुछ नहीं कर पाया।

भरत बोला, "रामचंद्र भैया ! कृपाकर मुझे बताइए कि आपके साथ ये दो महापुरुष कौन हैं ?"

रामचंद्र ने कहा, "भरत ! ये हैं, वानरराज सुग्रीव और ये दूसरे हैं राक्षसराज विभीषण। इनका विस्तृत परिचय तो मेरा हनुमान तुम्हें देगा।"

विभीषण बोला, "पहले आपको इन हनुमान का ही परिचय पा लेना चाहिए। हम तो यों ही इस विमान में चढ़कर बैठे हैं।"

रामचंद्र कहने लगे, "भरत ! यदि ये सुग्रीव न होते, तो आज यह दिन भी न आता।"

सीता बोली, "भैया ! ये विभीषण और ये सरमा न होतीं, तो लंका में मेरे दिन ही न बीत पाते।"

सुग्रीव ने कहा, "और यह हनुमान न होता, तो आज आप जो कुछ देख रहे हैं, उससे बिलकुल उल्टा ही कुछ देखना पड़ता।"

भरत बोला, "सुग्रीव ! मैं आपको प्रणाम करता हूं। विभीषण ! मैं आपको प्रणाम करता हूं। हनुमान ! मैं आपको प्रणाम करता हूं।" और फिर सीता की ओर मुड़कर कहने लगा, "देवि ! पधारिए; मेरी पर्णकुटी आप सबकी बाट देख रही है।"

फिर तो पुष्पक विमान भरत की पर्णकुटी की तरफ बढ़ा और रामचंद्र आदि सब विमान से नीचे उतरे। भरत ने अपना आंगन लिपवा रखा था; समूचे आश्रम को अपने हाथों से साफ किया था; सिंहासन स्वयं धोया था। भरत ने आज के दिन को अपने समूचे जीवन को उज्ज्वल बनानेवाला दिन माना था। जैसे ही रामचंद्र ने पर्णशाला में प्रवेश किया, भरत ने उन्हें सिंहासन पर बैठाया, सीता देवी कोउनकी बगल में बैठाया, लक्ष्मण छिपता-छिपता पीछे खड़ा हो गया, सुग्रीव-विभीषण दोनों दो ओर खड़े हो गये, हनुमान सीता के चरणों के पास बैठा और स्वयं भरत सिंहासन के एक पाए के पास हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

भरत ने निवेदन किया, "महाराज रामचंद्र ! आपके एक दीन दास के रूप में मैंने आजतक जो कारभार चलाया है, उसे आज वापस आपके चरणों में रखता हूं।" यों कहकर भरत ने रामचंद्र के चरण में पादुका पहना दीं और राम के चरण छूकर दूर खड़ा हो गया।

रामचंद्र बोले, "भरत ! भाई तो दुनिया में बहुत देखे हैं, किंतु लक्ष्मण और तुम-जैसे भाई मिलना मुश्किल है।"

इतने में एक सेवक ने आकर कहा, "महाराज ! माता कौशल्या अयोध्या में आपकी बाट देख रही हैं। आप सब जल्दी पधारिए।"

इसके बाद अयोध्या पहुंचने की उतावली में राम, लक्ष्मण, भरत आदि ने अपनी जटाएं निकलवा डालीं, दाढ़ियां बनवा लीं, स्नान किया और धुले हुए कपड़े पहनकर सब अयोध्या जाने के लिए तैयार हो गये। पुष्पक विमान तो खड़ा ही था, पर रामचंद्र बोले, "विमानराज ! अब आप सुखपूर्वक कुबेर के पास पहुंच जाइये। रावण आपको कुबेर के पास से छीनकर लाया था। आज मैं आपको फिर कुबेर के हवाले करता हूं।"

रामचंद्र को लिवा ले जाने के लिए अयोध्या से राजरथ आया था। उसमें बैठकर रामचंद्र अयोध्या के लिए रवाना हुए। रथ पर बैठकर भरत ने घोड़ों की लगाम अपने हाथ में ली और संसार के दो समर्थ पुरुषों को लेकर रथ अयोध्या की ओर चल पड़ा।

: ६ :

महाप्रस्थान

अयोध्या के राजमहल में विचारमग्न रामचंद्र इधर-से-उधर घूम रहे थे, इतने में भरत वहां पहुंचा।

रामचंद्र ने कहा, "भरत ! मुझे अपना काल समीप दिखाई पड़ रहा है। सयाने लोगों को चाहिए कि वे काल को पहचान कर चलें। भैया लक्ष्मण गया; मुझे भी कोई पुकार रहा है। मुझे अब अपना यह जीवन भार-रूप लगने लगा है। इसलिए तुझे अयोध्या का राज्यतिलक करके मैं अब इस लोक से प्रस्थान करने की सोच रहा हूं।"

दोनों हाथ जोड़कर भरत बोला, "महाराज ! मुझे भी काल के पैरों की आहट सुनाई पड़ रही है। किंतु भैया ! भरत के लिए राज्य कैसा ? रामचंद्र ! आप स्वप्न में भी यह आशा न रखिए कि आपके अभाव में भरत राज्य करेगा। भरत माथे पर मुकुट धारण करने के लिए जन्मा ही नहीं है। आप सिधारनेवाले हों, तो समझिए कि मैं आपके आगे ही हूं। अयोध्या की गद्दी पर कुमार लव-कुश को बैठाने की व्यवस्था कीजिए।"

भरत का यह निश्चय सुनकर रामचंद्र ने उसको भी अपने महाप्रस्थान का साथी बना लिया। महाराज रामचंद्र के साथ भरत सरयू के किनारे अदृश्य हो गया।

कैकेयी के पुत्र और राम-लक्ष्मण के भाई भरत को हम आज भी याद करते हैं। आगे चलकर वरण के लिए सामने खड़ी अयोध्या की गद्दी को लात मारकर जीवन भर रामचंद्र के एक सेवक के रूप में जीनेवाले भरत के समान वीर के कारण अयोध्या वीर-माता थी। उसके समान पुत्रों के कारण आज कोई भी भूमि वीर-माता है।□

कैकेयी

: १ :

विष के बीज

कल सबेरे महाराज दशरथ युवराज के रूप में रामचंद्र का अभिषेक करनेवाले हैं, यह समाचार अयोध्या में बिजली की गति से फैल गया और समूचा अयोध्या नगर आनंद से छलकने लगा। पुरोहितों और मंत्रियों को अभिषेक की तैयारी के आदेश दिये जाने लगे; सातों समुद्रों के पानी इकट्ठे होने लगे; आंगनों की छवाई-लिपाई शुरू हो गयी; हवेलियों पर रंग-बिरंगी ध्वजाएं फहराने लगीं; घरों पर और दरवाजों पर हरे-भरे तोरण लटकने लगे; रास्तों पर पानी का छिड़काव होने लगा; देवमंदिरों में घंटियां बजने लगीं; पुरकन्याएं अपने वस्त्रों और आभूषणों को संवारने लगीं; राज-सेना सलामी की तैयारी करने लगी; हाथी रँगे और सजाये जाने लगे; रथों की गर्जना कानों से टकराने लगी। आनंद से मत्त बनी समूची अयोध्यानगरी आनेवाले प्रभात की बाट जोहने लगी।

कौशल्या के महल में तो मानो आनंद की बाढ़ ही आ गयी। समाचार सुनते ही कौशल्या ने देव-मंदिरों में पूजा आरंभ करवा दी, ब्राह्मणों को दान और नौकर-चाकरों को नाना प्रकार के उपहार दिये। जब अयोध्या की बूढ़ी स्त्रियां कौशल्या का अभिनंदन करने पहुंचीं, तो कौशल्या ने भगवान का आभार माना और ऐसे शुभ दिन के लिए वह अपने भाग्य को सराहने लगी। सुमित्रा और लक्ष्मण को तो इन समाचारों से हर्ष होना ही था।

महाराज का आदेश मिलने पर रामचंद्र कौशल्या के महल में गये। माता के चरणों में अपना सिर रखा और उनके आशीर्वाद प्राप्त करके उन्होंने राज्य-दीक्षा की पूर्व तैयारी के रूप में व्रत-उपवास का आरंभ किया। सीता भी इस व्रतोपवास में सम्मिलित हुई।

जिस समय सारी अयोध्या के वातावरण में इस मंगलमय प्रसंग के कारण प्रसन्नता फैल रही थी, उसी समय अयोध्या के एक मनहूस कोने में एक छोटी-सी काली बदली घिरती आ रही थी। रानी कैकेयी के पास मंथरा नाम की एक दासी थी। कैकेयी उसे अपने साथ ही लाई थी। मंथरा शरीर से कुबड़ी थी। रामचंद्र के अभिषेक के समाचार सुनकर मंथरा कैकेयी के पास पहुंची। कैकेयी अपने महल में हिंडोले पर बैठी झूल रही थी।

मंथरा ने आते ही कहा, "कैकेयी ! क्या अब झूला झूलने का समय रह गया है ? सत्यानाश तो हो ही चुका है ! तुम आखिरी झूला और झूल लो !"

कैकेयी ने अपना एक पैर जमीन से टिकाकर हिंडोले की गति धीमी की और पूछा, "मंथरा ! तू आज ऐसा क्यों बोल रही है ? तुझे हो क्या गया है ?"

उत्तेजना-भरी आवाज में मंथरा ने कहा, "मुझे क्या होना था ! मुझको पेट का खाना कहीं भी मिल जायगा !"

कैकेयी बोली, "मंथरा, मंथरा ! आज तू ऐसी उल्टी-सीधी बातें क्यों कर रही है ? बात क्या है, मुझसे कह तो सही ?"

मंथरा ने कहा, "कैकेयी ! मेरा तो दिल फटा जा रहा है।"

जवाब में कैकेयी ने हिंडोला बंद किया और कहा, "तेरा दिल फटता है, तो समझ ले कि मेरा भी फट रहा है।"

गहरी निगाह से कैकेयी के मुंह की ओर देखते हुए मंथरा बोली, "तुमने सुना नहीं कि कल रामचंद्र का अभिषेक होने जा रहा है !"

कैकेयी ने कहा, "जैसे ही सुना, मैंने देव-मंदिर में दीए जलवाये और नगर के बालकों में मिठाई बँटवाई। अब तुझे इनाम देना जो बाकी रहा है, सो मैं कल दूंगी।"

मंथरा झल्लाकर बोली, "मुझे तुम्हारे इनाम से क्या मतलब ! मूर्ख ! राम के अभिषेक से तुम्हें क्या लेना-देना है ?"

कैकेयी ने कहा, "मंथरा ! खबरदार ! फिर ऐसी बात कही तो तेरी जीभ काट लूंगी ! रामचंद्र तो मेरा बेटा है।"

मंथरा बोली, "ओ नादान ! तुम्हारा बेटा तो भरत है। राम तो

कौशल्या का बेटा है।"

कैकेयी ने कहा, "राम के बारे में ऐसी बात मत बोल। तू राम को पहचानती नहीं। राम ने मुझमें और कौशल्या में कभी कोई भेद नहीं किया। हम आपस में कितनी ही क्यों न लड़ें-भिड़ें, ये चार भाई तो एक दूसरे से एक ही मां के पुत्र की तरह बरतते हैं, और इनमें भी राम तो राम ही है! चारों भाइयों के बीच एकता बनाये रखने का काम तो राम को ही सधा है।"

मंथरा तमककर बोली, "नादान कैकेयी! तुम अपना कलेजा कहां छोड़ आयी हो? तुम अपने इन विचारों में ही डूबी रह जाओगी और कल राम युवराज बन जायगा। फिर देखना तुम्हारी क्या हालत होती है?"

कैकेयी ने तिरस्कार-पूर्वक कहा, "दशा क्या होगी?"

मंथरा अपना जाल फैलाते हुए बोली, "कैकेयी! यह यौवन, जो आज है, सो कल नहीं रहेगा। महाराज दिन-प्रतिदिन वृद्ध होते जा रहे हैं। इस कारण तुम्हारे यौवन का आकर्षण भी कम होता जायेगा। रामचंद्र भले ही युवराज कहलाये, पर महाराज की सारी सत्ता उसके हाथ में चली जायेगी। समूचा राज्य रामचंद्र के हाथ में रहेगा। पुतले की तरह महाराज का तो केवल नाम रह जायेगा। मूर्ख कैकेयी! समझ लो कि जबतक सत्ता महाराज के हाथ में है, तभी तक तुम्हारा जोर चलेगा। कल जब सत्ता रामचंद्र के हाथ में चली जायेगी, तो लोग सब कौशल्या की ओर देखने लगेंगे और तुम्हारी कोई परवा तक नहीं करेगा।"

कैकेयी ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "मंथरा, तू यह क्या कह रही है? रामचंद्र के युवराज बनने पर यह सब होने को है?"

मंथरा कहने लगी, "यह तो होगा ही। ऐसी और भी बहुत-सी बातें होंगी। इतनी उमर बीत जाने पर भी तुम तो निपट मूर्ख ही रही हो। लेकिन मैं कैकेय देश छोड़कर तुम्हारे साथ आई हूं, इसलिए जब अपनी आंखों से तुम्हारा अकल्याण होते देखती हूं, तो मुझे तुमसे कहना ही पड़ता है। कैकेयी! आज दशरथ तुम्हारे महल में पड़े रहते हैं। आगे वे कौशल्या के महल में रहने लगेंगे; आज राजा के जो मंत्री राजाज्ञा के लिए तुम्हें प्रसन्न रखने के यत्न में लगे रहते हैं, कल वे कौशल्या के पास चक्कर

लगाने लगेंगे; आज मेरे समान तुच्छ मंथरा से भी जिन मंत्रियों को भय-भीत रहना पड़ता है, कल वे ही मुझे लात मारने लगेंगे; आज नगर की स्त्रियों के जो दल-के-दल यह जानने के लिए तुम्हारे चारों ओर चक्कर काटते हैं कि तुम्हें क्या रुचता है, कल वे ही कौशल्या के आसपास घूमने लगेंगे; आज मेरी कैकेयी स्वयं महाराज को भी तिनके के मोल तौल सकती है, पर कल इस कैकेयी को भी रामचंद्र की माता के आदेशों को सिर-माथे चढ़ाना होगा। कैकेयी ! कुछ और भी कहूं ? भगवान् न करे, लेकिन अगर कहीं महाराज की आंखें मुंद गईं, तो हम तीनों को कैकय देश में फिर दिन बिताने होंगे! उस समय तुम तो नादान बनकर बच जाओगी, पर मैं कैकय-राज को क्या जवाब दे पाऊंगी ?"

मंथरा की ऐसी अटपटी बातें सुनकर कैकेयी गहरे सोच में डूब गई और परेशान होकर बोली, "मंथरा, कुछ भी क्यों न हो, अब तू ही बता कि आज इसका उपाय क्या है ?"

मंथरा ने कहा, "उपाय! उपाय क्या पूछ रही हो! कैकयराज की पुत्री के लिए उपायों की क्या कमी है ? उपाय तो बेचारे राह देखते बैठे हैं; पर उन्हें आजमानेवाला कहां है ?"

कैकेयी ने पूछा, "कह तो, उपाय क्या है ?"

मंथरा बोली, "लो, सुन लो। उपाय यह है। अभी महाराज तुम्हारे बस में हैं। वे तुम्हारा एक भी शब्द टालते नहीं। तुम्हारी आंख का एक आंसू भी महाराज को बेचैन बना देता है। तुम्हारी आंखों में थोड़ा भी क्रोध देखते हैं, तो महाराज ढीले पड़ जाते हैं। तुम्हारे मुंह पर शोक की छाया देखकर महाराज का मन उदास हो उठता है। उन्हें कहीं कुछ सुहाता नहीं। तुम तनिक भी अधीर बनकर बोलती हो तो वे पागल बनकर तुम्हें खुश करने के लिए दौड़ पड़ते हैं। तुम्हारी भृकुटी को थोड़ा भी चढ़ा देखते हैं, तो महाराज का मन विचलित होने लगता है। इसलिए आज रात तुम राजा से रूठ जाना। दिखावा ऐसा करना, मानो अभिषेक के समाचार से तुम शोक और क्रोध में डूब चुकी हो।"

कैकेयी ने पूछा, "लेकिन इससे क्या होगा ?"

मंथरा बोली, "कैकेयी ! अभी तुम्हें अपनी शक्ति का भान नहीं। इस

प्रकार अपने रूठने का अर्थ तुम्हें पूछना हो, तो तुमको किसी चतुर राजनीतिज्ञ पुरुष के पास जाना चाहिए। कैकेयी ! मैंने ब्याह तो किया नहीं है, पर मैं अपने अनुभव से कह सकती हूं कि बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञ पुरुष भी अपनी चतुराई से या बुद्धिबल से जो काम नहीं कर पाते हैं, उन्हें तुम्हारे समान युवती रानी अपनी भृकुटि को तनिक चढ़ाकर आनन-फानन में पूरा करा सकती है। जब तुम इस तरह रूठोगी, तो महाराज तुम्हें मनाने लगेंगे।"

कैकेयी ने पूछा, "लेकिन मान ले कि न मनाया, तो क्या होगा ?"

मंथरा बोली, "ऐसे कैसे मान लूं ? कभी सुना है कि नवयौवना के सामने कामी पुरुष पिघला नहीं ? कभी सुना है कि आग के पास मोम पिघला नहीं ? कभी देखा है कि दीए की लौ पर पतिंगा मंडराया नहीं ? कैकेयी ! यह तो तुम सोचो ही मत।"

कैकेयी ने पूछा, "अच्छी बात है। मनाने आने पर मुझे क्या करना होगा ?"

मंथरा बोली, "तुम्हें दो ही बातें कहनी हैं : एक, भरत को युवराज बनाओ और दूसरी, रामचंद्र को वन में भेजो "

कैकेयी सहसा बोल उठी, "अरे ! राम को वन में भेजने की बात मैं कैसे कहूंगी ?"

मंथरा खीझ-भरे स्वर में बोली, "न कह सको, तो रहने दो ! राम को न भेजना चाहो, तो तुम अपने भरत के साथ वन में चली जाना।"

कैकेयी ने कहा, "मैं तो भरत को युवराज बनाने की बात ही कहूंगी।"

मंथरा बोली, "पगली ! मैं आधा कहती हूं, तो तुम पूरा समझती भी नहीं ! भरत को युवराज बनाया जाय और राम को वन में न भेजा जाय, तो राम भरत का युवराज-पद चलने ही न देगा। तुमने उसे देखा है ? उसका लक्ष्मण तो और भी तीखा है। तुम जानती नहीं। आज भरत की अनुपस्थिति में राम को युवराज क्यों बनाया जा रहा है, तुम्हें इसका कोई अनुमान है ?"

कैकेयी ने जवाब में कहा, "इसलिए कि भरत समय पर आ नहीं सकता।"

मंथरा बोली, "नहीं-नहीं ! इसलिए कि सारी गड़बड़ी भरत की गैर-हाजिरी में ही कर लेनी है। तुम कौशल्या को और वसिष्ठ को भोला न मानो। वे सब बड़े चतुर हैं। राम वन में जायगा तभी भरत निश्चित होकर राज कर सकेगा, नहीं तो अयोध्या में रहकर राम भरत को चैन नहीं लेने देगा।

कैकेयी ने फिर कहा, "मंथरा ! क्या भरत यह सब स्वीकार करेगा ?"

मंथरा बोली, "क्यों नहीं स्वीकार करेगा ? क्या भरत को युवराज बनना कड़ुवा लगेगा ?"

कैकेयी ने फिर पूछा, "लेकिन क्या महाराज मेरी मांग पूरी करेंगे ?"

मंथरा बोली, "कोई दृढ़तापूर्वक मांगनेवाला हो, तो मैं नहीं जानती कि दुनिया में इनकार करनेवाला कौन है ? स्वयं भगवान के दरवाजे खट-खटाने पर उन्हें भी अपने द्वार खोलने पड़ते हैं, फिर ये तो बूढ़े महाराज ठहरे ! तुम्हें तो इनसे कई वरदान मांगने हैं। आज ये दो मांग लो।"

कैकेयी ने कहा, "भरत को युवराज बनाने की बात तो मैं कहूंगी। अपने विवाह के समय हम दोनों के बीच ऐसा गूढ़ संकेत हुआ भी था। मैं महाराज को उसकी याद दिलाऊंगी, तो वे मान भी जायंगे, पर राम को वनवास देने की बात मैं अपने मुंह से कैसे कह पाऊंगी ?"

मंथरा जोर देकर बोली, "कहा जाय, तो भी कहना है, और न कहा जाय, तो भी कहना तो है ही ! समझीं ? तुम्हें भविष्य में राजमाता बनना हो, और आज अपना जो प्रभुत्व है, उसे बनाये रखना हो, तो तुम्हें इतना मांगना ही होगा। और अगर राम के दिये टुकड़े खाकर ही जीना हो, तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना। तुम्हारे जैसी भोली स्त्रियों का यही तो बड़ा दुःख है। मैं तुम्हें समझा-बुझाकर कितना ही तैयार क्यों न करूं, तो भी तुम ऐन मौके पर फिसल पड़ती हो और फिर मुझे बदनाम करती हो। कैकेयी, तुम्हारे नसीब में यह सारा सुख न लिखा हो, तो रहने दो, भले ही कल राम

का अभिषेक हो जाय। आगे चलकर स्वयं तुम्हें ही पता पड़ जायगा कि मंथरा जो कहती थी, सो सच कहती थी। अब मुझे जाने दो। अयोध्या में अब मेरी जगह रही नहीं।"

मंथरा को रोकते हुए कैकेयी बोली, "किंतु मंथरा ! जैसा तू कहती है, वैसा करने से मैं इनकार कहां कर रही हूं ?"

मंथरा ने कहा, "आजतक मेरी जरूरत थी, इसलिए मुझे रखा। अब जब कि महाराज पर तुम्हारा प्रभुत्व स्थापित हो चुका है, मुझे तो जाना ही होगा। किंतु कैकेयी ! देख लेना, कल सबेरे ही ओस की बूंद की तरह तुम्हारा यह प्रभुत्व लुप्त हो जायगा और फिर तुम्हारा कहीं कोई भी ठोर-ठिकाना नहीं रह जायगा।"

कैकेयी बोली, "पर मंथरा! तू रुक तो जा। मैं तेरे कहे अनुसार करने को तैयार हूं। मेरे मन में शंका यही है कि महाराज मानेंगे या नहीं ?"

तनिक नाराज होकर मंथरा ने कहा, "तुम ऐसी शंका क्यों करती हो ? तुम मुझे ऐसा एक भी उदाहरण तो दो कि तुमने कुछ कहा हो और महाराज ने न माना हो? तुम्हारे किसी भी शब्द का विरोध करने की शक्ति तो वे बहुत पहले ही खो चुके हैं। महाराज तुम्हें समझाने की कोशिश करेंगे, पर तुम समझना मत। इतने पर भी वे न मानें, तो तुम उन्हें आत्महत्या का डर दिखाना। तुम मजबूत रहोगी, तो महाराज को झुकना ही पड़ेगा। किंतु कैकेयी ! खबरदार ! तुम खूब चौकस और चौकन्नी रहना। महाराज रोने लगें या मूर्च्छित हो जायं, तो भी तुम्हें अपना दिल कड़ा ही रखना है। बाद में सब ठीक हो जायगा। महाराज तो क्या, सारी अयोध्या संतप्त हो उठे और तुम पर चारों ओर से तिरस्कार और धिक्कार की बौछार होने लगे, तो भी तुम पहाड़ की तरह अडिग बनी रहना। यह सारा तूफान अपने आप शांत हो जायगा और फिर तुम्हारे सुख का पार नहीं रहेगा।"

कैकेयी बोली, "मैं अब समझी। सबकुछ समझ गयी। भले ही लोग कहें कि मंथरा की दृष्टि बहुत ही संकीर्ण है, पर मुझे तो तेरी दृष्टि बहुत दीर्घ लग रही है। मैं वही करूंगी, जो तूने मुझे समझाया और सिखाया है।"

मंथरा ने कहा, "कैकेयी ! मैं अयोध्या के लोक-मत का अंदाज लेने

जा रही हूं। तुम अपना नाटक भली-भांति खेलना। देखना, ! तुम बीच ही में फिसल गईं, तो अपनी तुम जानो, पर मेरी तो मौत ही समझो। दूसरा कोई परिणाम निकलेगा नहीं। कैकेयी, महारानी ! हर हालत में अपने निश्चय पर डटी रहना।" यों कहकर मंथरा नगर की ओर चली गई और कैकेयी फिर अपने हिंडोले पर झूलने लगी।

: २ :

बेचारे दशरथ !

"मैंने महल का एक-एक कमरा छान डाला, पर कैकेयी कहीं दिखायी नहीं पड़ी। हर रोज तो मेरे आने का समय जानकर वह अपने सिर में फूल गूंथ लेती है, मेरी अगवानी के लिए दरवाजे पर आकर खड़ी हो जाती है और मेरे गले में हाथ डालकर मुझे दिव्य सुख देती हुई महल में लिवा लाती है। आज वह कहां चली गई है ? कहीं राम के अभिषेक की खबर से हर्षित होकर दौड़ी-दौड़ी कौशल्या के पास तो नहीं पहुंची है ? अथवा अभिषेक की सारी विधि व्यवस्थित रीति से संपन्न हो और मुहूर्त में थोड़ा भी फर्क न पड़े, इसका ध्यान रखने के लिए वह गुरु वसिष्ठ के पास तो नहीं चली गयी है ! संभव है कि मुख्यमंत्री के साथ नगर में चली गयी हो और वहां यह देखने में लगी हो कि कल के उत्सव के लिए नगर में सारी योजना और व्यवस्था ठीक-ठीक हुई है या नहीं।...

"किंतु नहीं-नहीं, उसका रथ और पालकी दोनों यहीं हैं। ये दासियां कह रही हैं कि महारानी महल में ही हैं। कैकेयी, तू कहां छिपी है ? क्या तू अचानक पीछे से आकर मेरी आंख बंद कर देना चाहती है ! सुन, जहां कहीं हो, दौड़कर जल्दी आ जा। आज मुझे आने में जरा देर हो गई। क्या तू इसीलिए मुझसे झूठ-मूठ रूठ गई है !"

इस तरह सोचते-विचारते दशरथ महल में घूम रहे थे। तभी शयनगृह

के एक अंधेरे कोने में कैकेयी उन्हें दिखायी दी। कैकेयी उस कोने में लेटी पड़ी थी। उसके सिर के बाल चारों ओर बिखरे हुए थे। उसके कपड़े मैले-से लग रहे थे। किसी अत्यंत दुःखी स्त्री की तरह कैकेयी वहां पड़ी थी।

कैकेयी को ऐसी दशा में देखकर दशरथ का दिल बैठ गया। वे कांपते दिल से कैकेयी के पास पहुंचे, उन्होंने उसके शरीर पर हाथ फेरा, उसके बाल ठीक किये और उसके सिर को अपनी गोद में लेते हुए बोले, "देवि! तुझे क्या हो गया है ? तू यहां यों क्यों पड़ी है ?"

महाराज के हाथ को जोर का झटका देकर और अपना मुंह फेरकर कैकेयी ने कहा, "मुझे हाथ मत लगाइये !"

दशरथ बोले, "कैकेयी, देवि ! तेरा यह गुस्सा किसलिए है ? मैं तुझे कितना खोजता रहा ?"

कैकेयी ने कहा, "अब मुझे मत खोजिये ! मैं इसी अंधेरे कोने में पड़ी रहूंगी और मर जाऊंगी।"

दशरथ दीनतापूर्वक बोले, "देवि, मानिनी ! तू जानती भी है कि जब मैं तेरे मुंह से ऐसी बातें सुनता हूं, तो मेरा दिल कितना दुःखी हो जाता है ?"

कैकेयी ने कहा, "मुझे आपके दिल का पता है ! जबतक आपका स्वार्थ रहा, मेरी प्रशंसा कर-करके आपने मेरे यौवन को बरबाद कर डाला। आज जब आपका स्वार्थ सिद्ध हो चुका है, मुझे लातें मिल रही हैं।"

दशरथ बोले, "देवि ! तू यह तो बता कि तुझे क्या हुआ है ? आज जब सारी अयोध्या आनंद मना रही है, तेरे ही घर में यह शोक और कलह क्यों ?"

कैकेयी ने कहा, "यदि मैं ही कर्कशा और कलह करनेवाली हूं, तो मुझे मार डालिए, जिससे आपको कलह से छुटकारा मिल जाय !"

दशरथ बोले, "कैकयपुत्री ! तेरे बिना तेरा दशरथ कैसे जी सकेगा ?"

कैकेयी ने आंखें खोलीं और दशरथ की ओर देखते हुए कहा, "वर्षों तक ऐसी ही बातें कह-कहकर आपने मुझे फुसलाया है। आप पुरुषों को

लाज रही ही कहां है ? आपके लिए मैं न रही, तो दूसरी है ही !"

दशरथ बोले, "महारानी ! बात ऐसी नहीं है। तेरे लिए तो यह दशरथ जी रहा है। तेरे आने के बाद ही मेरे महल में संतान उत्पन्न हुई। देवि ! तेरे स्नेह-सिंचन के सहारे मैं अयोध्या में राज्य चला रहा हूं। तू यों दुःखी रहेगी, तो तेरा यह दशरथ कैसे टिक पायगा ?"

कैकेयी ने कहा, "आपके टिकने में क्या मुश्किल है ? आप पुरुष तो बड़े-बड़े राज्य चलाते हैं, बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ते हैं और बड़े-बड़े अभिषेकों का आनंद लूटते हैं। हम तो बेचारी दीन स्त्रियां ठहरीं ! आप जब चाहते हैं, हम आपको पानी पिलाती हैं, आपके बच्चों का लालन-पालन करती हैं, जब आपके पैर खुजलाते हैं और आप किसी को लात मारना चाहते हैं, तो हम अपनी छाती आपके सामने रख देती हैं !"

दशरथ बोले, "देवि ! ऐसी बात मत बोल। मैं तुझसे सच कहता हूं, तेरे बिना अयोध्या का यह राज्य मुझे श्मशान-सा लगेगा। दशरथ इस राज्य को छोड़ देने के लिए तैयार है, पर अपनी कैकेयी के आंख के आंसू देखने को तैयार नहीं।"

कैकेयी ने पूछा, "महाराज ! आप सच कह रहे हैं ?"

दशरथ बोले, "हां, तू उठकर तो बैठ। दशरथ तुझे वह सब देने को तैयार है, जो तुझे चाहिए। कैकेयी ! तेरी यह दशा मुझसे देखी नहीं जाती है।"

कैकेयी उठकर बैठ गयी और बोली, "महाराज, मैं आपसे दो चीजें चाहती हूं। आप मुझे दीजिए। पहले खूब सोच लीजिए। इनकार तो नहीं करेंगे ?"

दशरथ ने कहा, "देवि ! कैकेयी से अधिक प्यारी वस्तु दशरथ के लिए और क्या हो सकती है ?"

कैकेयी बोली, "महाराज ! आपको याद है न ? मेरे कई वरदान आप पर लेने निकलते हैं।"

दशरथ ने कहा, "कैकेयी ! तुझे जो मांगना हो, मांग ले !"

कैकेयी ने आंसू पोंछते हुए कहा, "महाराज ! पहली बात यह कि राम के बदले भरत को युवराज बनाइये…"

दशरथ की आंखों के सामने अंधेरा घिरने लगा। बोले, "देवि ! देवि ! यह तूने क्या मांगा ?"

कैकेयी ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा, "और महाराज! राम को चौदह वर्षों का वनवास दीजिए।"

कैकेयी की बात सुनते-सुनते ही दशरथ मूर्च्छित हो गये। कैकेयी ने उनका सिर अपनी गोद में ले लिया।

कुछ देर बाद जब मूर्च्छा दूर हुई, तो दशरथ बोले, "दुष्टे ! तूने यह क्या मांगा ? यह मांगते हुए तुझे शर्म नहीं आयी ? तेरी जीभ टूट क्यों नहीं पड़ी ?"

जवाब में कैकेयी ने कहा, "महाराज ! मैं तो यह जानती ही थी कि मैं जो मांगूंगी, सो आप देंगे नहीं। महाराज ! इतने वर्षों के बाद अब मैं आपको पहचान पायी हूं।"

दशरथ कहने लगे, "कैकेयी ! राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है कि तू उसके बदले भरत को युवराज बनाने की मांग कर रही है? राम तुझे माता का-सा सम्मान देता है; भरत को सगे भाई की तरह रखता है; हमारे समूचे कुल में राम के समान कोई पुरुष नहीं हुआ। कैकेयी ! फिर से विचार कर और इस वर के बदले दूसरा कोई वर मांग ले। तू मुझसे मजाक तो नहीं कर रही है ?"

कैकेयी बोली, "महाराज ! मजाक तो मेरा हो रहा है। आपने मुझसे आग्रह-पूर्वक कहा कि मैं मांगूं। अब मेरी मांगी चीज आप मुझे दे नहीं रहे हैं। इससे बड़ा मजाक क्या हो सकता है ? हम स्त्रियां दलीलों से आप पुरुषों को समझा नहीं पातीं। मैंने जो मांगा है, ठीक ही मांगा है। आप वही दीजिए। जब आप कह चुके हैं, तो दीजिए, नहीं तो इनकार कर दीजिए। दुनिया को पता तो चल जाय कि सूर्यवंश के राजा अपने वचन का पालन नहीं करते।"

दशरथ ने कहा, "कैकेयी ! देवि ! मुझे क्षमा कर। तू और कुछ मांग ले।"

कैकेयी उठते-उठते बोली, "महाराज ! अब मेरी गोद को बोझ लग रहा है। आप कौशल्या के महल में जाकर सो जाइए। समझ लीजिए कि

कैकयराज की पुत्री आज से मर चुकी है !"

दशरथ ने कहा, "कैकेयी ! ऐसी बात मत कह। मुझे अपनी गोद से मत हटा । तू कुछ और मांग ले। तेरे मन में पाप बैठ गया है। मैंने गुरु वसिष्ठ से सलाह करके राम को युवराज बनाने का निश्चय किया है। उसे मैं आज कैसे बदल सकता हूं ?"

कैकेयी बोली, "गुरु वसिष्ठ से कह दीजिए कि राम के बदले भरत का अभिषेक होगा।"

दशरथ ने पूछा, "और यदि अयोध्या की सारी प्रजा उत्तेजित हो उठेगी, तो क्या होगा ?"

कैकेयी ने कहा, "प्रजा उत्तेजित हो उठेगी, तो घड़ी-दो-घड़ी हल्ला मचायेगी और मुझे गालियां देगी। प्रजा को किसी की परवा नहीं है। उसकी अपनी तो एक भेड़-चाल है। आज वह उत्तेजित होगी, तो कल जब आप भरत का अभिषेक करेंगे, तो वही आनंद भी मनायेगी।"

दशरथ बोले, "किंतु देवि ! मेरा दिल कैसे तैयार हो ?"

कैकेयी ने कहा, "असल बात यही है। आप बहाने चाहे जितने बनाइए, बात यह है कि आप स्वयं मुझे मेरा मांगा वर देना नहीं चाहते !"

दशरथ बोले, "कैकेयी ! तू राम को वनवास देने की बात कहती ही क्यों है ?"

कैकेयी ने कहा, "भरत युवराज बन जाय और राम अयोध्या में ही बना रहे, तो भरत सुख से काम ही नहीं कर पायेगा।"

दशरथ उठकर बैठे और बोले, "किंतु पापिनी ! जिस राम को प्राप्त करने के लिए मैंने इतने सारे मनोरथ रचे, जिसके लिए मैंने सारी दुनिया के ऋषि-मुनियों के पैर धोये, उसे केवल तेरे कहने-भर से मैं वन में भेज दूं ? क्या तू और कुछ सोच ही नहीं सकती ? राम को वन में भेज देने पर कौशल्या बेचारी कैसे जी सकेगी ? कैकेयी ! कुछ तो सोच !"

कैकेयी ने कहा, "महाराज ! मैंने तो सोच-विचार करके वर मांगे हैं। आपने बिना विचार किये देना स्वीकार किया हो, तो आप जानिए।"

दशरथ रोते-रोते बोले, "कैकेयी ! मेरे प्राण-समान राम को वन में भेजने की बात तू छोड़ दे। हां, राज्य भरत को देना हो, तो उसे दे दे।

तुझे लेना हो, तो तू ले ले !"

कैकेयी ने कहा, "महाराज ! राम के अयोध्या में रहते राज्य किसीके भी हाथ में क्यों न हो, उसका कोई अर्थ नहीं रहता। जबतक राम अयोध्या में रहेगा, तबतक मुकुट किसी के भी सिर पर क्यों न हो, राजा तो वही माना जायगा।"

दशरथ बोले, "मूर्ख कैकेयी ! तू जानती नहीं। तुझे पता है कि राम कहीं भी क्यों न रहे, वह बिना मुकुट का राजा ही रहेगा ? राम के रहने से तेरा, मेरा, भरत का, अयोध्या का, सबका कल्याण है। इसलिए मैं फिर कहता हूं कि समझ जा और दूसरा कोई वर मांग ले। राम तेरे भरत को कितनी अच्छी तरह रखता है, सो तेरे देखने-समझने की बात है।"

कैकेयी ने कहा, "महाराज ! मैंने अभी ही देख लिया। आपने भरत की अनुपस्थिति में राम को युवराज बनाने का संकल्प करके श्रीगणेश तो कर ही दिया है। कल राम के युवराज बन जाने पर यही देखना रह जायगा कि मेरा भरत अयोध्या में पैर भी रख सकेगा या नहीं !"

दशरथ बोले, "मूर्ख कैकेयी ! यह तू क्या कह रही है ? क्या राम इतना दुष्ट है ? और यह दशरथ भी इतना नीच है ?"

कैकेयी ने कहा, "महाराज ! नीच तो कैकयराज की पुत्री ही है। आप तो सूर्य कुल के भूषण हैं, रामचंद्र युग-पुरुष के समान है और कौशल्या आपकी गृहदीपिका है। इस दुष्ट कैकेयी को मरने दीजिए और आप सब सुख से रहिए !"

यों कहकर जब कैकेयी दशरथ को छोड़कर जाने लगी, तो दशरथ ने उसके आंचल का सिरा पकड़ लिया और कहा, "कैकेयी ! मुझे इस तरह मत मार। मैंने तुझसे जो कहा है, सत्य ही कहा है। इक्ष्वाकुवंश का कोई राजा आजतक असत्य नहीं बोला, और बोलेगा भी नहीं। किंतु देवि ! तू कुछ और मांग ले। यदि तेरी इच्छा के अनुसार ही करना पड़ा, तो हमारा सर्वनाश हो जायगा !"

कैकेयी ने पल्ला पकड़े हुए महाराज से कह दिया, "महाराज! कैकेयी दूसरी कोई चीज मांगेगी नहीं। महाराज दशरथ अपने मुख से बोले हों, उन्हें अपने वचन की सत्यता की लेश-भर भी चिंता हो, तो वे मुझे वही दें,

जो मैंने मांगा है। यदि ऐसा न हो, तो फिर आप खुशी से राम को युवराज बनाइए; किंतु साथ ही यह भी समझ लीजिए कि राम के युवराज बनने से पहले आपको कैकेयी की मृत्यु-शैया रचनी होगी।"

कैकेयी की ऐसी दृढ़ वाणी सुनते ही दशरथ सहसा गिर पड़े और दीन स्वर में कहने लगे, "राम को और समूची अयोध्या को अभिषेक की सूचना दे देने के बाद अब मैं उससे भिन्न दूसरी सूचना उन्हें कैसे दूं ? राम को बनवास के लिए जाने की बात मैं कैसे कहूं ? अपने प्यारे राम के बिना मैं कैसे जी सकूंगा ? कैकेयी ! तेरे पैरों पड़कर कहता हूं कि तू फिर से विचार कर।"

कैकेयी बोली, "महाराज ! आपसे न कहा जाय, तो कैकेयी कहने को तैयार है। राम के बदले भरत के अभिषेक की घोषणा मैं कर दूंगी और राम को वन में जाने की बात भी मैं कह दूंगी। यह सब करते हुए मेरा मन जरा भी हिचकिचायेगा नहीं। मैं आपकी तरफ से राम को, गुरु वसिष्ठ को और अयोध्या की प्रजा को सबकुछ बेधड़क कह दूंगी। महाराज ! आप अब अपनी शैया पर पधारिए। आज आपको बहुत कष्ट हुआ है।"

शैया की ओर जाते-जाते दशरथ बोले, "कैकेयी, अभागिनी ! अब भी मेरी बात मान ले। मैं इसमें भारी अनर्थ देख रहा हूं। काल ने तेरी मति को हर लिया है। तू समझ जा और अपने सारे कुल की रक्षा कर ले !"

कैकेयी ने कहा, "महाराज ! अब वरदान दे देने के बाद आप उन्हें देने का पुण्य क्यों गंवा रहे हैं ?" इतना कहकर कैकेयी दशरथ की सेवा में जुट गयी।

: ३ :

अयोध्या की राजरानी

अयोध्यानगरी पर आज अभिषेक का प्रभात उगने वाला था। रात के अंतिम पहर से ही लोग अपने-अपने कामों में जुट चुके थे। रामचंद्र और सीता ने दर्भ की अपनी शैया छोड़कर प्रातर्विधि आरंभ कर दी थी। कुलगुरु वसिष्ठ पुरोहितों के साथ बहुत पहले ही अभिषेक मंडप में उपस्थित हो गये थे। पुर-कन्याएं नाना प्रकार के वस्त्राभूषण पहनकर रामचंद्र के स्वागत के लिए तैयार हो चुकी थीं। नगर का सामान्य जन-समुदाय अत्यंत उत्साह के साथ अभिषेक-मंडप की ओर बढ़ा चला आ रहा था।

सवेरा होते ही रामचंद्र स्वयं अभिषेक-मंडप की ओर जाने को निकल पड़े। माता कौशल्या ने उन्हें तिलक लगाया, ब्राह्मणों ने आशीर्वाद-मंत्रों का पाठ किया, सीता ने अपने अंतर की भावना के साथ उन्हें विदा दी और राम रथ में बैठकर मंडप की ओर चल पड़े। रास्ते में लोग जगह-जगह उनके दर्शनों के लिए और पूजन के लिए रथ को रुकवाते थे; स्थान-स्थान पर कन्याएं पुष्पों द्वारा उनका स्वागत करती थीं; जगह-जगह अयोध्या की वृद्ध स्त्रियां अपने डगमगाते पैरों से दौड़कर उनका मुंह देखने को इकट्ठी हो जाती थीं; जगह-जगह अयोध्या के नये युवराज का जय-जयकार होता था; जगह-जगह नागरिक अपने मूक नमस्कार द्वारा रामचंद्र का अभिवादन कर रहे थे।

ज्योंही रामचंद्र मंडप के निकट पहुंचे, गुरु वसिष्ठ ने द्वार पर उनका स्वागत किया। रामचंद्र ने वसिष्ठ के पैर छुए और फिर वे अपने आसन पर आकर बैठ गये। मंडप में स्वस्तिवाचन का श्रीगणेश हुआ, वेद-मंत्रों का घोष होने लगा, अग्नि प्रकट करने की तैयारियां शुरू हुईं। सारे पुरोहित आ चुके थे। सब अध्वर्यु उपस्थित थे। सामगान करनेवाले सब उपस्थित हो चुके थे। आचार्य उपस्थित थे। उपाचार्य उपस्थित थे। रामचंद्र उपस्थित थे। सभी प्रेक्षक अपनी-अपनी जगह बैठ चुके थे। लक्ष्मण सुसज्ज

होकर रामचंद्र की पीठ के पीछे खड़े थे। केवल महाराज दशरथ की बाट जोही जा रही थी।

अभिषेक का मुहूर्त बीता जा रहा था। यह देख वसिष्ठ ने महाराज को लिवा लाने के लिए आदमी-पर-आदमी भेजे। एक गया, दूसरा गया, तीसरा गया; पर न महाराज आये और न उनके कोई समाचार ही आये। इस कारण सब चिंतित हो उठे। अंत में स्वयं रामचंद्र खड़े हुए और वे महाराज के पास गये। कैकेयी के महल में, जहां महाराज दशरथ सोये थे, रामचंद्र वहीं पहुंचे।

आज जब सारी अयोध्या हर्ष और आनंद से पुलकित हो रही थी, ऐसे समय कैकेयी का महल बिलकुल सूना लग रहा था। लोगों के चेहरों पर कोई तेज नहीं था। महल के रास्तों की सफाई नहीं हो पाई थी। जगह-जगह कूड़े-कचरे के ढेर लगे थे। महल में सन्नाटा-सा छाया हुआ था। ऐसा लग रहा था, मानो उसे बिजली का कोई बड़ा धक्का लगा हो!

महल में पहुंचकर रामचंद्र ने लोगों से पूछना शुरू किया, लेकिन किसी से कोई ठीक समाचार नहीं मिले, इसलिए वे सीधे महाराज के शयन-गृह की ओर चल पड़े। वहां जीने के ऊपरी छोर पर उन्होंने कैकेयी को बैठा देखा। कैकेयी को देखते ही रामचंद्र ने उसके चरणों में अपना सिर झुका दिया और कहा, "माताजी! महाराज कहां हैं? अभिषेक का समय हो चुका है। गुरु वसिष्ठ मंडप में महाराज की बाट जोह रहे हैं।"

कैकेयी बोली, "रामचंद्र! महाराज तो अभी जागे ही नहीं हैं।"

रामचंद्र ने आश्चर्यचकित होकर पूछा, "महाराज जागे ही नहीं हैं? महाराज का स्वास्थ्य कैसा है?"

कैकेयी ने कहा, "स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं लगता।"

रामचंद्र बोले, "मैं महाराज से मिल लूं और फिर वैद्यराज को बुला लाऊं!"

कैकेयी ने कहा, "रामचंद्र! न तेरा महाराज से मिलना जरूरी है और न वैद्यराज को बुलाना ही जरूरी है।"

रामचंद्र से रहा न गया। बोले, "माताजी! मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि आप ऐसा क्यों कह रही हैं? महाराज ने आज अभिषेक की तैयारियां

करवाई हैं। सारे पुरोहित वहां महाराज की प्रतीक्षा में बैठे हैं। आप यह तो जानती ही हैं कि महाराज का स्वास्थ्य ठीक न रहने पर सारी अयोध्या चिंतित हो उठती है। महाराज की अस्वस्थता का उपचार तुरंत होना चाहिए।"

कैकेयी ने कहा, "रामचंद्र! महाराज की अस्वस्थता का उपचार करना तेरे हाथ में है।"

राम हाथ जोड़कर बोले, "मां, मैं इसके लिए तैयार हूं।"

कैकेयी ने उलटकर पूछा, "रामचंद्र! क्या तू सचमुच ही तैयार है?"

जवाब में रामचंद्र बोले, "इसमें पूछने की क्या बात है?"

ककेयी ने कहा, "महाराज तुझे दो आज्ञाएं देना चाहते हैं। यदि तू इन दो आज्ञाओं को स्वीकार कर ले, तो महाराज का स्वास्थ्य फौरन सुधर जाय। महाराज ने मुझे आदेश दिया है कि उनकी ये दो आज्ञाएं मैं तुझे सुना दूं।"

रामचंद्र बोले, "महाराज की दो आज्ञाएं तो क्या, राम तो उनकी ऐसी बाईस आज्ञाओं को भी स्वीकार करने के लिए तैयार है। महाराज दशरथ आज्ञा करें और माता कैकेयी उन आज्ञाओं को सुनाएं, ऐसा धन्य दिन और कब उग सकता है! आप निःसंशय होकर मुझे राजाज्ञा सुना दीजिए!"

कैकेयी ने कहा, "सुन। पहली आज्ञा तो यह है कि तेरे स्थान पर भरत को युवराज बनाया जाय।"

रामचंद्र बोले, "यह तो अमृत से भी मीठी आज्ञा है। राम इस आज्ञा को सिर-माथे चढ़ाता है। माताजी! महाराज से कहिए कि राम की तलवार सदा भरत के चरणों में रहेगी। अब मुझे दूसरी आज्ञा सुना दीजिए।"

कैकेयी ने कहा, "दूसरी आज्ञा यह है कि तुझे चौदह वर्षो तक बनवास में रहना हैं।"

रामचंद्र बोले, "महाराज की मुझ पर बड़ी कृपा हुई। राम इस आज्ञा को भी शिरोधार्य करता है।"

कैकेयी ने कहा, "रामचंद्र, तू जा और गुरु वसिष्ठ को बता दे कि महाराज की इस इच्छा के कारण आज अभिषेक नहीं होगा।"

रामचंद्र ने शांतिपूर्वक पूछा, "माताजी! और कोई सूचना देनी है?"

जवाब में कैकेयी ने कहा, "और तो कोई सूचनाएं हैं नहीं, मैंने महाराज की आज्ञाएं तुझे सुना दी हैं। महाराज स्वयं तुझसे कह नहीं सकते थे, इसलिए यह काम उन्होंने मुझे सौंपा था ! तू भी अपनी तैयारी कर ले।"

... ...

मंथरा ने कहा, "कैकेयी ! शावाश, शावाश ! तुमने बड़ी दृढ़ता दिखाई। अब सब देख लो। अयोध्या के ये लोग तुम्हारे पास आ रहे हैं। तुम इन्हें भी ठीक-ठीक सुना देना।" यों कहकर मंथरा चली गई और कैकेयी के पास अयोध्या के नागरिकों का दल आ पहुंचा। समूचा महाजन मंडल आया।

नगर सेठ बोले, "माताजी ! महाराज से कहिए और अब तो ठीक है, पर राम को वनवास देने की बात प्रजा को उचित नहीं लगी है। रामचंद्र को उनके किस अपराध के लिए वन भेजा जा रहा है ?"

कैकेयी ने कहा, "सेठजी ! यदि महाराज की आज्ञा में आपका विश्वास है, तो आप दूसरा कोई विचार न करें। बड़े लोगों की कुछ आज्ञाएं तुरंत समझ में नहीं आतीं; लेकिन बाद में जब उनका मर्म समझ में आता है, तो उनके लिए मन में सम्मान की भावना जागती है। यदि अयोध्या की प्रजा के मन में महाराज की बुद्धि के प्रति सम्मान की भावना हो, तो आज समझ में न आने पर भी आप उनकी इस आज्ञा का स्वागत कीजिए।"

दूसरे सेठ बोले, "माताजी ! सम्मान तो है, पर साथ ही सचाई यह है कि बात हमारी समझ में नहीं आ रही। स्वीकार तो करनी ही है। हम स्वीकार न करेंगे, तो स्वयं रामचंद्र स्वीकार कर लेंगे। उसमें हमारा क्या बस चलेगा ? किंतु, माताजी ! आपको यह तो पता चला ही होगा कि कुमार लक्ष्मण गुस्से से भर उठे हैं"

कैकेयी ने कहा, "हां, मुझे खबर मिली है। मैंने सुना है कि स्वयं रामचंद्र ने ऊपरी मन से आज्ञा स्वीकार की है, लेकिन इस तरह लक्ष्मण को उभारकर वह उपद्रव करना चाहता है। महाजन के नाते आप सबको इसका भी ध्यान रखना है। यदि लक्ष्मण उपद्रव करे, तो आप सबको महाराज की मदद में खड़े रहना है।"

नगर सेठ बोले, "हम तो मदद में खड़े ही हैं, पर हम कौन तलवार

पकड़ना जानते हैं ? हम तो दीन प्रजा-जन हैं। हम तो आपके मारने पर भी रोयेंगे और दूसरों के मारने पर भी रोते बैठेंगे।"

कैकेयी ने कहा, "सेठजी ! यह कैसे चलेगा ? आपको अपनी शक्ति दिखानी चाहिए।"

सेठ बोले, "हमें शक्ति ही दिखानी हो, तो हम आपको क्यों न दिखाएं ? इस अभिषेक का बंद रहना तो बड़ा अपशकुन लग रहा है, फिर भी हम चुपचाप बैठे हैं। क्या करें ? कहां जांयं ? आप कहती हैं कि महाराज की आज्ञा है, तो हम उसे महाराज की आज्ञा मान लेते हैं। यदि आप कहें, 'मेरी आज्ञा है' तो हम आपकी आज्ञा मान लेंगे। राजमहल की खिड़कियों में से जो कोई भी बोलेगा, हमारे लिए तो उसकी बात आज्ञा, आज्ञा और आज्ञा ही रहेगी न ? किंतु माताजी ! आप हमारी बात मान लें और राम को वन में न भेजें तो अच्छा हो। हमें इस सबके मूल में कहीं कल्याण नहीं दिखाई देता।"

कैकेयी ने कहा, "सेठजी ! आप इन बातों को समझ नहीं सकेंगे। जो राज-काज में पड़े होते हैं, वे ही इन्हें समझ पाते हैं। आप तो श्रद्धापूर्वक सबकुछ स्वीकार कीजिए। इस सबके परिणाम की जिम्मेदारी आप महाराज की और मेरी मानिए।"

सेठ बोले, "जैसी आपकी मरजी ! पर क्या जिम्मेदारी हमारी भी नहीं है ? मान लीजिए कि राज्य पर कोई संकट आया। क्या उस समय हमारे घर-बार पहले नहीं लुटेंगे ? मान लीजिए कि महाराज का सिर दुखा, पेट दुखा, तो क्या हमें उसकी कोई चिंता ही नहीं करनी है ? जिम्मेदारी तो हमारी भी है; लेकिन आप राजा हैं, राजरानी हैं। आपके सामने हमारी अक्ल काम नहीं करती। माताजी ! हम जाते हैं। हमारी बात महाराज के कानों तक पहुंचा दीजिए, और उचित प्रतीत हो, तो इस आज्ञा के बदले दूसरी कोई आज्ञा दीजिए।"

कैकेयी ने कहा, "ठीक है, आप जाइए। सेठजी ! लक्ष्मण को समझाकर शांत कीजिए। यह तो आप भी मानते हैं न कि महाराज को दुःख देने से किसी का कोई कल्याण नहीं होगा। जाइए। लक्ष्मण से यही बात कह दीजिए।"

इस चर्चा के बाद कैकेयी अपने शयन-गृह में चली गई और महाजन-मंडल वापस लौट गया।

: ४ :

बाज़ी बिगड़ी

कैकेयी के महल के एक कमरे में कैकेयी और मंथरा दोनों बैठी थीं। रात के कोई बारह बजे होंगे।

कैकेयी बोली, "मंथरा ! मैंने तुझसे कहा नहीं था कि भरत यह बात स्वीकार नहीं करेगा ? आखिर वही बात हुई। मैंने दशरथ-सा पति गंवाया, राम-से पुत्र को बैरी बनाया, भरत तो मेरा रहा ही नहीं, मैं समूची अयोध्या में सबकी अनचहेती बनी, और अब राजगद्दी पर तो जो बैठे, सो बैठे !"

मंथरा ने कहा, "कैकेयी ! मैं इस बात की कल्पना ही नहीं कर पाती हूं कि तुम लोग इतने अधिक मूर्ख क्यों होते हो ? अभी तो भरत के साथ तुम्हारी बात भर हुई है।"

कैकेयी बोली, "लेकिन बात-ही-बात में तो भरत ने मुझे गालियां दीं और कह दिया कि वह गद्दी पर बैठेगा नहीं।"

मंथरा ने कहा, "यह सब तो इन राजपुरुषों का अपना पाखंड है। कैकेयी ! तुम इन बातों को नहीं समझतीं। मैं समझती हूं। क्या भरत आकर तुमसे यह कहता, "मां ! तूने ठीक ही किया। ले मैं गद्दी पर बैठता हूं ? अभी तो भरत स्थिति को तौल रहा है। तुम्हें गालियां भी इसलिए दी हैं कि बात लोगों के कानों तक पहुंचे, तो वे वाह-वाह करें। क्या तुम्हें गाली देने से भरत तुम्हारा बेटा नहीं रह गया ? बात यों है कि भरत स्वयं तो गद्दी पर बैठने से इंकार करे और फिर सबके आग्रह को मानकर गद्दी पर बैठे, तो दुनिया में उसकी सज्जनता का डंका बजे और राज्य तो उसके हाथ में रहेगा ही।"

कैकेयी बोली, "लेकिन उसने तो कौशल्या से भी कह दिया कि राम के बिना वह स्वयं गद्दी पर नहीं बैठेगा।"

मंथरा ने कहा, "तुम समझ लो कि ये सारी राजनीति की चालें हैं। भरत समझ चुका है कि आज समूची अयोध्या का वातावरण तुम्हारे विरुद्ध है, इसलिए वह ऊपरी मन से तुम्हारा विरोध कर रहा है, पर उसके दिल में ऐसी कोई बात नहीं है। कैकेयी ! ऊपर से कुछ और दिखाना और अंदर से कुछ और ही होना, इसी को तो राजनीति कहते हैं।"

कैकेयी बोली, "लेकिन मंथरा, मेरा भरत ऐसा कोई काम नहीं कर सकता।"

मंथरा ने कहा, "यों तो मैं जानती हूं कि तुम सब कैसे और कितने सत्यवादी हो। क्या मैं नहीं जानती कि तुमने महाराज दशरथ के साथ कैसा नाटक खेला था ? जो लोग सत्य की बहुत डींग हांकते हैं, अवसर आने पर वे सभी गिरते हैं—किसी को छोटा स्वार्थ गिराता है, तो किसी को बड़ा ! पर गिरते सब हैं। हमारा मुंह छोटा है, इस कारण हम नौकरी-जैसे स्वार्थ के लिए गिरते हैं। आपका मुंह बड़ा है। अतः सिंहासन-जैसे बड़े स्वार्थ के लिए आप गिरते हैं। कोई जल्दी गिरता है, कोई देर से गिरता है; कोई कम गिरता है, कोई अधिक गिरता है; कोई सस्ते में गिरता है, कोई महंगा बनकर गिरता है; पर दुनिया का मेरा अनुभव यह है कि मनुष्य-मात्र गिरता है। कैकेयी ! निश्चय समझो कि तुम्हारा भरत भी गद्दी स्वीकार करेगा। आज आते ही उसने बड़ा जोश दिखाया है, लेकिन मैं कहती हूं कि दो दिनों में ही उसका यह जोश ठण्डा पड़ जायगा। तुम हिम्मत से काम लो। बार-बार भरत से मिलती रहो; उसके मन में अधिक प्रवेश करो, और फिर देखो कि मंथरा जो कहती है, सो सच है या नहीं।"

कैकेयी बोली, "मंथरा ! मेरा मन गवाही नहीं दे रहा कि भरत यह सब उतनी ही खूबी के साथ कर रहा है, जितनी तू बता रही है। भरत का शोक, मुझपर भरत का रोष, गद्दी न स्वीकारने का भरत का निर्णय—ये सब सरासर बनावटी ही हैं और समय पाकर वही सब होने को है, जो तू कह रही है, सो तो भगवान ही जानें; पर मेरा मन तेरी बात मानने को तैयार नहीं हो रहा।"

मंथरा ने कहा, "कैकेयी ! कुछ ही दिनों में तुम मेरी बात समझ सकोगी।"

कैकेयी बोली, "मंथरा ! तेरी बातों के फेर में पड़कर मैं एक चोट तो खा ही चुकी हूं और नतीजे में आज विधवा बनकर बैठी हूं। अब दूसरी चोट खाऊं और अपने पुत्र को भी गंवा बैठूं, तो बोल, फिर मैं कहां जाऊंगी ? मंथरा ! मुझे तो स्पष्ट दीख रहा है कि भरत अयोध्या की गद्दी पर नहीं बैठेगा।"

मंथरा ने चिढ़कर कहा, "कैकेयी ! तुम्हारे जैसी स्त्री से काम लेना भी एक मुसीबत ही है ! तुम लोग हम पर पूरा विश्वास रखते नहीं, मंझधार में आकर फिसल पड़ते हो, और जब विपरीत परिणाम आता है, तो सारा दोष हम पर थोप देते हो। कैकेयी ! मैं ठीक कह रही हूं, तुम फिर भरत से मिलो और उसे समझाओ। तुम्हें पता चलेगा कि भरत मेरी बात को इशारे में ही समझ चुका है। भरत ही तुम्हें समझावेगा कि जो कार्य-वाही मैंने की है, वह तुम दोनों के लिए कितनी लाभप्रद है।"

कैकेयी बोली, "मंथरा ! मुझे तो अब इसकी रंचमात्र भी आशा नहीं रही। फिर भी तेरे इशारे पर इतने कदम चली हूं, तो एक कदम और सही, पर यह निश्चय समझ ले कि मुझे तेरी इस बात में कोई सार नजर नहीं आता।"

••• ••• •••

कैकेयी सिर दबाते-दबाते बोली, "भरत, बेटा भरत ! जरा आंख तो खोल। यह तो देख कि तेरी मां तेरे सिरहाने बैठी है !"

भरत ने करवट बदलते हुए कहा, "कैकेयी ने मुझे जन्म दिया है, पर आज मैं उसे अपनी मां नहीं कह सकता। माता के नाते वह अपना अधि-कार गंवा चुकी है।"

कैकेयी की आंखें डबडबा आईं। वह बोली, "क्या मेरा भरत यह कह रहा है ?"

जवाब में भरत ने कहा, "हां, भरत कह रहा है, कैकयराज का नाती और महाराज दशरथ का भरत कह रहा है।"

भरत के शरीर को सहलाती हुई कैकेयी बोली, "बेटा, ! क्या

इसी दिन के लिए मैंने तुझे नौ महीने अपने पेट में रखा था ? बेटा ! तेरी अनुपस्थिति में तेरे अधिकार की रक्षा करने में मैं महाराज को भी खो चुकी हूं। तू मुझे उसका यह बदला दे रहा है ? मेरा ही नसीब खोटा है कि मैं महाराज के साथ मर न गई !"

भरत बिछौने में उठ बैठा और बोला, "कैकेयी ! तूने समूचे रघुकुल का सत्यानाश कर डाला है। मंथरा-जैसी दुष्टा की सलाह मानकर तूने सारे राज्य पर संकट बुला लिया है। कैकेयी ! याद रख, तेरी एक भी आशा पूरी नहीं होगी।"

कैकेयी ने कहा, "बेटा भरत ! इसे मेरी भूल समझनी हो, तो भूल समझ ले; लेकिन क्या अब यह तेरा कर्त्तव्य नहीं है कि तू उस भूल को सुधार ले ? क्या तूने कभी सोचा है कि यदि तू गद्दी पर बैठने को राजी न हुआ, तो तेरी माता की कितनी फजीहत होगी ?

भरत नम्रता-पूर्वक बोला, ! तेरी भूल सुधारने का एक ही मार्ग है, और वह यह है कि मैं राम को वापस लाऊं और उनके बदले स्वयं चौदह वर्ष वन में रहूं।"

कैकेयी ने कहा, "बेटा ! मेरे जलते दिल को और अधिक न जला। तू महाराज की गद्दी पर अवश्य बैठ। राम को वन से वापस लाना हो, तो सहर्ष ले आ। मैं इसमें सहमत हूं।"

भरत आगे बोला, "कैकेयी ! तुझे पता नहीं, राम को वन में भेज-कर भरत गद्दी पर बैठ जायगा, तो समूचा इक्ष्वाकु-कुल लांछित हो जायगा। मैं तो अभी तक समझ ही नहीं पा रहा हूं कि तूने महाराज से ऐसा वर क्यों मांगा ? तूने कभी रामचंद्र को अन्य भाव से नहीं देखा; रामचंद्र ने कभी तुझसे कुछ नहीं कहा, फिर भी ऐसा वर मांगने की बात तुझे क्यों सूझी !"

कैकेयी ने कहा, "बेटा भरत ! मुझे आश्चर्य इस बात का है कि मैंने जो कुछ भी किया, तेरी ही भलाई के लिए किया और वही तुझे पसन्द नहीं आया।"

कैकेयी पर अपनी आंख गड़ाते हुए भरत बोला, "कैकेयी ! सच कहना। महाराज जा चुके हैं। तेरा भरत भी जाने की तैयारी में है। क्या यह सब

तुझे मथरा ने नहीं सिखाया था ? क्या कल ही रात को वह दुष्टा तुझे और उभार नहीं रही थी ? कैकेयी ! अयोध्या के राजमहल में महाराज के सलाहकार कुलगुरु वसिष्ठ हैं और रानियों की सलाहकार गुरु-पत्नी अरुन्धती हैं। तुम लोग इन दो कौड़ी की स्त्रियों की सलाह पर चलती हो, इसी से ये राज्य उलट-पलट जाते हैं। वह पापिनी मंथरा हमारे राज-काज को क्या समझे ? अयोध्या का गद्दी-पति कौन बने, इसका निर्णय ऐसे दास-दासी करने लगेंगे, तो समझ लो कि इस पृथ्वी पर से क्षत्रिय का बीज ही नष्ट हो जायगा। कैकेयी ! तूने बहुत ही बुरा काम किया है और हमारे सारे कुल पर ऐसा प्रहार किया है कि जो भुलाए भूला नहीं जा सकेगा। मैं बड़े भैया को मनाकर वापस लाऊंगा, पर मुझे पूरा सन्देह है कि वे शायद ही आयें। तू यह निश्चित समझ ले कि भरत इस गद्दी पर कभी नहीं बैठेगा।"

कैकेयी ने कहा, "बेटा ! तू मेरा अपना पुत्र है, इसलिए मैं तुझसे अपना दिल खोलकर कह रही हूं। दुष्ट मंथरा ने ही मुझे भुलावे में डाल-कर मुझसे यह सबकुछ करवाया है। अब तू ऐसा कुछ कर कि जिससे मेरा पश्चात्ताप शान्त हो। अगर मुझे पता होता कि ऐसा होनेवाला है, तो मैं ये वर मांगती ही क्यों ? मैं तो राज्य लेने निकली थी, पर आज पुत्र को गंवाने बैठी हूं। बेटा ! मुझे माफ कर। राम को गद्दी पर बैठना हो, तो राम बैठें; तुझे बैठना हो, तो तू बैठ; पर मैं तो तुझसे यही मांगती हूं कि मेरा भरत मुझे छोड़कर वन में न जाय।"

भरत ने जवाब दिया, "कैकेयी ! जब तूने कौशल्या और सुमित्रा के पुत्रों को हंसते हुए वन के लिए बिदा किया, क्या उस समय तूने उनकी स्थिति पर विचार किया था ?"

कैकेयी ने कहा, "भरत ! ऐसी बातें कहकर मेरे दुःखी दिल को और मत दुःखा ! मैं कुछ नहीं कहती। मुझे पूरी श्रद्धा है कि तू जो भी करेगा, विचार-पूर्वक ही करेगा।"

भरत बोला, "लेकिन पहले तू उस दुष्टा को निकाल बाहर कर।"

कैकेयी ने कहा, "बेटा, आज वह बेचारी कहां जायगी ? फिर शत्रुघ्न ने उसे अभी-अभी अधमरी तो कर ही दिया है। अब तुम उसे मत

छेड़ो। मैं कोई अच्छा-सा साथ ढूंढ़कर उसे वापस कैकय भेज देती हूं। बेचारी बड़ी दीन-दुखिया है !"

भरत बोला, "दीन तो है नहीं। बड़ी शैतान है। यह सारा बखेड़ा उसीने तो खड़ा किया है।"

कैकेयी ने कहा, "इसमें उसका क्या दोष है ? दोष तो सब मेरा है। वह बेचारी तो बस एक निमित्त बन गई है।" इतना कहती हुई कैकेयी भरत के पलंग से उतरकर पास के कमरे में चली गई और भरत कौशल्या के महल की ओर चल पड़ा।

: ५ :

पश्चात्ताप

सीता ने कैकेयी के चरणों में अपना सिर रखते हुए कहा, "माताजी ! सीता आपको प्रणाम कर रही है।"

कैकेयी बोली, "बेटी सीता ! वीर माता बनना और मेरे रामचंद्र के साथ को सुशोभित करना। बेटी ! आज मैं कुछ कह नहीं सकती। जब मैं सोचती हूं कि मुझ अभागिन ने तुम्हें कैसे-कैसे दुःख दिये हैं, तो मेरी आंखों के सामने अंधेरा छाने लगता है। तुम्हारे समान सुकुमार फूलों को मैंने भरी दुपहरी में जंगल-जंगल भटकाया। बेटी ! सीता ! तू मुझे माफ कर दे।"

सीता ने कहा, "माताजी ! आप ऐसा मत कहिए। रामचंद्र तो कहते हैं कि इस सबके पीछे कोई ईश्वरी संकेत रहा।"

कैकेयी बोली, "सीता ! मुझे ऐसे किसी संकेत का तो कोई पता है नहीं। मैं तो इतना ही जानती हूं कि मंथरा ने मुझे उकसाया, मैंने महाराज के सामने हठ करने की ठानी और तुम सबको दुःख दिया !"

सीता ने कहा, "माता ! इसमें आप भी क्या करतीं और बेचारी मंथरा भी क्या करती !"

कैकेयी बोली, "नहीं, मैंने तुझे वन में न भेजा होता, तो क्या रावण तुझको यों उठाकर ले जाता ?"

सीता ने कहा, "माताजी ! यह सब क्यों होता है, सो तो मैं समझ नहीं सकी हूं। आप तो हमें वन में भेजने की बात कर रही हैं, लेकिन उस पर्णकुटी में लक्ष्मण से न कहने-जैसी बातें कहकर मैंने उन्हें रामचंद्र की मदद के लिए क्यों भेजा ? न भेजा होता, तो मेरी ऐसी दशा न हुई होती। फिर, लक्ष्मण गए क्यों ? मैंने उनसे कुछ भी क्यों न कहा हो, पर उन्हें जो उचित लगा, वह उन्होंने किया क्यों नहीं ? मैं तो सोचती हूं कि यह सब इसी तरह होने को बदा था, इसीलिए हमें ऐसा सूझा। इसके लिए आप अपना मन दुःखी क्यों करती हैं ?"

कैकेयी बोली, "भला मुझे दुःख क्यों न होगा ? मेरे ही हठ के कारण महाराज गए; मेरे ही हठ के कारण मेरा बेटा जटाधारी बनकर बैठा; मेरे ही हठ के कारण जनकपुत्री रावण की लंका में बंदिनी बनी और मेरे ही हठ के कारण कौशल्या और सुमित्रा के दुःख का पार न रहा। इसलिए मेरा मन तो दुःखी होगा ही न ? आज जब तेरा अभिषेक देखा, तो मेरे मन को बड़ी शांति मिली। उस दिन तो सबकुछ तैयार था, पर पता नहीं क्यों, अभागिनी कैकेयी ने उसे धूल में मिला दिया !"

सीता ने कहा, "माताजी ! होनहार थी, सो हो गई। आप शोक मत कीजिए। अब आप हमें आशीर्वाद दीजिए, जिससे हम सबका कल्याण हो, फिर, कौन जानता है कि कल क्या होनेवाला है !"

कैकेयी बोली, "बेटी ! ऐसी बात मत बोल। अब आगे कुछ भी होना नहीं है, और अगर कुछ होने को है, तो मैं भगवान से प्रार्थना करती हूं कि उसे देखने के लिए वह मुझे जीवित न रखे।"

सीता ने कहा, "आपको तो जीवित रहना है और हमारे सिर को अपने छत्र की छाया देनी है।"

कैकेयी बोली, "सीता ! अब तो मैं भगवान से यही मांगती हूं कि वह मुझे मौत दे दें ! आजतक मैं भरत की आशा से जीवित रही हूं। क्या अब महाराज भी मुझे नहीं बुलायंगे !"

सीता ने कहा, "आप यह समझिए कि महाराज ने हमारे लिए ही

आपको यहां रोक रखा है । माताजी ! मैं जाती हूं। माता कौशल्या मेरी राह देख रही होंगी।"

कैकेयी बोली, "जा, बेटी ! जा। फिर कभी आना।" यों कहकर कैकेयी ने सीता को बिदा किया और स्वयं अपने कमरे में चली गई।

... ...

रामचंद्र के राज्याभिषेक के कुछ ही वर्षों बाद कैकेयी की मृत्यु हुई। □

हनुमान

: १ :

अंजना-सुत

गोतमी ने कहा, "अंजना ! इधर कुछ समय से मैं देख रही हूं कि तेरा हनुमान सयाना होता जा रहा है।"

अंजना बोली, "माताजी ! बचपन के इसके ऊधमों की याद करती हूं, तो आज भी मेरी छाती धड़क उठती है। ऋषि-पत्नी ! मैंने आपसे कभी कहा नहीं। जब हम मेरु पर्वत पर रहते थे और यह बहुत ही छोटा था, उस समय एक दिन सुबह उगते सूरज को देखकर यह बुरी तरह मचल पड़ा। कहने लगा, 'मुझे तो यही फल चाहिए।' और उठ-उठकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ने लगा। मैंने इसे बहुतेरा समझाया, फुसलाया, लेकिन जब मैं इसे अकेला छोड़कर थोड़ी दूर चली गयी, तो इतने ही में यह सूरज को पकड़ने के लिए सीधा आकाश की तरफ उड़ा। उस समय ऊपर से नीचे गिरने पर इसकी दाढ़ी टूट गयी। इस कारण हम इसे हनुमान कहते हैं।"

गुरु-पत्नी कहने लगीं, "अंजना ! यह तो अच्छा ही है कि छोटे बालक छुटपन में ऐसे-ऐसे ऊधम करते हैं। अभी जो बात तूने कही, उसे मैं जानती नहीं थी। लेकिन क्या स्वयं मैंने इसके उत्पातों को नहीं देखा है ? एक पेड़ पर से दूसरे पर ही नहीं, तीसरे-चौथे पर भी नहीं, बल्कि पांचवें और दसवें पेड़ पर झूलकर कूदना, पर्वत के एक शिखर पर से दूसरे शिखर पर छलांग मारकर पहुंचना, पहाड़ पर चढ़कर बड़े-बड़े शिखरों को हिला-डुलाकर ढहा देना, बड़े-बड़े वृक्षों को जड़ों के साथ जमीन में से उखाड़ लेना, आकाश के रास्ते उछल-कूद कर धूम मचाना, बड़े-बड़े सागरों के तल में डुबकी लगाना, फूले-फले अनेक जंगलों को बात-की-बात में जला देना— हनुमान के ये सारे ऊधम मुझसे कौन छिपे हैं ?"

अंजना बोली, "माताजी ! आप ऋषिजनों के शुभाशीर्वादों के कारण ही अब हनुमान धीरे-धीरे अपने रास्ते पर आने लगा है।"

गोतमी ने जानकारी देते हुए कहा, "अंजना ! अभी कल सवेरे ही की तो बात है, हनुमान ने हमारे आश्रम में आकर वल्कलों की धज्जियां उड़ा दीं। अभी एक दिन सुबह आकर हमारे बछड़ों को खोल दिया। वे सब गायों का दूध पी गये। नतीजा यह हुआ कि उस दिन न हमारे बालकों को दूध मिला और न हमारे होम-हवन के लिए ही दूध पहुंच पाया। और आश्रम के इन पेड़ों की बात सुनाऊं ! इधर आम बौराने लगते हैं और उधर हनुमान रोज आ-आकर बारीक निगाह से सबकुछ देख जाता है। जब अमिया आने लगती हैं, तो फिर पूछना क्या ! कुछ समय पहले देखती हूं कि डालों पर कच्चे आम लगे हैं। सोचती हूं कि फूल-फल बीन चुकने के बाद उन्हें तोड़ लूंगी, लेकिन लौटकर देखती हूं, तो पेड़ पर आम का नाम नहीं ! ऊपर डाल पर निगाह दौड़ाती हूं, तो देखती क्या हूं कि हनुमान ठाठ से बैठा है और मुंह चला रहा है, और अंजना ! कभी उसे पकड़ पाती हूं और पीटने के लिए हाथ उठाती हूं, तो ऐसी सुंदर हँसी हँसता है कि मेरा उठाया हुआ हाथ जहां-का-तहां रह जाता है और यह मेरे दूसरे हाथ पर आ बैठता है ! फिर दूसरे दिन सुबह देखती हूं तो हनुमान आम की डाल पर बैठा कोयल को बुला रहा है ! अंजना ! आम हों, अमरूद हों, केले हों, कटहल हों, जामुन हों, तेरा यह हनुमान किसी पेड़ पर कोई फल रहने ही नहीं देता। अंजना ! आश्रम में उछल-कूद करना, समिधाओं के बड़े-बड़े गट्ठरों में आग लगा देना, बछड़ों को दूध पिला देना, फल खा जाना, छप्परों और छतों को उलट-पुलट देना, और समूचे आश्रम को अस्त-व्यस्त कर देना—ये हैं वे धंधे, जो तेरा हनुमान दिन-रात करता रहता है। गुस्सा तो इतना आता है कि पकड़ में आ जाय, तो इसे जिंदा न छोड़ा जाय, पर जब पकड़ लिया जाता है, तो जी होता है कि इसका मुंह ही देखते रहें।"

अंजना ने कहा, "फिर भी माजी ! आप सबके आशीर्वाद से अब मेरा हनुमान सयाना होने लगा है।"

गोतमी बोली, "अंजना ! एक बात कहूं ? इसे और किसी से मत

कहना !"

अंजना ने कहा, "माजी ! मैं किससे कहने जाऊंगी ?"

गोतमी बोली, "कुछ दिन पहले सभी ऋषि-मुनि एकांत में बैठकर बातें कर रहे थे कि इस हनुमान के हाथों विश्व-कल्याण के बड़े-बड़े काम होनेवाले हैं। ऋषि लोग कह रहे थे कि हनुमान के ऊधम विश्व-शांति के काम में बड़ी मदद करेंगे।"

अंजना ने कहा, "धन्य भाग्य मेरे ! माजी ! मैं तो पामर स्त्री हूं। हमारी यह दुनिया आज इन भयंकर राक्षसों के त्रास से त्राहि-त्राहि पुकार रही है। मैं समझ नहीं पाती हूं कि इसमें से हम कैसे उबर पायंगे। माजी ! देखिए न, आज हमारे समूचे दक्षिण प्रदेश में वे लोग चारों ओर फैल गये हैं। जनस्थान को तो उन्होंने ऐसा बना दिया है कि कोई ऋषि-मुनि वहां पैर तक नहीं रख सकता। कुछ सूझता नहीं कि इस सबमें से शांति कैसे प्रकट हो पायगी ?"

गोतमी बोली, "अंजना ! ऋषि-मुनियों को तो लग रहा है कि थोड़े ही समय में यह सारा त्रास समाप्त हो जायगा। उन्हें तो नये युग का सूर्य दीखने लगा है। उनकी भविष्यवाणी है कि इस नये युग में तेरा हनुमान आगे आयगा—अगुआ बनेगा। लेकिन आज तो तेरा हनुमान अपने इस आश्रम में व्याकरण सीख रहा है।"

अंजना ने पूछा, "व्याकरण ? हम वानरों के लिए क्या व्याकरण और क्या वेद ! हम तो जंगल के जीव ठहरे। हमारे शरीर जंगली; हमारे रीति-रिवाज जंगली, हमारी अक्ल जंगली; हमारी भाषा भी जंगली। माजी ! हमारा तो सबकुछ जंगली ही है।"

गोतमी ने कहा, "किंतु वानरों की आत्मा तो जंगली नहीं है। जो आज संस्कारी दिखायी देते हैं, वे कल जंगली थे; और, जो आज जंगली दिखायी देते हैं, वे कल संस्कारी बननेवाले हैं।"

अंजना बोली, "माताजी ! वह चाहे जितना व्याकरण सीख ले, फिर भी हनुमान की भाषा जंगली ही रहेगी।"

गोतमी ने समझाते हुए कहा, "ऐसा कैसे हो सकता है ? कहते हैं कि हनुमान बहुत होशियार है। उसने अष्टाध्यायी पूरी पढ़ ली है और अब

वह आगे बढ़ा है। वानर होते हुए भी वह इतनी फुर्ती से सबकुछ सीख-समझ लेता है, मानो उग्र संस्कारों वाला कोई आर्य ही हो !"

अंजना ने कहा, "माजी ! यह सब तो आप आश्रमवासियों के प्रताप का ही फल है। वैसे देखा जाय, तो मेरे पिता कुंजर वानर थे, हनुमान के पिता केसरी भी वानर थे, और जिसकी कोख में हनुमान नौ महीने रहा, वह मैं अंजना भी वानरी ही हूं। इन सबके रहते हनुमान को नये संस्कार कहां से मिलें ? कैसे मिलें ?"

गोतमी बोली,"अंजना ! तू जानती नहीं। दुनिया में जैसे और अनेक चीजों की बारी आती है, वैसे ही सुधारों की और संस्कारिता की भी बारी आया करती है। ऐसी तब्दीली प्रकृति के स्वभाव में ही है। इसी कारण संसार का स्वास्थ्य निरंतर सुरक्षित रहता है। आज आर्य आगे बढ़ रहे हैं, तो कल राक्षस और वानर आगे बढ़ेंगे; आज गोरी प्रजा आगे होगी, तो कल पीली प्रजा आगे आयगी और परसों काली प्रजा आगे बढ़ेगी; आज नदियों के आसपास रहनेवाले लोग अधिक आगे बढ़ेंगे, तो कल समुद्र के किनारे रहनेवाले लोग उन्नत बनेंगे; आज शरीर-बलवाले लोग अगुआ हैं, तो कलबुद्धि-बल वाले लोग अगुआ बनेंगे। जिस तरह आम लोगों में ये परिवर्तन होते रहते हैं, उसी तरह देश-देश के बीच भी ऐसे परिवर्तन हुआ करते हैं। एक दिन पूर्व के देश आगे होंगे, तो दूसरे दिन पश्चिम के देश आगे रहेंगे; एक दिन उत्तर के देशों की बारी आयगी, तो दूसरे दिन दक्षिण के देशों को अवसर मिलेगा। संसार के ऐसे सनातन परिवर्तनों को परखनेवाले ऋषि अपने जीवन में सदा-सर्वदा जाग्रत ही रहते हैं, और ऐसे परिवर्तनों में निरंतर सबके आगे रहकर वे संसार के कल्याण की बातें सोचते रहते हैं।"

अंजना ने कहा, "माताजी ! आप तो ऋषि की जीवन-संगिनी बन-कर रहती हैं, इसलिए इस तरह की बातें कर सकती हैं। मुझमें तो यह सब समझने की भी शक्ति नहीं है।"

गोतमी बोली, "अंजना ! ऐसा मत कह ! तेरे समान स्त्री एक महा-पुरुष की मां बनती है, क्या यही काफी नहीं है ? लोग हनुमान को अंजना के पुत्र के रूप में पहचानेंगे। हनुमान सारी पृथ्वी पर अपने पौरुष का डंका

बजाकर अंत में अंजना की गोद में ही न अपना सिर रखेगा ? अंजना ! ऐसे वीर पुत्र की जननी बनने से बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है ? तेरे लिए इतना ही काफी है कि तू हनुमान को अपने आशीर्वाद देती रह ।"

अंजना बोल उठी, "बेटा हनुमान ! तेरा कल्याण हो । तू ऐसा जीवन जीकर दिखाना कि जिससे ऋषि-मुनियों की यह संगति और तेरी इस जननी की कोख सुशोभित हो ! गोतमी ! अब मैं जाऊंगी । आज मैंने आपका बहुत समय लिया ।"

यों कहकर अंजना वन में फूल-फल तोड़ने चली गयी और गोतमी आश्रम की ओर चल दी ।

: २ :

रामचंद्र-दर्शन

दक्षिण में मतंग नामक पर्वत है । इस पर्वत का ही एक भाग ऋष्यमूक कहलाता था और दूसरा मलय । इस मतंग पर्वत पर पंपा नाम का मनोहर सरोवर था । राम ने दीन वदन होकर इस पर्वत पर व्याकुलता-पूर्वक रुदन किया था । इस पर्वत पर ही मतंग ऋषि का आश्रम था । इस पर्वत के ही एक भाग में शबरी ने रामचंद्र का भावपूर्ण आतिथ्य करके देह-त्याग किया था । इस पर्वत पर ही बाली ने एक मरे हुए शत्रु का शरीर फेंककर ऋषि के आश्रम को अपवित्र किया था । इसी के कारण ऋषि ने बाली को शाप दिया था । आज इस पर्वत को हम नीलगिरि के नाम से पहचानते हैं ।

मतंग पर्वत की तलहटी में किष्किंधा नाम की बड़ी नगरी थी । ऋक्ष-रजा नाम का वानर उस किष्किंधा में राज्य करता था । सुग्रीव और बाली नामक उसके दो पुत्र थे । ऋक्ष रजा की मृत्यु के बाद बाली गद्दी पर बैठा

और सुग्रीव युवराज बना। एक बार वाली ने राक्षस के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। भागते-भागते राक्षस एक गुफा में घुस गया। बाली ने उसका पीछा किया। जाते-जाते वह सुग्रीव से कहता गया, "जबतक मैं गुफा के अंदर से वापस न आऊं, तबतक तू इस गुफा के द्वार पर बैठना।" सुग्रीव ने बारह महीनों तक गुफा के द्वार पर बाट देखी, पर बाली नहीं लौटा, उलटे एक दिन गुफा में से लहू बहता दिखायी पड़ा। इससे सुग्रीव घबरा गया और यह मानकर कि राक्षस ने बाली को मार डाला होगा, उसने गुफा के द्वार पर बड़ी शिला रख दी और वह किष्किधा की ओर चल पड़ा। किष्किधा पहुंचकर सुग्रीव ने बाली की स्त्री तारा को और समस्त प्रजाजनों को सारे समाचार सुनाए और प्रजा की सम्मति से वह गद्दी पर बैठा। सुग्रीव की भार्या रूमा पटरानी बनी।

इसी बीच एक दिन अचानक बाली किष्किंधा आ पहुंचा। उसने सुग्रीव को पुकारा, उसे गद्दी पर से उतार दिया, प्रजा के सामने अपनी सारी बात रखी और सुग्रीव को आज्ञा दी कि वह किष्किंधा की सीमा छोड़कर चला जाय। सुग्रीव की पत्नी रूमा को, बाली ने अपने अंतःपुर में रख लिया। सुग्रीव बाली के सामने बहुत गिड़गिड़ाया, उससे माफी मांगी, अपनी बात उसे समझाने का प्रयत्न किया, किंतु बाली का कोप इतना प्रबल था कि सुग्रीव को किष्किधा छोड़नी पड़ी।

अंजना-पुत्र हनुमान सुग्रीव का प्राणप्रिय मित्र था। दोनों ने साथ रहकर खूब ऊधम मचाया था; दोनों ने साथ रहकर न जाने कितनी मौज उड़ाई थी; दोनों ने साथ रहकर अनगिनत सपने देखे थे; दोनों ने साथ रहकर एक-दूसरे के दिल को पहचाना था। जब बाली ने सुग्रीव को किष्किधा से भगा दिया तो हनुमान भी सुग्रीव के साथ निकल पड़ा; हनुमान के साथ नल, नील और जांबवान भी सुग्रीव के पीछे हो लिये। वानरराज सुग्रीव और उसके मित्र ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगे। उनका विश्वास था कि किसी भी रूप में बाली का हाथ यहां तक पहुंच नहीं पायेगा।

एक बार सुग्रीव और उसके साथी वानर पर्वत के शिखर पर बैठे थे। तभी दूर पर वृक्षों की एक कतार के बीच उन्होंने राम-लक्ष्मण को देखा।

जैसे ही सुग्रीव की निगाह उन पर पड़ी, उसने हनुमान से कहा, "हनुमान! देख, उन वृक्षों की आड़ में वाली के दो जासूस आ रहे हैं। तूने उनको देखा ? कैसा बढ़िया तपस्वी का वेश बनाया है ! वाली को तो ऋषि का शाप है, इसलिए वह स्वयं यहां आ नहीं सकता, पर लगता है कि हमें मारने के लिए उसने इन गुप्तचरों को भेजा है। वाली का स्वभाव बहुत जहरीला है। मुझको नहीं लगता कि वह मुझे मारे बिना मेरा पीछा छोड़ देगा।"

जैसे ही सुग्रीव के मुंह से ये शब्द निकले, वाली के नाम से डरे हुए वानर वहां से भाग खड़े हुए और मलय पर्वत पर चढ़ गये। सुग्रीव भी हक्का-बक्का होकर चारों ओर निगाहें दौड़ाने लगा; किंतु हनुमान का तो रोआं भी नहीं फड़का।

हनुमान ने सुग्रीव से कहा, "वानरराज ! भय का कोई कारण नहीं है। मुझे बिलकुल नहीं लगता कि जो दो भाई चले आ रहे हैं, वे वाली के जासूस हैं। कितना मनोहर उनका शरीर है ! उनकी आंखों में बड़ी सज्जनता भरी है। उनकी चाल वीरों की चाल है। उनके मुंह पर शांति और शोक की छाया है। वे वाली के जासूस हो नहीं सकते।"

सुग्रीव बोला, "हनुमान ! तू नहीं जानता कि राजाओं के गुप्त दूत कितनी खूबी के साथ मनचाही पोशाक पहन सकते हैं, कितनी चतुराई के साथ अपनी इच्छानुसार मुखमुद्रा धारण कर सकते हैं और ऊपर से मीठे, पर अंदर से हलाहल विष-भरे वाक्य भी वे कितनी चालाकी से बोल सकते हैं ! ऐसे जासूस सौ कानों से सुनते हुए भी बहरे दिखायी पड़ते हैं; हजार आंखों से देखते हुए भी वे दिखावा ऐसा करते हैं, मानो उन्होंने कुछ देखा ही न हो। उनके दिल की गहराई में जो बात छिपी रहती है, उससे बिलकुल उलटा भाव वे अपने चेहरों पर दिखाते हैं। हनुमान ! आज मेरी पड़ती के दिन हैं, इस कारण मुझे लगता है कि मार डालने के लिए ही वाली ने इन लोगों को भेजा है।"

हनुमान ने कहा, "वानरराज ! आप यह क्यों मान लेते हैं कि जो भी नया आदमी आपको दिखायी पड़ता है, वह आपका दुश्मन ही है ? क्या वह कोई यात्री नहीं हो सकता ? कोई तपस्वी नहीं हो सकता ? अथवा

क्या यह संभव नहीं कि आप ही की तरह आफत के मारे ये लोग भी इधर भटक रहे हों ?"

सुग्रीव ने हनुमान की पीठ थपथपाते हुए कहा, "हनुमान, एक बार राज्यासन पर बैठकर देख और फिर ऐसी बात कह, तो मैं जानूं कि तू वीर है। तुझे इस बात की कल्पना तक नहीं हो सकती कि राजा का जीवन किस प्रकार निरंतर भय से घिरा रहता है। सुग्रीव ऋक्ष वानर का पुत्र न होकर मात्र एक साधारण वानर-पुत्र होता, तो वह आज तुझसे भी अधिक हिम्मत दिखाता। किंतु हनुमान ! राजाओं को तो सदा मृत्यु की लपटों के बीच ही जीना पड़ता है।"

हनुमान बोला, "सुग्रीव ! जो हो, लेकिन मेरा दिल गवाही नहीं दे रहा। ऐसी सौम्य मुद्राएं तो पवित्र आश्रमों में भी शायद ही दिखायी पड़ती हैं।"

सुग्रीव ने कहा, "हनुमान ! यदि ऐसा है, तो तू उनके पास जा और पता लगाकर आ कि वे कौन हैं और इधर किसलिए आये हैं। देखना। संभलकर जाना। तू तपस्वी का वेश बनाकर जा। इस बीच मैं यहां से मलय पर्वत पर जाता हूं और वहीं बैठता हूं। वहां हम चारों तेरी राह देखेंगे। हनुमान ! सावधान ! तेरे बिना यह सुग्रीव एक क्षण भी जी नहीं सकेगा। बिना सोचे-विचारे कोई कदम मत उठाना।"

ऐसा कहकर सुग्रीव मलय पर्वत पर चढ़ गया और हनुमान पंपा के मार्ग से होकर उस ओर मुड़ गया, जिस ओर से राम-लक्ष्मण चले आ रहे थे। दोनों कुमारों के निकट पहुंचकर हनुमान ने पूछा, "महाशयो ! आप दोनों कौन हैं ? आप कहां से आ रहे हैं ? इस सरोवर की पाल पर खड़े पेड़ों को आप बहुत बारीकी से देखते चले आ रहे हैं, इससे मुझे लगता है कि आप किसी चीज की खोज में निकले हैं। आपके तेज से सारा पर्वत जगमगा उठा है। आपकी छबि को देखने से ऐसा लगता है कि सारे संसार के आभूषण आपको पाकर कृतार्थ हो जायं, किंतु आपकी देह पर तो मैं एक भी आभूषण नहीं देख रहा। आपकी गति देखकर मुझे लगता है कि सारी पृथ्वी आपके चरणों में पड़ी है, किंतु आप तो अकिंचन बनकर घूम रहे हैं। आप कौन हैं ? आप मुझे कोई जवाब क्यों नहीं दे रहे ? मैं स्वयं कौन हूं,

इसके बारे में आपको शंका हो, तो मैं आपको बता दूं कि यहां सुग्रीव नामक वानरों का राजा रहता है। मैं उसका सेवक हूं। सुग्रीव को उसके भाई वाली ने घर से और नगर से निकाल दिया है। मेरा नाम हनुमान है। स्वयं सुग्रीव ने मुझे आपके पास भेजा है। सुग्रीव के विशेष आग्रह के कारण ही मैंने यह वेश धारण किया है। मेरा स्वामी सुग्रीव आपकी मित्रता चाहता है।" यह कहकर हनुमान शान्त खड़ा रहा।

हनुमान की ये बातें सुनकर बिलकुल पास में खड़े लक्ष्मण से रामचंद्र ने कहा, "भैया लक्ष्मण ! जिस सुग्रीव को हम खोज रहे हैं, उस सुग्रीव का मंत्री स्वयं हमारे सामने आकर खड़ा है, यह कितने हर्ष की बात है ! लक्ष्मण! सुग्रीव के इस मंत्री से तू ही बात कर ले। तूने इसकी वाणी सुनी ? जिसने तीनों वेदों का अध्ययन न किया हो, वह ऐसी वाणी बोल ही नहीं सकता। इसकी वाणी कितनी शुद्ध है ? हमने बहुतेरे पंडितों को सुना है। जब पंडित बोलने लगते हैं, तो समझ नहीं पड़ता कि वे क्या कहना चाहते हैं। बस, हमारे कानों पर उनके बड़े-बड़े अर्थहीन शब्द टकराते रहते हैं। कभी-कभी तो जहां दो वाक्यों से काम बनता है, वहां वे बाईस वाक्य बोल जाते हैं; कभी-कभी तो यही निश्चित नहीं होता कि वे स्वयं क्या कहना चाहते हैं, इसलिए जो जीभ पर आया, वही वे बड़बड़ाते रहते हैं। ऐसे लोगों के शब्दों को निचोड़ा जाय, तो प्रायः उनमें से अर्थ की एक बूंद भी नहीं टपकती। फिर भी ऐसे पंडित हम लोगों के बीच बड़े बक्ता माने जाते हैं और क्षुद्र लोग मुंह और आंखें फाड़-फाड़कर उन्हें सुनते हैं। हनुमान की भाषा कितनी सादी और सरल है। बोलने में एक भी शब्द व्यर्थ नहीं। जो कहना था, सो सीधा और साफ कह दिया, और भाषा में एक भी दोष नहीं। वानर जो कहना चाहता है, उसके अनुरूप शब्दों का उपयोग करना भी यह जानता है। जो बात इसके मन में है, उसको यह वाणी द्वारा प्रकट करता है, इस कारण इसकी वाणी बहुत वजनदार बन जाती है। जो बचपन से ही ऋषि-पत्नियों के सहवास में पला-पुसा हो, वही ऐसी संस्कारी भाषा बोल सकता है। निश्चय समझो कि जिस राजा के पास स्पष्टता से विचारकर सकनेवाले और विचारों को स्पष्ट भाषा में व्यक्त करने की शक्तिवाले मंत्री होते हैं, वह राजा आज चाहे संकट में फंसा हो, तो भी

कल उसका सूरज चमकने ही वाला है। लक्ष्मण! देख, यह कितनी शान्ति से खड़ा है। तू इससे बात कर।"

राम की आज्ञा मिलते ही लक्ष्मण ने कहना शुरू किया, "हनुमान! हम वानरराज सुग्रीव को ही खोज रहे हैं। यहां से बहुत दूर कोशल नाम का एक देश है। उसमें अयोध्या नाम की बड़ी नगरी है। उस अयोध्या के महाराज दशरथ के हम पुत्र हैं। मेरा नाम लक्ष्मण है, और ये मेरे बड़े भाई रामचंद्र हैं। हमने पिता के वचन का पालन करने के लिए बनवास स्वीकार किया है। हमारे साथ बड़े भैया की पत्नी सीता थीं। उन्हें राक्षसराज रावण उठाकर ले गया है। हम सीता की खोज में घूम रहे हैं। जब हम इस तरफ रवाना हुए, तो बहुत से तपस्वियों ने हमसे कहा कि हम वानर-राज सुग्रीव से मिलेंगे, तो वे सीता का पता लगाने में हमारी मदद करेंगे। इसीलिए हम इस तरफ आए हैं।"

लक्ष्मण की बातें सुनते-सुनते हनुमान का रोम-रोम हर्ष से पुलकित हो उठा और वह दोनों हाथ जोड़कर बोला, "महानुभाव! मैं बहुत दिनों से आपके दर्शन के लिए तरस रहा था। आज आपको देखकर मैं कृतार्थ हुआ हूं। महाराज! दक्षिण के अनेक आश्रमों में मैंने आपके नाम सुने हैं। अनेक ऋषि-मुनियों से मैंने आपके पराक्रम की बातें सुनी हैं। अनेक साधु-पुरुप रामचंद्र को युग-पुरुष मानते हैं और वे सब उस दिन की बाट जोह रहे हैं, जिस दिन आपके हाथों इस राक्षसी युग की समाप्ति होगी। महा-राज! जिनके दर्शनों के लिए युगों-युगों तक भटकना पड़ता है, वे आप स्वयं स्वेच्छा से यहां पधारकर हमें दर्शन दे रहे हैं, इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है? आप पधारिए। मैं आपको सुग्रीव के पास ले चलता हूं। आप थके-से लगते हैं, अतः मैं आपको अपने कंधों पर बैठाकर ले जाऊंगा। इन कंधों पर आपसे अधिक पवित्र और कौन-सी वस्तु चढ़ सकती है?"

इतना कहकर हनुमान ने राम-लक्ष्मण दोनों को अपने कंधों पर बैठा लिया और उन्हें उस मलय पर्वत पर ले गया, जहां सुग्रीव पहले से पहुंचा था।

: ३ :

सागरोल्लंघन

अग्नि की साक्षी में रामचंद्र और सुग्रोव परस्पर मित्र बने।

रामचंद्र ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार बाली का वध किया और सुग्रीव किष्किंधा का राजा बना। हनुमान तो पहले से ही सुग्रीव के साथ था।

वर्षा ऋतु के बीतने पर सुग्रीव ने सब वानरों को सीता की खोज के लिए भेज दिया। सुग्रीव की आज्ञा का सम्मान करके तारा का पिता तार आया और हजारों वानरों को अपने साथ लेकर हनुमान का पिता केसरी आया; अंजन के समान रंगवाला नील आया, सुनहरे बालोंवाला गवय आया, जाम्बवान आया, रम्भ आया, दुर्मुख आया, दशमुख आया, कुमुद आया—सभी नाचते-कूदते, शरीरों पर प्रहार करते, मारते-पीटते, तोड़-फोड़ करते और हल्ला-गुल्ला मचाते, किष्किंधा में इकट्ठे हुए, और वानरराज सुग्रीव को प्रणाम करके उसके आदेश की बाट जोहते हुए खड़े रहे।

सुग्रीव ने विजय को उसके दल के साथ पूर्व दिशा की ओर रवाना किया, सुषेण को पश्चिम की तरफ भेजा, शतबलि को उत्तर दिशा में खोज करने भेजा और बाली के पुत्र अंगद के संरक्षण में एक बड़े दल को दक्षिण की तरफ बिदा किया। अंगद के दल में नील था, जाम्बवान था, हनुमान था, मैंद था और उल्कामुख था। अंगद को बिदा करते समय सुग्रीव ने वानरराज की कड़ाई के साथ कहा, "अंगद ! तू दक्षिण की तरफ जा। राक्षसराज रावण ने सीता को जहां भी कहीं छिपाया हो, वहां पहुंचकर उनका पता लगाना। तुम सबको एक महीने के अंदर वापस आना है। समझ लो कि एक महीने से अधिक बाहर रहनेवाले का सिर सलामत नहीं रहेगा।"

एक महीना बीतने में देर कितनी लगती ? वानरों ने सुग्रीव की आज्ञा का ठीक-ठीक पालन किया। उन्होंने शहर, गांव, नदी, सरोवर, बावड़ी, कुएं, सागर, पहाड़, जंगल, गुफा सबकुछ छान डाला, पर कहीं सीता का

पता न चला। इसलिए एक महीने की अवधि का ठीक ध्यान रखकर वे समय रहते वापस आ गये। पूर्व की तरफ से विजय समय पर लौटा। उत्तर की तरफ से शतवलि भी निराश होकर वापस आ गया। सुषेण ने भी सारी पश्चिम दिशा छान डाली और ठीक आखिरी दिन किष्किन्धा में प्रवेश किया।

अंगद का दल अंतिम घड़ी तक नहीं लौटा। इन लोगों ने विंध्याचल की गुफाओं में खोज की, भयंकर जंगलों को छान मारा, पहाड़ों की चोटियां रौंद डालीं, नदियां पार कीं, पेड़ों की झुरमुटों में घुमे, उन्हें तितर-बितर किया, पर कहीं सीता का पता न पाया! वानर सब थककर चूर हो गये। एक कदम भी आगे बढ़ने की शक्ति उनमें न रह गई। वानरराज द्वारा दी गई अवधि पूरी हो चुकी थी। सब-के-सब एक विचित्र गुफा में जा घुसे और जब बड़ी मेहनत के बाद उसमें से बाहर निकले, तो सामने दक्षिण सागर का किनारा दिखाई पड़ा। पीछे देखते हैं, तो आकाश से बातें करनेवाला विंध्य पर्वत दीख पड़ता है; सामने देखते हैं, तो दक्षिण ध्रुव तक गर्जना करनेवाला महासागर दीखता है, पैरों के नीचे देखते हैं, तो कड़ी जमीन दिखाई देती है और सिर पर वानरराज की तलवार लटक रही है! वानर सब हताश होकर धरती पर लोटने लगे। तभी अंगद ने कहा, "हम सब वानरराज सुग्रीव की आज्ञा से सीता की खोज में निकले हैं। हम चारों ओर इतने भटके और घूमे, पर न कहीं सीता दिखाई दीं और न सीता का हरण करनेवाला रावण दिखाई पड़ा। यही नहीं, हम दी गई अवधि को पार कर चुके हैं। आप सब भली भांति जानते हैं कि राजा की आज्ञा क्या चीज होती है? ऐसे आनबान के अवसर पर तो आदेश का थोड़ा भी अनादर हुआ, तो समझ लीजिए कि मौत सामने खड़ी ही है। आप यह न समझिए कि मैं युवराज हूं, इसलिए सुग्रीव मुझे माफ कर देगा। मैं कुछ भी क्यों न होऊं, पर आखिर बाली का पुत्र हूं। सुग्रीव इसे कैसे भूल सकेगा? मेरी जननी तारा सुग्रीव के महल में है। क्या सुग्रीव को उसका खून मेरी आंख में नहीं दीखता? आप सबको वापस जाना हो तो आराम से जाइए, मैं तो यहीं रहूंगा और राजाज्ञा का सम्मान करते हुए अन्न-जल ग्रहण न करने का व्रत लेकर मर जाऊंगा। सुग्रीव के हाथों मरने से सागर के किनारे इस तरह मरना अधिक अच्छा है।"

कुमार अंगद की ये बातें सुनकर सब वानर भयभीत हो गये। तारा का पिता तार बोला, "कुमार अंगद सच ही कह रहे हैं। यदि हम वापस जायंगे, तो निश्चय ही सुग्रीव हमें मार डालेगा। किंतु राजाज्ञा का अर्थ यह भी नहीं है कि सुग्रीव के न मारने पर भी हम जान-बूझकर मर जायं। हम सब इसी रमणीय गुफा में क्यों न रहें ! यहां हमें सुग्रीव का भी कोई भय नहीं है। वाली का पुत्र अंगद हमारा राजा है और वह हमारे साथ है ही, इसलिए हम जहां चाहें वहां अपना राज्य समझें और रहें।"

जब तारा के पिता और अंगद के नाना ने ये बातें कहीं, तो सभी वानर हर्षित हो गये; परंतु हनुमान को इन बातों में नया राज्य स्थापित करने की गंध आई। हनुमान को स्पष्ट पता चल गया कि सुग्रीव के व्यवहार के कारण अंगद उससे विमुख हो रहा है। अतः वानर-जाति की एकता को खंडित न होने देने की हित-बुद्धि से उसने कहा, "युवराज ! तारा के समर्थ पुत्र ! तू अपने पिता वाली से अधिक बलवान है ! तू ही अपने इन वानरों का राजा बनने योग्य है, किंतु क्या तू जानता है कि हमारे ये वानर कैसे चंचल स्वभाव के हैं ? आज भले ये हर्ष के मारे चाहे जितने उछल-कूद लें, किंतु इससे तू यह न समझ बैठना कि अपनी स्त्रियों और बच्चों को किष्किंधा में छोड़कर ये सदा तेरे साथ यहां बने रहेंगे। जाम्बवान, नील, सुषेण और हनुमान, हम चार लोगों को तो ब्रह्मा भी सुग्रीव से अलग नहीं रख सकते। यह गुफा सुरक्षित चाहे लगती हो, किंतु क्या तू मानता है कि लक्ष्मण के बाणों के आगे यह गुफा टिक सकेगी ? आज तेरी 'हां' में 'हां' मिलानेवाले ये वानर दो दिन के बाद अपनी स्त्रियों और बच्चों को याद करेंगे, और दीन-हीन से बनकर वापस किष्किंधा चले जायंगे। अंगद, युवराज ! सुग्रीव कैसा भी क्यों न हो, दृढ़ तो है; वह तुझे प्यार करता है; तेरी माता के प्रति उसके मन में सम्मान है; सुग्रीव का अपना कोई पुत्र नहीं है, इसलिए उसने तुझे युवराज नियुक्त किया है। अंगद ! अगर हम थके हैं, तो दो दिन आराम कर लें।"

हनुमान के ऐसे आश्वासन-भरे वचन सुनकर अंगद कहने लगा, "हनुमान ! तेरा जी चाहे उतनी प्रशंसा तू सुग्रीव की भले कर ले, पर सुग्रीव में साधुता का तो एक भी लक्षण नहीं है। जो मेरे सामने मेरी

माता को—अपने बड़े भाई की स्त्री को—अपनी पत्नी बना सकता है, उससे धर्मबुद्धि की क्या आशा रखी जाय ? जिसने मेरे पिता का द्रोह करके गुफा का द्वार बंद कर दिया और फिर स्वयं गद्दी पर बैठ गया, क्या उससे धर्म-बुद्धि की आशा रखी जा सकती है ? जिसने एक बार अग्नि की साक्षी में रामचंद्र से मित्रता की और बाद में राज्य मिल जाने पर जो चार महीनों तक सोता रहा, उसमें धर्म-बुद्धि कहां से आये ? जिसने अपनी पवित्र प्रतिज्ञा के लिए नहीं, बल्कि लक्ष्मण के डर से हमें सीता की खोज करने के लिए भेजा, उसमें धर्म-बुद्धि कैसे आये ? सुग्रीव इतना सज्जन अथवा मूर्ख नहीं है कि वह अपने शत्रु के पुत्र को गद्दी पर बैठाये रहे। रामचंद्र एक टेकवाले व्यक्ति हैं, अतः उनके कहने से मुझे युवराज बनाना पड़ा है। वैसे, सुग्रीव को मैं खूब पहचानता हूं। मुझे उसमें लेशमात्र शंका नहीं कि आज मेरे नियम-भंग के बहाने वह मुझे जान से मार सकता है। तुम सब खुशी-खुशी अपने घर जाओ। मैं तो अपने प्राण यहीं छोड़ूंगा। अपने राजा सुग्रीव को, रामचंद्र और लक्ष्मण को और मेरी प्यारी माता को मेरे प्रणाम कहना। मेरी माता तारा को ढाढ़स बंधाना। कौन जाने, वह बेचारी जीवित भी रह पायेगी या नहीं !"

यों कहकर अंगद वहीं बैठ गया ! सारे वानर अपनी आंखों में आंसू भरकर उसके चारों ओर आ बैठे। हनुमान यह सब देखता रहा और गहरे विचार में डूब गया !

••• ••• •••

रेगिस्तान में यात्रा करते समय प्यास के कारण जिसका गला सूखने लगा हो, जिसे हिचकियां आने लगी हों, उसे अपने ओंठ गीले करने के लिए एक बूंद पानी मिलने पर जो आनंद होता है, उसे किसी ने देखा है ? भूख के मारे जिसका पेट पीठ से चिपक गया हो, ऐसे भूखे आदमी को जुवार की पतली रबड़ी मिलने पर जो आनंद होता है, उसे किसी ने देखा है ? सारे वानर रेत में हाथ-पैर फैलाए पड़े थे। सिर पर सूरज अपने पूरे तेज से तप रहा था। चारों ओर समुद्र-तट की गरम-गरम रेती फैली थी। मन में किष्किंधा में छोड़ी स्त्रियों का, बच्चों का और कालमुखी सुग्रीव का चिन्तन चल रहा था। निराश मन, हतवीर्य शरीर और निष्क्रिय, निस्तेज

इन्द्रियों का भार ढोना भारी पड़ रहा था।

ऐसे सुनसान, ऊजड़ और वीरान स्थान में अचानक एक आवाज वानरों के कानों से टकराई, "रावण ने सीता को लंका में रखा है। मैं संपाति, जटायु का भाई, उसे यहां से देख रहा हूं। तुम सागर पार करके जाओगे, तो उसे देख सकोगे।"

और, जैसे अमृत की वर्षा से मुरदे उठ खड़े होते हैं, वैसे ही सारे वानर तुरंत उठकर खड़े हो गये। वे संपाति से पूछताछ करने लगे और जोश में आकर सागर के किनारे पर दौड़े चले गये। जाकर देखते हैं, तो सामने अपार जल हिलोरें ले रहा है। पहाड़-सी ऊंची-ऊंची लहरें किनारों पर आ-आकर टकरा रही हैं। और लंका ! वह कैसे दिखाई दे ? सारे वानर फिर हताश हो गये। फिर अन्न-जल छोड़ने की बात सोचने लगे। अनंतर किष्किंधा, वानरराज सुग्रीव, स्त्री-बच्चे, सभी उनकी आंखों के सामने आ-आकर खड़े होने लगे। इसी बीच अंगद बोला, "खेद क्यों कर रहे हैं ? खेद मनुष्य के पुरुषार्थ को क्षीण करता है। हमारे सामने विशाल सागर लहरा रहा है। इस सागर के उस पार जाने की हिम्मत किसमें है ? किसके पराक्रम से हमें विजय प्राप्त होनेवाली है ? किसके शौर्य के कारण हम अपने बाल-बच्चों के मुंह देख सकेंगे ? हमें हिम्मत हारने की जरूरत नहीं। हममें बड़े-से-बड़ा फासला पार करनेवाले कई लोग मौजूद हैं, ये सब अपनी-अपनी शक्ति की घोषणा करें, तो हमें ठीक पता चल जाय।"

अंगद के इन वचनों को सुनकर वानर एक के बाद एक अपनी शक्ति का अंदाज देने लगे। किसी ने कहा, मैं छह योजन तक कूद सकता हूं; किसी ने दस योजन की बात कही; किसी ने पचास योजन लिखवाये, तो किसी ने अस्सी योजन का अंदाज दिया; लेकिन इससे आगे कोई बढ़ा नहीं, इस पर वृद्ध जांबवान खड़ा हुआ और गला साफ करते हुए बोला, "एक दिन ऐसा था कि जब मैं चाहे जितने योजन कूद सकता था; पर आज तो मैं वृद्ध हो चुका हूं, फिर भी नब्बे योजन तो मैं पार कर लूंगा। लेकिन यह सागर सौ योजन लम्बा है। हमें अपने में से ऐसे वानर की खोज करनी होगी, जो सौ योजन कूद सके।

जांबवान की ये बातें सुनने के बाद अंगद से रहा न गया। वह बोला,

"आप कुछ भी क्यों न हों, आखिर सैनिक ही हैं। मैं आपका सरदार हूं। यदि सागर नहीं लांघा जा सका, तो आप केवल खेद प्रकट करके वापस चले जायंगे। जाकर अपने स्त्री-बच्चों को देखेंगे, तो दूसरी सारी बातें भूल जायंगे। पर मैं तो आपका सरदार ठहरा। मैं वापस जाऊंगा तो वानर-बालक युगों-युगों तक मेरी बदनामी के गीत गायंगे और वानर-माताएं अंगद के नाम से लजायेंगी। मैं अंगद सौ योजन कूदकर लंका तो पहुंच जाऊंगा, लेकिन वहां जाने के बाद समाचार देने के लिए वापस आ सकूंगा या नहीं, सो मैं कह नहीं सकता।"

तुरन्त जांबवान उठा और बोला, "अंगद ! आप तो हमारे सरदार हैं। आपको अपनी शक्ति का उपयोग हमें भेजने में करना है। स्वयं अपने को होम देने में नहीं। आपकी रक्षा में हम सबकी रक्षा है। समूची वानर-जाति का हित आपकी रक्षा में है, इसलिए हम आपको नहीं भेज सकते।"

इस लंबी और उकतानेवाली बहस से सब वानर फिर हताश होकर बैठ गये। उन्हें कोई भी मार्ग सूझा नहीं। उन्होंने अनुभव किया, मानो मृत्यु उनके सामने ही खड़ी है।

इस बीच हनुमान अकेला विचारों में डूबा गुमसुम बैठा था। जांबवान उसके पास गया और बोला, "हनुमान ! तू क्यों गूंगा बनकर बैठा है और चुपचाप यह देख रहा है ? तेज में और पराक्रम में तू सुग्रीव से बढ़कर है। बुद्धि में और बल में तू हमसे कहीं आगे है। एक समय था, जब मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वी की प्रदक्षिणा की थी; किंतु आज मैं वृद्ध हो गया हूं। हनुमान ! उठ। सारे वानर हताश होकर बैठे हैं। तू सागर के उस पार जा; हम सबके अंदर नए प्राणों का संचार कर।"

जांबवान के ऐसे वचन सुनकर हनुमान बोला, "युवराज अंगद ! दादा जांबवान ! मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि सौ योजन लांघकर उस पार जाऊंगा। मेरी इस प्रतिज्ञा को आप अभिमान न मानें। मैं भलीभांति जानता हूं कि मैं आप सबके समान ही एक साधारण वानर हूं, किंतु मुझे आशा है कि जिस महान कार्य के लिए हमें उस पार जाना है, वह महान कार्य ही मेरी प्रतिज्ञा को पूरा करायेगा। मैं समुद्र लांघने का काम अपने बल से नहीं,

बल्कि रामचंद्र के बल से कर पाऊंगा। उन महानुभाव को हमने अभी ठीक-से पहचाना नहीं है। उनके जीवन-कार्य के लिए हनुमान तो क्या, ये पत्थर भी सौ योजन कूद सकते हैं। मुझे लग रहा है कि मैं लंका में जाकर सीता का पता लगा सकूंगा और वापस जल्दी आपके पास आ सकूंगा। युवराज अंगद ! मुझे आज्ञा दीजिए।"

इतना कहकर हनुमान महासागर को लांघने की तैयारी में जुट गया।

: ४ :

सीता की खोज

"अब मेरे पैर जवाब देने लगे हैं। मैं सौ योजन लंबे समुद्र को लांघकर आया। लंका के जिस गढ़ में बाहर की एक मक्खी भी घुस नहीं पाती, उसमें मैंने प्रवेश किया और सारी लंका को छान डाला। फिर भी मुझे सीता का पता नहीं चला। मैं लंका का कोना-कोना देख चुका हूं; बाग-बगीचे, नदी-नाले, गुफा-पहाड़, अश्वशालाएं, गोशालाएं, गज-शालाएं, क्रीड़ा-मंदिर, ज्ञान-मंदिर, देव-मंदिर सबको अपने पैरों से नाप चुका हूं; आंखों से देख चुका हूं; लंका के सात-सात मंजिलोंवाले भवनों को भी मैंने देख डाला; रावण के अपने महल में भी मैंने उसका अन्तःपुर देखा; स्नान-गृह, पान-गृह, आराम-गृह, शयन-गृह और भोजन-गृह सब देखे; लेकिन सीता मुझे कहीं दिखाई नहीं पड़ीं। हे दैव ! अब मैं क्या करूं ? कहां जाऊं ? मैंने समुद्र लांघने का जो साहस किया, क्या उसका यही परिणाम निकलना था ? समुद्र के उस पार युवराज अंगद मेरी बाट जोह रहे होंगे। किष्किंधा में रामचंद्र हम सबकी राह देखते बैठे होंगे। मैं सुग्रीव से जाकर क्या कहूंगा? यह सुनकर कि सीता का पता नहीं लगा, क्या रामचंद्र एक क्षण भी जीनेवाले हैं ? उन्हें अपने कंधे पर बैठाकर जब मैं ऋष्यमूक पर्वत पर

चल रहा था, उस समय उनकी सेवा करने के कितने मनोरथ मेरे मन में थे ? क्या वे सब धूल में मिल जायंगे ?

"रावण ने सीता को कहां रखा होगा ? मुझे लगता है कि वे बेचारी रावण के त्रास से त्रस्त होकर आत्महत्या कर चुकी होंगी। लंका के इस राक्षसी वातावरण में जब मेरा अपना दम घुटने लगा है, तो सीता की क्या बिसात ! अथवा क्या यह हो सकता है कि रावण ने उन्हें मार ही डाला हो ?

"अब मैं क्या करूं ? इस महासागर में डूबकर मर जाऊं ? किंतु, नहीं···नहीं। अंदर से कोई मुझे मना कर रहा है, मानो मेरु पर्वत पर बैठी मेरी मां अंजना मुझसे कह रही है, 'बेटा ! मेरी कोख को चमकाना !' मेरु पर्वत के ऋषि-मुनि मेरी पीठ पर हाथ रखकर कह रहे हैं, 'हनुमान ! तेरी आवश्यकता है।' ऋष्यमूक पर्वत पर रहनेवाले मेरे राम कह रहे हैं, 'हनुमान ! निराश मत होना।' खोज के लिए अब एक अशोक वन ही बचा है। उसे भी देख लूं। यदि सीता वहां भी न मिलीं, तो मेरी सारी आशाएं चूर-चूर हो जायंगीं।"

वज्रकाय हनुमान, सागर को लांघनेवाला हनुमान, आज दीन बन चुका है। उसे अपने चारों ओर घोर अंधकार के अलावा और कुछ दीखता ही नहीं। फिर भी क्षण में एक कदम आगे और दूसरे क्षण में एक कदम पीछे हटता हुआ, क्षण में शून्य-सा दीखनेवाला और दूसरे क्षण में आशावादी दिखाई देनेवाला अंजना-पुत्र हनुमान अशोक वन में पहुंचा और शीशम के एक पेड़ पर छिपकर बैठ गया। वहां उसे एक स्त्री दिखाई पड़ी।

इस स्त्री की कमर पर पीला वस्त्र लिपटा था। पीछे पीठ पर अस्त-व्यस्त और बिखरे बालोंवाली वेणी झूल रही थी। इसकी आंखें रो-रोकर सूज गई थीं। इसके ओठों की लाली एकदम गायब हो चुकी थी; इसके चेहरे पर केवल निराशा और उदासी छाई हुई थी।

हनुमान अभी यह सोच ही रहा था कि कहीं यह सीता तो नहीं है ! इतने में वह स्त्री शीशम के पेड़ के पास पहुंची, उसने अपने एक हाथ से पेड़ की एक डाली पकड़ी और दूसरे हाथ से अपनी लंबी वेणी गले में लपेट-

कर सूने मन से इस तरह खड़ी-की-खड़ी रह गई, मानो गहरे विचार में डूबी हो।

"राम ! आपने मुझसे बहुत ही प्रतीक्षा करवाई। जब हम पंचवटी में रहते थे, तब कभी-कभी मैं गोदावरी के किनारे पर खेल में रम जाती थी, तो आप तुरंत ही मुझे खोजने के लिए दौड़ पड़ते थे। आज दस महीने बीत चुके हैं, मेरी आंखों का पानी भी सूख चुका है, फिर भी आप कहीं दीखते क्यों नहीं हैं ? भैया लक्ष्मण ! क्या तुम्हारे भी सब बाण चुक गए हैं ? पृथ्वी-माता ! आज तो तुम भी वैरिन बनकर बैठी लगती हो ! हे राम, हे राम ! अब मैं जी नहीं सकती। रावण द्वारा अलग किये गए हम आगे कब, कहां मिल पायंगे ! हे देव..."

इन शब्दों के साथ ज्योंही सीता ने अपनी वेणी का फंदा गले में डाला और उसे खींचना चाहा, त्योंही हनुमान बोल उठा, "देवि ! ठहरिए।"

ये शब्द सीता के कान पर पड़े कि वह एकदम हक्की-बक्की-सी बनकर चारों ओर देखने लगी। आसपास घोर अंधकार फैला हुआ था; चंद्रमा अस्त हो चुका था; राक्षसियां सब गहरी नींद में पड़ी खर्राटें भर रही थीं। सीता ने बाईं ओर देखा, दाहिनी ओर देखा, आगे देखा, पीछे देखा, पर कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ा। अतः फिर हाथ में वेणी लेकर ज्योंही डाली पकड़ी, त्योंही आवाज आई, "देवि ! ठहरिए !"

सीता की निगाह एकदम ऊपर की ओर गई। वहां उसने देखा कि शीशम के पेड़ पर एक वानर छिपा बैठा है। इसपर वह डरी और भागने लगी। आवाज आती रही, "अयोध्या में दशरथ नामक एक राजा था। उनके वचन का पालन करने के लिए उनके पुत्र राम-लक्ष्मण ने वनवास स्वीकार किया। राम की भार्या सीता भी वन में साथ थीं। एक बार अवसर पाकर रावण सीता को उठा ले गया। राम-लक्ष्मण सीता की खोज में घूम रहे हैं। मुझे भी खोज के लिए यहां भेजा है।"

जब अमृत से भी मीठे ये शब्द सीता के कान में पड़े, तो उसके तप्त हृदय को शान्ति मिली। किन्तु दूसरे ही क्षण वह बोली, "लंकापति रावण ! आज वानर का रूप धारण करके तू मुझ जली हुई को और अधिक क्यों जलाता है ? यह सीता तेरे काम की है नहीं। क्या तू मुझे सुख से मरने भी

नहीं देगा ? मुझे क्यों रोक रहा है ?"

सीता की ऐसी बातें सुनकर हनुमान कुछ नीचे उतरा और कहने लगा, "माताजी ! डरिए मत। मैं रावण नहीं, मैं तो राम का दूत हनुमान हूं।"

सीता फड़फड़ा उठी, "राक्षसराज ! राक्षसी माया अब मुझसे छिपी नहीं है। दुष्ट ! वहीं रह। खबरदार, और नीचे मत आ।"

हनुमान ने कहा, "देवि, देवि ! डरिए मत। मैं रावण नहीं हूं।"

सीता बोली, "मुझे विश्वास नहीं होता। तू सब तरह के वेश धारण करना जानता है।"

हनुमान ने राम की अंगूठी नीचे गिराते हुए कहा, "माता ! लो, यह प्रमाण है।"

अंगूठी के गिरते ही सीता ने उसे तुरंत उठा लिया और अपनी छाती से लगा लिया। फिर बोली, "हनुमान ! मेरे राम ठीक हैं ? मेरे लक्ष्मण सुखी हैं ? वे दोनों रो-रोकर दुबले तो नहीं हो गए हैं ?"

हनुमान कहने लगा, "माताजी ! रामचंद्र और लक्ष्मण दोनों अच्छी तरह हैं और आपके बारे में चिंतित रहते हैं। उन्होंने वानरराज सुग्रीव के साथ मित्रता की है और हम वानरों को आपकी खोज के लिए भेजा है। यहां से जाने के बाद मैं उन्हें आपके समाचार पहुंचाऊंगा !"

सीता अधिक समीप आकर बोली, "भैया ! मेरे राम से कहना कि यदि वे मुझे जीवित देखना चाहते हैं, तो जल्दी आयें। अब पूरे दो महीने भी नहीं बचे हैं, वरना रावण मुझे काटकर खा जायगा।"

हनुमान ने कहा, "माताजी ! दुनिया में कौन है, जो ऐसा कर सके ? फिर भी यदि आप चाहें, तो मैं आपको अपनी पीठ पर बैठाकर समुद्र लांघ जाऊंगा और आपको रामचंद्र के पास पहुंचा दूंगा। आपकी मरजी हो तो हनुमान तैयार है।"

सीता बोली, "भैया ! इच्छा होती है कि तू ऐसी बहुत-सी बातें कहता रहे और मैं सुनती रहूं। किंतु हनुमान ! सवेरा होने को है, इसलिए तू जल्दी चला जा। ये पापिनियां जागेंगी और तुझे देखेंगी, तो मेरी मुसीबत बढ़ जायगी। मैं इस तरह तेरे साथ चल नहीं सकूंगी। मुझे तो मेरे रामचंद्र ही छुड़ायंगे। रामचंद्र से जाकर कहना कि दो महीने बीत जाने पर वे अपनी

सीता को देख नहीं पायेंगे।

... ...

लंका के दरबार में एक राक्षस पहुंचा और बोला, "महाराज ! रक्षक उस वानर को पकड़कर ले आये हैं। आज्ञा हो, तो उसे अंदर लाया जाय।"

रावण ने कहा, "लाओ, मैं उस दुष्ट को देखना चाहता हूं। अकंपन ! हमारी लंका में इतना चौकी-पहरा होने पर भी बाहर से एक वानर आ जाता है, हमारे सारे नगर में घूम लेता है, समूचे अशोक वन को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है और हमारे राक्षसों को मार डालता है, फिर भी हमारी आंख नहीं खुलती ! हमारी यह व्यवस्था कैसी है ?"

अकंपन बोला, "महाराज ! मैंने इसकी जांच शुरू की है। पूरे प्रमाण इकट्ठे होने पर मैं आपसे निवेदन करूंगा।"

रावण ने कहा, "अकंपन ! ऐसी तो न जाने कितनी जांचें हमने शुरू करवाई हैं। मुझे तो लगता है कि हमारी व्यवस्था में ही कोई खराबी पैदा हो गई है। चौदह ब्रह्मांडों का राज्य अपने घर में लाने के बाद मुझे भी तो कुछ थकावट मालूम होगी या नहीं ? लाओ, उस दुष्ट वानर को मेरे सामने लाओ ?"

हनुमान को बांधकर सामने खड़ा किया गया।

रावण ने गुस्से में आकर हनुमान से कहा, "अरे दुष्ट ! तू कौन है ? कहां से आया है ?"

हनुमान बोला, "लंकापति ! मैं हनुमान नामक वानर हूं। आप राम की भार्या सीता को उठा लाये हैं। वानरराज सुग्रीव ने मुझे उसे खोजने के लिए भेजा है।"

रावण ने पूछा, "कौन, वाली का भाई सुग्रीव ?"

हनुमान ने कहा, "जी, वही। वाली को आप कौन नहीं जानते ?"

रावण बोला, "वाली कहां है ?"

हनुमान ने कहा, "वाली को रामचंद्र ने अपने एक ही बाण से मार डाला है, और सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बना दिया है।"

रावण कहने लगा, "तेरे सुग्रीव को इतना भी नहीं सूझा कि उसे मित्रता ही करनी है, तो राक्षसों के साथ करे, राम के साथ न करे ? खैर,

अब तू यह बता कि तूने अशोक वन के पेड़ क्यों तोड़ डाले ?"

हनुमान बोला, "महाराज ! रामचंद्र के दूत के नाते मुझे आपके दर्शन करने थे; लेकिन यहां लंका में आपके दर्शन पाना मुझे कठिन लगा ! अतः पेड़ तोड़कर इस रूप में आपके सामने खड़ा हुआ हूं ।"

रावण ने पूछा, "लेकिन तूने मेरे राक्षसों को क्यों मार डाला ?"

हनुमान ने जवाब दिया, "महाराज ! अपने को बचाने की कोशिश में मुझे उन्हें मारना पड़ा है।"

रावण चिढ़कर बोला, "अकंपन ! मैं कितने ही जोश में आकर इससे सवाल क्यों न पूछूं, यह तो शांत-स्वस्थ भाव से सब सवालों के जवाब देता रहता है और मन में जरा भी डरता नहीं है। इसलिए इस दुष्ट वानर को मार डालो।"

राक्षसराज के इन वाक्यों को सुनकर रक्षकों ने तुरंत हनुमान को अपनी ओर खींचना शुरू किया। इसी बीच पास ही बैठा विभीषण बोला, "महाराज ! इस वानर का वध नहीं किया जा सकता। हनुमान तो सुग्रीव का दूत-मात्र है। वह सीता की खोज के लिए आया है। सुग्रीव हमारा दुश्मन नहीं है; किंतु दुश्मन होने पर भी दूत तो सदा-सर्वदा अवध्य ही होते हैं।"

रावण ने कहा, "इसका मतलब तो यह हुआ कि दूत मनमाना बरताव करते रहें और हम उन्हें मारें भी नहीं। ऐसी हालत में उन्हें डर ही क्या रह जायगा ?"

विभीषण कहने लगा, "महाराज ! बात ऐसी नहीं है। हमारा युद्ध तो एक प्रकार का आवश्यक किंतु जंगली व्यवहार है। ऐसे जंगली व्यवहार में हमारे शास्त्र-प्रणेताओं ने मानुषी आचरण के कुछ व्यवहारों को जगह देकर युद्ध की भीषणता को कम किया है। ये मानुषी व्यवहार ही युद्ध-संबंधी हमारी मर्यादाएं हैं, जिनका उल्लंघन हमें नहीं करना चाहिए। दूतों को न मारना, स्त्रियां पकड़ी गई हों, तो उन्हें सम्मानपूर्वक वापस पहुंचाना, निहत्थे शत्रुओं पर वार न करना, ब्राह्मणों और बालकों को अवध्य मानना घायलों को और उनकी चिकित्सा तथा सेवा-शुश्रूषा करनेवालों को हाथ न लगाना, ये सब हमारे युद्धों की मानुषी मर्यादाएं हैं। मानव-समाज को

निरंतर यह सोचना और देखना है कि हमारे युद्ध आज से भी अधिक मानुषी कैसे बनें ? किंतु जितने जंगली वे आज हैं, उनसे अधिक जंगली तो हम उन्हें हरगिज न बनायें। समाज ने इस जंगलीपन को जिस हद तक दूर किया है, उस हद को हम लांघें नहीं। आप युद्ध-शास्त्र के अभ्यासी हैं, इसलिए मेरी विनती है कि इस शास्त्र-मर्यादा को आप न ठुकरायें।"

रावण बोला, "विभीषण ! तेरी बात यथार्थ है, पर इस वानर ने तो हमारी नाक काट डाली है। किसी को पता ही न चला कि यह कब अंदर आ गया! इसे मार डालने से अपनी बात दुश्मन के कान तक पहुंच ही नहीं सकेगी और हमारे लोग भी चौकन्ने हो जायंगे।"

विभीषण ने कहा, "महाराज ! आपका अनुमान ठीक नहीं है। होनहार को कोई मेट नहीं सकता। इस वानर को मारने में कोई सार नहीं। या तो आप सीता को वापस भेज दीजिए, जिससे सारा झगड़ा मिट जाय, अथवा इस वानर को छोड़ दीजिए। आगे जो हो, उससे लंकापति निपट लें।"

रावण बोला, "हां, यह ठीक है। भला ऐसे वानरों से मैं क्यों डरूं ! बोल, तुझे कुछ कहना है ?"

हनुमान ने कहा, "लंकापति रावण ! आप सुनना चाहें, तो कहने को तो बहुत-कुछ है। आप सीता को वापस सौंप दीजिए। मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा सुनी है। आप ज्ञानी हैं, भक्त हैं, वेदविद् हैं। मंदोदरी-सी सती आपके कुल को सुशोभित कर रही है। रावण, कैकसी के पुत्र ! सीता पर कुदृष्टि मत डालिए। रामचंद्र के साथ मित्रता कर लीजिए। इससे आपके समूचे राक्षस-कुल का कल्याण होगा।"

रावण ने पूछा, "सुग्रीव ने तेरे-जैसे कितने उपदेशकों को लगा रखा है ?"

हनुमान ने कहा, "रावण ! एक बार आप किष्किंधा के मेहमान रह चुके हैं, अतएव मैं मित्र-भाव से ही कुछ कहना चाहता हूं, वैसे तो मैं आप के समूचे राक्षस-कुल का विनाश देख रहा हूं ! आप यह न समझिए कि राम-लक्ष्मण आपको कभी छोड़ देंगे। रावण ! आज सारी दुनिया में हवा ही इस तरह की बह रही है। इसमें आप भी क्या कर सकते हैं ?"

रावण ने गुस्से में आकर कहा, "अकंपन ! यह वानर बहुत बकवास कर रहा है। इसे मार ही डालो, और इसका मांस मेरे लिए पकवा लो।"

विभीषण ने कहा, "महाराज ! यह हो नहीं सकता। आप युद्ध-धर्म के ज्ञाता हैं। इसलिए उस धर्म के नियम को मत तोड़िए। यह दूत है और इसीलिए अवध्य है। इसके किसी अंग को विकृत करना हो तो कीजिए, पर इसे जान से मत मारिए।"

रावण नरम बनकर बोला, "विभीषण ! जैसा तू कह रहा है, वैसा ही किया जाय। सच पूछो, तो इन लोगों का वेश दूत का है, पर असल में हैं ये गुप्तचर। हमारा भेद लेने आये हैं। रक्षको ! जाओ, इसके शरीर के किसी भी एक अंग को जला डालो। हनुमान ! अपने सुग्रीव से कहना कि वह दूसरे वानर को भेजने से पहले खूब सोच ले। जाओ, इस वानर को ले जाओ।"

इतना कहकर रावण उठा और सभा-स्थल छोड़कर चला गया। राक्षस हनुमान को पकड़कर थाने में ले गये।

: ५ :

मूक सेवक

सुग्रीव ने कहा, "मामा, मामा ! तनिक शांत होकर कहिए तो कि हुआ क्या है ? आप यों अचानक लाल-पीले हो गये हैं, और आपकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली है, लेकिन मैं तो कुछ समझ नहीं पा रहा हूं। कहिए, बात क्या है ?"

दधिमुख रोता-रोता बोला, "महाराज ! बात किस मुंह से करूं ? बाली के जमाने में मेरे मधुवन में कोई वानर बच्चा मेरी इजाजत के बिना पैर नहीं रख पाता था। बाली स्वयं भी साल-छह महीनों में कभी मधुवन आता था, दो दिन रहता था और नए तैयार हुए पेड़-पौधों को देखकर

मेरी पीठ थपथपाता था। बाली गया सो गया ही, पर अपने साथ व्यवस्था के सारे तंत्र को भी लेता गया। तू अब अपने महल में मौज कर, ये दो भाई आये हैं, इन्हें राजी रख, और अपने वानरों को उनकी मनमानी करने दे। ये सब तो बिलकुल स्वतंत्र हो गये हैं।"

सुग्रीव ने कहा, "किंतु मामा ! आप क्या कहना चाहते हैं, सो तो मैं समझ ही नहीं पा रहा हूं।"

दधिमुख कहने लगा, "बाली के समय में तो वानरों के मधुवन में घुसने की बात सुनते ही वह सबकी चमड़ी उतरवा लेता था ! आज तो तेरा अंगद, तेरा हनुमान, तेरा जांबवान सभी मेरे वन में घुसकर मदमस्त सांड़ की तरह नुकसान करते हैं और मैं तेरे पास रोता खड़ा हूं, फिर भी मेरी सुनवाई नहीं हो रही !"

सुग्रीव ने आश्चर्यपूर्वक पूछा, "मामा ! लेकिन अंगद और हनुमान मधुवन में कैसे पहुंचे होंगे ?"

दधिमुख बोला, "मैंने उन्हें अपनी आंखों देखा है।"

सुग्रीव ने कहा, "मामा ! आप भूल रहे हैं। वे लोग तो सीता की खोज में निकले हैं। दूसरे दल समय रहते वापस आ गये, लेकिन उन लोगों का तो अभी कोई पता ही नहीं है। अभी-अभी तारा भी अंगद के बारे में अपनी चिंता प्रकट कर रही थी।"

दधिमुख बोला, "सुग्रीव! मेरे सिर के सारे बाल मधुवन में ही सफेद हुए हैं। फिर भी तुझे, मेरी बात न माननी हो, तो तेरी मरजी ! तूने भले ही उन्हें सीता की खोज के लिए भेजा होगा, पर वे सब तो मौज से जंगल में भटक रहे हैं, आराम से शहद के छत्तों को उड़ाते हैं और जिन पेड़ों को मैंने बड़ी मेहनत से पाल-पोसकर बड़ा किया है, उन्हें बिलकुल ठूंठ बनाकर छोड़ दे रहे हैं। हां, वे आकर मुझसे कहें कि हमें भूख लगी है, तो मैं उन्हें आम दूं, अमरूद दूं, अनार दूं; लेकिन वे तो आते ही सीधे शहद के छत्ते पर टूट पड़े और मैं मना करने गया, तो मुझे ही गिरा दिया। सुग्रीव ! मैं तुझे क्या कहूं ? जमाना बहुत बदल गया है। बाली के जमाने में नौजवान ऊंची आंख रखकर चल नहीं सकता था, इतनी उसकी धाक थी। अब तो इन सारे नौजवानों की अपनी एक ही गत बनी है। कहीं दो व्यक्ति एक-

दूसरे के गले में हाथ डालकर परस्पर चूमते हुए गुपचुप बातें कर रहे हैं, तो कहीं दूसरे दो आमने-सामने आम की डाली पर बैठकर एक-दूसरे पर आम की गुठलियां फेंक रहे हैं; कुछ किसी मनोहर लता-कुंज में इकट्ठे होकर नाचने-कूदने लगते हैं, तो दूसरे कुछ लोग किसी कोने में घास का अलाव जलाकर चीखने-चिल्लाने लगते हैं। और, जब मुझ जैसा बूढ़ा उन्हें समझाने जाता है, तो मेरे बेटे दांत निपोड़ने लगते हैं, ठठाकर हंसना शुरू कर देते हैं और मेरी पीठ फिरते ही कुचेष्टाएं करने लगते हैं ! सुग्रीव। अब मुझे पुरानी आंखों से यह नया तमाशा देखना नहीं है। तू जान और तेरा मधुवन जाने ! तू किसी दूसरे बनपाल को रख ले। वह वन की भी सार-संभाल करेगा और तेरे इन नौजवानों को भी मजा आयेगा।"

सुग्रीव ने कहा, "मामा ! मधुवन के बनपाल तो आप ही हैं। जिस मधुवन में आप नहीं, वह सुग्रीव के किस काम का ? मैं देखूंगा कि अब आपको कौन सता सकता है ? मामा ! आप जाकर उन सबको मेरे पास भेज दीजिये। उनमें न अंगद होगा, न जांबवान। लगता है आपको कुछ भ्रम हुआ है; किंतु यदि अंगद ही हो, तो उसे जल्दी भेज दीजिये। मुझे उससे जरूरी काम है।"

दधिमुख सिर पर हाथ रखते हुए बोला, "तू तो राजा बनकर छूट जायगा, पर मैं इस तरह कैसे छूट सकता हूं ? आज तो मैं जा रहा हूं, पर आगे तेरे कोई नौजवान ऐसी गड़बड़ करेंगे, तो मैं उन्हें जिंदा नहीं छोड़ूंगा। तू उनसे कह देना, फिर भले ही उनकी मां तेरे पास रोती-बिलखती आये। सुग्रीव ! आज मधुवन की बारी आई है, तो कल किष्किंधा के राज्य की भी आ सकती है, इसका खयाल जरूर रखना।"

सुग्रीव दधिमुख की पीठ थपथपाते हुए बोला, "मामा ! आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं। मैं इसका पक्का बन्दोबस्त करता हूं। आप उन लोगों को यहां जल्दी भेज दीजिये।"

... ...

दोनों हाथ जोड़कर सुग्रीव ने कहा, "महाराज रामचंद्र। मुझे जो समाचार मिले हैं, उनसे स्पष्ट मालूम होता है कि सीता देवी का पता लग चुका है।"

रामचंद्र बोले, "वानरराज ! माना कि वे लोग सचमुच अंगद, हनुमान आदि ही हैं, फिर भी क्या यह संभव नहीं कि देवी का पता न लग सका हो ?"

उत्तर में सुग्रीव ने कहा, "तर्क से विचार करने पर इसकी संभावना-सी लगती है ! किंतु दिल इसे मंजूर नहीं कर रहा । सीता का पता न चला होता तो वे लोग मधुबन में इस तरह मौज कभी न करते । ऐसा कुछ करने की उनकी इच्छा ही न होती । देवी का पता न लगा होता, तो हनुमान आदि सशरीर वापस आते ही नहीं, और मान लीजिये कि आते भी, तो रात के अंधेरे में किष्किंधा पहुंचकर अपने-अपने घरों में घुसकर बैठ जाते ।"

लक्ष्मण ने पूछा, "वानरराज ! यदि सचमुच वे देवी के समाचार लाये होते, तो सीधे हमारे पास ही न आते ! मधुवन में क्यों रुकते ? आपका क्या खयाल है ?"

सुग्रीव ने समझाते हुए कहा, "लक्ष्मण ! वे लोग जानते हैं कि आदेश के अनुसार तो वापस आने का समय बहुत पहले बीत चुका है । अतः आदेश की दृष्टि से तो उन सबको मौत की सजा दी जानी चाहिए । इस-पर भी मधुवन में आनंद मनाने का उत्साह उनके अंदर है, इसी से स्पष्ट पता चलता है कि उनके मन में सीता की खोज की उमंग है । केवल सुग्रीव की मनोदशा जान लेने के इरादे से उन्होंने मामा को परेशान करके मेरे पास भेज दिया था ! किंतु मुझे इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि सीता का पता लग चुका है ।"

रामचंद्र बोले, "वानरराज ! मैं चाहता हूं कि जो विश्वास आपके मन में जागा है, वही मेरे मन में भी जागे !"

सुग्रीव ने कहा, "महाराज रामचंद्र ! देखिए, सारा दल हर्ष-ही-हर्ष में किलकारियां लगाता हुआ चला आ रहा है । इसी से स्पष्ट होता है कि देवी का पता चल चुका है, अन्यथा किसी के चेहरे पर कोई रौनक ही न होती !"

इस प्रकार बातचीत चल ही रही थी कि इतने में अंगद ने आकर सुग्रीव को, रामचंद्र को और लक्ष्मण को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर

खड़ा हो गया।

सुग्रीव ने अंगद की पीठ थपथपाते हुए कहा, "बेटा अंगद ! आखिर तुम सीता देवी का पता लगाकर ही लौटे हो न।"

अंगद बोला, "जी, महाराज।"

रामचंद्र ने कहा, "भैया ! तू दीर्घायु हो।"

लक्ष्मण ने पूछा, "सीता देवी अच्छी तरह हैं ?"

रामचंद्र ने पूछा, "सीता देवी जीवित तो हैं ? सीता देवी का पता किस तरह लगा, सो सब ‹ हमें विस्तार से कह ! बेटा अंगद ! तूने बाली का नाम रख लिया; अपनी तारा को तूने अधिक उज्ज्वल बनाया। भैया ! इधर आ। यहां बैठकर सारी बातें सुना।"

अंगद बोला, "महाराज ! शायद आप सोच रहे हैं कि सीता देवी का पता मैंने लगाया है, पर बात ऐसी नहीं है। मैं बाली का बेटा हूं और अपने दल का सरदार हूं, इसलिए सारे दल का यश मुझे मिल रहा है; किंतु सीता देवी के पक्के समाचार लानेवाला तो वह खड़ा है !"

लक्ष्मण ने पूछा, "इतनी दूर खड़ा रहनेवाला वह कौन है ?"

अंगद ने कहा, "वह हनुमान है। महाराज ! हम तो बाहर से बड़े हैं, हनुमान अंदर से बड़ा है; हमारे पास दिखावा है, हनुमान के पास ठोस काम है; हमारे पास अधिक-से-अधिक कुछ है, तो तर्क-कुशल बुद्धि है, जबकि इस हनुमान के पास श्रद्धायुक्त दर्शन है। जंगलों में भटकते हुए जब हम जीवन से थक चुके थे तब हनुमान ने हममें प्राण-संचार किया था; जब गुफाओं में हमारे चारों ओर अंधेरा था, तो हनुमान ने प्रकाश की किरणें दिखाई थीं। महाराज ! स्वयं आपसे मेरा मन अलग होने जा रहा था, ऐसे समय इस हनुमान ने मेरे अंदर विश्वास उत्पन्न किया था। जब सागर लांघने के लिए आखिर मुझे तैयार होना पड़ा, तो युद्ध-शास्त्र के अनुशासन के अनुसार हनुमान ने वह जोखिम अपने सिर ली और उसमें सफलता प्राप्त की। महाराज रामचंद्र ! इस समय आपके मुरझाए हुए मन को इन समाचारों से जो नवजीवन मिल रहा है, उसका सारा श्रेय हनुमान के सच्चे प्रताप को है। सुग्रीव ! आपकी आज्ञा होने पर सारी दास्तान सुनाने के लिए मैं तैयार हूं, किंतु वह दास्तान सुनाने का सच्चा

अधिकार तो हनुमान का ही है। हनुमान ! तू छिप क्यों रहा है ?"

हनुमान ने कहा, "महाराज ! कुमार को तो मेरा मजाक उड़ाने की आदत है; मैं जहां हूं, वहीं ठीक हूं।"

सुग्रीव बोला, "नहीं-नहीं। हनुमान ! आज की यह घड़ी औपचारिकता की नहीं है। तुम आगे आकर रामचंद्र को अथ से इति तक की सारी बातें सुनाओ, जिससे उनके दिल का बोझ हलका हो। तुम्हारी मूक सेवा को आज इतना मुखर होना चाहिए।"

सुग्रीव के आग्रह से हनुमान आगे आया और सीता से प्राप्त मणि अपने दोनों हाथों से रामचंद्र के पास रखकर बोला, "महाराज रामचंद्र ! लंका में देवी अघोर राक्षसियों के बीच रहती हैं और अपनी पवित्रता के बल से राक्षसराज के बल को, उसके प्रलोभनों को और धमकियों को ठुकरा सकी हैं।"

लक्ष्मण ने पूछा, "वहां देवी के दिन किस तरह बीत रहे हैं ?"

हनुमान बोला, "जैसे महाराज रामचंद्र के और आपके यहां बीतते हैं, वैसे ही उनके वहां बीत रहे हैं। पंचवटी छोड़ने के दिन से लेकर आजतक उनका कोई क्षण ऐसा नहीं बीता, जब उन्होंने आपको याद न किया हो। रात-दिन, जागते और सोते, देवी आपका ही स्मरण करती रहती हैं।"

रामचंद्र बोले, "दुष्ट राक्षसियों के त्रास से बेचारी न जाने कैसी हो गई होगी ?"

हनुमान ने कहा, "पंचवटी में जो वस्त्र पहने थीं, उसी को सारे शरीर में लपेटे रहती हैं; रात-दिन रो-रोकर आंसू भी सुखा डाले हैं; शरीर पर मैल की तहें जम चुकी हैं; कपाल के तिलक की चमक फीकी पड़ गई है; सिर के बालों ने दस महीनों से तेल की बूंद नहीं देखी; मुंह कुम्हला गया है। इस पर भी इन सबकी आड़ से देवी का आत्मतेज जगमगाता रहता है। राक्षसियों का त्रास और उनके अपशब्द, रावण की धमकियां, प्रलोभन और नीचतापूर्ण बातें; आपका वियोग; लंका की दुर्गंध-भरी हवा, देवी इन सबको अपने आत्मबल से सहन कर रही हैं और उस आत्मबल को अधिक-से-अधिक पुष्ट करती रहती हैं।"

रामचंद्र ने पूछा, "देवी ने मेरे लिए कोई संदेश भेजा है ?"

हनुमान ने कहा, "देवी क्या संदेश भेजेंगी, यह आपसे कौन छिपा है ? फिर भी मुझे जो कहना चाहिए, मैं कहता हूं। देवी ने यह मणि आपके लिए भेजी है और..."

रामचंद्र बीच ही में बोल उठे, "हनुमान, मैं तुम्हें कैसे समझाऊं कि इस मणि में से कितनी शीतलता निकल रही है। हमारे विवाह के समय सीता की माता ने यह मणि मेरे पिता के हाथ में दी थी और दशरथ महाराज ने इस मणि को सीता की मांग में गूंथा था। मेरे ससुर जनक को यह मणि इंद्र ने विशेष रूप से दी थी। आज इस मणि को देखकर ये सारी स्मृतियां मेरे मन में ताजी हो रही हैं और मेरा अंतःकरण एक अनोखी शीतलता का अनुभव कर रहा है। हनुमान ! हमारी बात अभी अधूरी ही है !"

हनुमान बोले, "महाराज रामचंद्र ! आपके लिए यह मणि भेजते हुए देवी ने कहलाया है, 'रामचंद्र ! आप मुझे एक महीने के अंदर नहीं छुड़वायेंगे, तो आप मेरा मुंह नहीं देख पायंगे।, देवी को सतानेवाले कौए की जो गत आपने की थी, उसकी विस्तृत चर्चा करने के बाद देवी ने कहलाया है, 'कौए की ऐसी गत करनेवाले मेरे रामचंद्र रावण के इस कृत्य को क्यों सहन कर रहे हैं ? यमराज को भी सीधा करनेवाले मेरे देवर लक्ष्मण धनुष-लेकर तैयार क्यों नहीं हो रहे हैं ?"

लक्ष्मण से नहीं रहा गया। बोले, "महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं रावण को मार कर देवी को यहां ले आऊं।"

हनुमान ने आगे कहा, "महाराज ! मैंने देवी को जता दिया है कि उन्हें आपके निवास का पता भर चलने की देर है। इसके अलावा मैंने उनसे कहा, 'आपको अपनी पीठ पर बैठाकर मैं रामचंद्र के पास पहुंचा देने को तैयार हूं।' "

सुग्रीव बोला, "अच्छा ! तब तो तुम्हें देवी को उठाकर ले ही आना चाहिए था। रावण हाथ मलता बैठा रहता।"

हनुमान ने कहा, "किंतु देवी ने इसके लिए इंकार कर दिया। उन्होंने मुझसे कहा कि 'पर पुरुष की पीठ पर बैठकर जाने में मैं हीनता अनुभव करती हूं।' "

रामचंद्र बोले, "धन्य है, देवी ! धन्य है ! उस दुष्ट से तुम्हें छुड़ाने का काम तो मुझे ही करना है।"

हनुमान कहने लगे, "महाराज ! देवी यह भी कह रही थीं, 'रावण तो मुझे चोर की तरह चुपके-से उठाकर ले आया। किंतु मेरे राम तो मुझे रावण से लड़कर और उसे मारकर सारी दुनिया के देखते यहां से ले जायं, इसीमें मेरी, मेरे रामचंद्र की और समूचे रघुकुल की शोभा है। इसीलिए मैं तेरे साथ चलने से इंकार कर रही हूं।' "

रामचंद्र बोले, "ठीक है, सीता ! ठीक है। लक्ष्मण ! अब हम तैयार हो जायं। सुग्रीव, तैयारी करो। हनुमान ! यदि मैं कहूं कि सीता के समाचार सुनाकर तूने मुझे जीवन-दान दिया है, तो इसमें थोड़ी भी अतिशयोक्ति नहीं। मैं अयोध्या का महाराज होता, तो आज तेरे इस मंगल-कार्य के बदले में तुझे अयोध्या का आधा राज सौंप देता, किंतु आज तो राम अकिंचन वनवासी है !"

हनुमान ने कहा, "महाराज ! आपकी और देवी की सेवा को ही मैं अपने जीवन का परम सौभाग्य समझता हूं। उसके अभाव में अयोध्या का तो क्या, समूची दुनिया का राज मिल जाने पर भी वह हनुमान के किस काम का होगा ?"

रामचंद्र बोले, "वीर हनुमान ! आ, तू मेरे पास आ जा ! तुझे अपने हृदय से लगाकर मैं तेरे उपकार का थोड़ा-बहुत बदला चुकाने का संतोष अनुभव करूं।"

यों कहकर रामचंद्र ने हनुमान को अपने सीने से लगा लिया। उस समय हनुमान ने ऐसे अवर्णनीय आनंद का अनुभव किया, मानो उसे ईश्वर का साक्षात्कार हुआ हो।

इसके बाद रामचंद्र, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान आदि अपने-अपने काम के लिए एक-दूसरे से अलग हुए।

: ६ :

भक्त हनुमान

रावण की राजसभा में विभीषण ने रावण को कड़ुए लगने वाले वचन सुनाये। इस पर रावण गुस्सा हो गया और उसने विभीषण का त्याग किया। अब विभीषण के लिए लंका में रहना असम्भव हो गया, इसलिए अपनी स्त्री और बच्चों को वहां रखकर विभीषण ने लंका छोड़ दी। अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय चार मित्रों को लेकर लंका से रवाना हुआ और समुद्र के उस पार जहां रामचंद्र का पड़ाव था, वहां पहुंचा।

रामचंद्र, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि जहाँ एक साथ बैठे थे, वहां आकाश में ही रुककर विभीषण ने निवेदन किया, हे दशरथ-पुत्र रामचंद्र ! मैं राक्षस-राज रावण का भाई विभीषण हूं ! रावण आपकी भार्या को उठाकर ले आया है। मैं उसके इस नीच कर्म से सहमत नहीं हूं। इस कारण मेरे लिए लंका में रहना कठिन हो गया है। मैं आपकी शरण में आया हूं। मुझे स्वीकार कीजिए।"

विभीषण के इन शब्दों को सुनकर रामचंद्र की छावनी में भारी ऊहा-पोह शुरू हो गया। "विभीषण क्यों आया होगा ?" "रावण ने उसे हमारी सेना का अंदाज लेने के लिए तो नहीं भेजा है ?" "आखिर वह भी राक्षस ही है। उसका क्या भरोसा !" "मित्र बनने का ढोंग करके बाद में धोखा दे जाय तो ?" ऐसी अनेकानेक शंका-कुशंकाएं सबके मन में उठने लगीं।

रामचंद्र ने सुग्रीव की राय पूछी, लक्ष्मण से पूछा, जांबवान से पूछा और अंत में हनुमान से कहा कि वह अपनी राय दे। हनुमान बोला, "महाराज ! हम सबकी निगाह जहां तक पहुंचती है, उसकी तुलना में आपकी नजर बहुत दूर पहुंचती है और वह अधिक स्पष्ट भी है। मैं जो कुछ कहने जा रहा हूं, सो अपनी बुद्धि की कुशलता के कारण कह रहा हूं या इसलिए कह रहा हूं कि औरों की अपेक्षा मेरे शब्दों में अधिक वजन है, ऐसी कोई बात नहीं। आज संकट की स्थिति में यह गंभीर प्रश्न उठ खड़ा हुआ है और आपने आज्ञा की है, इसलिए मुझे अपना मंतव्य स्पष्ट रूप से

आपके सामने रख देना चाहिए। वानरराज सुग्रीव, कुमार अंगद, जांबवान आदि विभीषण को अपनाने का जो विरोध कर रहे हैं, वह मुझे उचित नहीं लगता। इस संबंध में सारे तर्क-कुतर्क एक ओर रखकर सोचने पर मुझे तो विभीषण के चेहरे पर, उसके शब्दों में, उसकी रीति-नीति में और मांग में सचाई दिखायी पड़ती है। व्यावहारिक दृष्टि से देखें, तो आज रावण ने उसका तिरस्कार किया है। आप समर्थ हैं। आपने बाली को मारकर सुग्रीव को राजा बनाया है। ऐसी स्थिति में विभीषण आपकी शरण में न आये, तो किसकी शरण में जाये ? आपके हाथों लंका का राजा बनने की आशा उसके मन में छिपी हो, तो इसमें भी गलत क्या है ? मुझे विभीषण के मन में कपट का कोई भास नहीं होता। यों तो आप हमारी अपेक्षा अधिक देख सकते हैं, पर मेरा अपना मन तो यही कहता है कि आप विभीषण को स्वीकार कर लीजिये।"

आखिर रामचंद्र ने विभीषण को शरण दी।

लंका की सीमा पर वानरों और राक्षसों के बीच युद्ध छिड़ गया। लंका के पूर्वी दरवाजे पर कुमुद वानर सेना लेकर खड़ा हो गया; दक्षिण द्वार की रक्षा के लिए शतबलि उपस्थित था; तारा का पिता सुषेण पश्चिम के दरवाजे पर पर्वत की तरह अडिग होकर खड़ा था; लक्ष्मण और सुग्रीव को अपने साथ रखकर रामचंद्र उत्तरी दरवाजे पर खड़े थे; हाथ में बड़ी गदा से सज्जित विभीषण रामचंद्र की बगल में ही खड़ा था; गज और गवाक्ष अपनी-अपनी सेनाओं के साथ जरूरत वाली जगह पर पहुंचने के लिए तैयार थे। तुरंत द्वंद्व-युद्ध शुरू हो गया। हनुमान जंबमाली के मुकाबले में डट गया, गव्य तपन के सामने खड़ा हो गया, विभीषण ने शत्रुघ्न को अपने शिकंजे में ले लिया, लक्ष्मण और विरूपाक्ष आपस में भिड़ गये, मैंद ने वज्रमुष्टि को पकड़ा, सुषेण ने विद्युन्माली के विरोध में कमर कसी।

युद्ध के चलते राक्षसों के कई सेनापति एक के बाद एक मारे गये। धूम्राक्ष मारा गया, वज्रदंष्ट्र खेत रहा, बलाध्यक्ष और प्रहस्त धूल चाटने लगे, अकंपन मरा और रावण को भी खासी मार पड़ी। आखिर कुंभकर्ण भी काम आ गया।

राक्षस-सेना की पराजय होते देखकर इंद्रजित फिर मैदान में आ डटा। एक बार तो उसने अपने पराक्रम से राम-लक्ष्मण को भी घबरा दिया था। इंद्रजित कपट-युद्ध में अत्यंत कुशल था। इंद्रजित ने आकर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया और राम-लक्ष्मण सहित समूची वानर-सेना को मूच्छित कर दिया। सुग्रीव और जांबवान को, मैंद और द्विविद को, नल को और कुमुद को अपने बाणों से प्रभावित किया। राम-लक्ष्मण की भी वही दशा हुई।

वानर-सेना की ऐसी स्थिति देखकर विभीषण ने कहा, "हनुमान ! हममें से जिन-जिन के प्राण अभी अटके हुए हैं, हम चलकर उन्हें संभाल लें।" ऐसा कहकर हनुमान और विभीषण हाथ में दीपक लेकर लड़ाई के मैदान में घूमने लगे। सुग्रीव और अंगद, नील और जांबवान, सुषेण और वेगदर्शी सब उन्हें मरे-से लगे। महासागर-सी विशाल वानर-सेना को इस दशा में पड़ी देखते-देखते जब दोनों व्यक्ति जांबवान के पास पहुंचे, तो विभीषण ने उससे कहा, "जांबवान ! तीक्ष्ण बाणों ने तुम्हारे प्राण तो रहने दिये हैं न ?" विभीषण के इन शब्दों को सुनकर जांबवान बोला, "वीर राक्षस-राज ! तीक्ष्ण बाणों से मेरी आंखें बिंध चुकी हैं, इस कारण मैं देख नहीं पा रहा हूं, लेकिन आवाज से मैंने आपको पहचान लिया है। जिसके जन्म से अंजना और वायु दोनों सौभाग्यशाली बने हैं, वह हनुमान जीवित रहा है या नहीं ?"

जांबवान की ये बातें सुनकर विभीषण ने पूछा, "जांबवान ! राम-लक्ष्मण के जीवित रहने की बात न पूछकर तुमने पहले हनुमान का नाम क्यों याद किया ? वानरराज सुग्रीव, कुमार अंगद, हम सबके आधार रामचंद्र, इनमें से किसी के विषय में न पूछकर हनुमान के बारे में ही क्यों पूछा ?"

विभीषण के ये शब्द सुनकर जांबवान बोला, "मैंने सकारण ही हनुमान के बारे में पूछा है। जबतक हनुमान जीवित है, हमारी सेना मृत होने पर भी जीवित है; समझिए कि हनुमान के मर जाने पर हम सब जीवित होते हुए भी मृत के समान हैं। निश्चय मानिए कि जबतक हनुमान जीवित रहेगा, तभी तक हम सब जीने की आशा रख सकते हैं।"

जांबवान की इन बातों को सुनने के बाद पास ही खड़े हनुमान ने उसके पैर छुये। इस पर जांबवान कहने लगा, "हनुमान ! इस वानर-सेना की रक्षा की सामर्थ्य तेरे अंदर ही है। अपने बीच तेरे-जैसा पराक्रमी मुझे दूसरा कोई नहीं दीखता। तू इस सागर को लांघकर हिमालय पर्वत पर पहुंच जा। वहां ऋषभ और कैलास नाम के दो शिखरों के बीच एक औषधि पर्वत है। उस पर्वत पर मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी नामक चार महौषधियां हैं। उन्हें लेकर तू तुरंत वापस आ।"

जांबवान की बात सुनने के बाद हनुमान उसी समय सागर लांघकर हिमालय पर्वत पर पहुंचा और जब उसे पर्वत पर औषधियां नहीं दिखायी पड़ीं, तो वह समूचे पर्वत को ही उठाकर लंका ले आया। इस औषधि-पर्वत की महा औषधियों की गंध-मात्र से राम-लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हो गयी। उनके शरीर में लगे बाण अपने आप निकल गये और सारे वानर भी बाणों से मुक्त होकर इस तरह उठ खड़े हुये, मानो नींद से जागकर नयी ताजगी का अनुभव कर रहे हों। जब सारी वानर-सेना फिर से उठ खड़ी हुई, तो जांबवान ने विभीषण से कहा, "राक्षसराज ! आपने हनुमान का प्रताप देखा ? हममें से किसी ने राम-लक्ष्मण को पहचाना नहीं था, ऐसे समय में हनुमान ने अपने अंतर की आंखों से उन्हें पहचान लिया। परिणाम-स्वरूप सुग्रीव के साथ रामचंद्र की मित्रता हुई। हम सब देवी को खोजते-खोजते थक गये और श्रद्धा खो बैठे, उस समय हनुमान ने हममें नयी श्रद्धा जगाई। जब सौ योजन के सागर को लांघने के लिए कोई सामने न आया, तो हनुमान ने वह पराक्रम किया, जिसके फलस्वरूप आज हम यहां हैं। राक्षसराज ! जब आप स्वयं रामचंद्र की शरण में आये, तो सबसे पहले हनुमान ने ही आपके दिल को पहचाना। आज राम-लक्ष्मण की और समूची वानर-सेना की मूर्च्छा भी हनुमान के प्रताप के कारण ही दूर हुई। राक्षसराज ! मैं सच कहता हूं, किसी भी आन-बान के अवसर पर हनुमान ने ही सबका मार्ग-दर्शन किया है और सबको मुसीबत से बचाया है। इसीलिए मैं कहता था कि हनुमान के जीने से हम सब जीते हैं। ये रामचंद्र, लक्ष्मण, सुग्रीव स्वयं आप और दूसरे सब भी मेरे लिए अत्यंत वंदनीय हैं; लेकिन मुझे

कहना चाहिए कि इस हनुमान के प्रताप से ही हम सीता देवी को लेकर वापस जा सकेंगे।"

उत्तर में विभीषण बोला, "जांबवान ! मैं हनुमान को थोड़ा-बहुत तो जानता हूं। आपकी बात बिलकुल सच है। जब से मैं आया हूं, रामचंद्र के प्रति हनुमान की निष्ठा को देखता ही रहता हूं और सचमुच अपने मन में लज्जा का अनुभव करता हूं। लेकिन हम तो बातों में बहक गये। चलिए, वे राक्षस फिर आ पहुंचे हैं।" ऐसा कहकर जांबवान और विभीषण सेना की ओर गये। हनुमान समूचे पर्वत को उठाकर फिर हिमालय की ओर चल पड़े।

... ...

सीता बोलीं, "महाराज ! पिछले कई दिनों से एक बात मेरे मन में बार-बार उठती रहती है। उसके विषय में कुछ पूछूं ?"

रामचंद्र ने कहा, "देवि ! अवश्य पूछो। इसमें इतना अधिक संकोच क्यों ?"

सीता बोलीं, "कल हमारे राज्याभिषेक के बाद आपने सबको उनकी योग्यता के अनुसार अलग-अलग उपहार दिये।"

रामचंद्र ने कहा, "उपहार तो हमें देने ही थे न ? चौदह वर्षों के बाद हम अयोध्या में वापस आये। इसी बीच रावण को मारकर मैं तुझे वापस लाया। इस लंबी अवधि में जिन्होंने हमारे लिए परिश्रम किया, हमारे निमित्त से बड़े-बड़े साहसिक काम कर दिखाये, सुग्रीव और विभीषण-जैसों ने हमसे मित्रता की, उन सबको इस शुभ अवसर पर उनकी निष्ठा का सम्मान करते हुए कुछ-न-कुछ तो देना ही चाहिए न ?"

सीता बोलीं, "अवश्य देना चाहिए। मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि किसी को कुछ देना नहीं चाहिए। आपने दिया, सो बहुत अच्छा किया; किंतु एक व्यक्ति को आप उपहार देना भूल गये हैं।"

रामचंद्र ने पूछा, "किसे ?"

सीता ने कहा, "भैया हनुमान को।"

रामचंद्र ने तुरंत कहा, "सीता ! मैं उसे भूला नहीं हूं। किंतु उसे उपहार में देने योग्य कोई चीज ही अब मेरे पास नहीं बची है।"

सीता बोलीं, "प्रिय, बुरा मत मानिए। आपने मोतियों का जो हार मुझे दिया था, उसे मैं किसी को दे नहीं सकती; वह तो मेरे राम का स्मरण-चिह्न है। किंतु मैंने अनुभव किया कि उससे घटिया दूसरी कोई चीज मैं हनुमान को दे ही नहीं सकती। हम पर उपकार तो बहुतों ने किये हैं—सुग्रीव, अंगद, विभीषण, वानर आदि सबने; किंतु इस हनुमान ने तो मुझे जीवन दिया है। मैं उसे जब-जब देखती हूं, तब-तब मेरे मन में उसके लिए पुत्रवत् स्नेह उमड़ता है। इसीलिए अभिषेक के समय मैंने अपने जीवन की महंगी-से-महंगी वस्तु—आपका दिया मुक्ताहार—उसे दी! लेकिन आपने उसे कोई चीज क्यों नहीं दी, इसे मैं समझ नहीं पायी। इसीलिए मैंने आपसे पूछा।"

रामचंद्र ने कहा, "सीता! तुम नहीं समझ सकोगी। सुनो जब तुम्हारे समाचार लेकर हनुमान पहले-पहल मतंग पर्वत पर पहुंचा, उस समय मुझे कितना हर्ष हुआ होगा, इसकी कोई कल्पना तुम कर सकती हो? उस समाचार के पुरस्कारस्वरूप उसे देने योग्य कोई भी चीज मेरे पास नहीं थी, इसलिए मैंने उसे अपनी छाती से लगा लिया। देवि! यह न समझो कि कल सबको अलग-अलग उपहार देते समय मुझे हनुमान की याद नहीं रही। किंतु एक बार जिसे छाती से लगा लिया, उसे उससे भी अधिक मूल्यवान दूसरा कौन-सा उपहार दिया जा सकता है? और, सीता! सच कहूं, अब तो मैं अपने से अलग हनुमान का कोई विचार ही नहीं कर सकता! मैं मानता हूं कि जैसे उपहार की बात तुम कह रही हो, वैसा कोई उपहार मैंने हनुमान को दिया होता, तो वह उसे अखर जाता।"

सीता बोलीं, "प्रिय, अब मैं सबकुछ समझ गयी। आपने तो हनुमान का मुझसे भी अधिक ऊंचा मूल्यांकन कर लिया है, इसलिए उसके बारे में अब मुझे कुछ नहीं कहना है। मेरी इस धृष्टता के लिए आप मुझे क्षमा कर देंगे न?"

कहते-कहते राम और सीता दोनों राज्याभिषेक के लिए आये वानरों, राक्षसों आदि को विदा करने के लिए उनके पास पहुंचे!

रामचंद्र के राज्याभिषेक के बाद कई वर्ष बीत गये। इस बीच राम ने सीता का त्याग किया, सीता के दो बालक हुए, राम ने दर्भ की सीता बनवा

कर अश्वमेध यज्ञ किया, वाल्मीकि लव-कुश को लेकर राम के पास पहुंचे, सीता को प्रजा के सामने उपस्थित किया और सीता धरती में समा गयीं। ये सारी घटनाएं इंद्रजाल की-सी गति से घटती चली गयीं और अब आज रामचंद्र लव-कुश को गद्दी सौंपकर महाप्रस्थान के लिए तैयार हुए हैं। वीर लक्ष्मण काल-धर्म को पहचान कर काफी पहले परलोक सिधार चुके हैं। शत्रुघ्न ने अपने पुत्रों को गद्दी सौंप दी। वे स्वयं हवा से बात करनेवाले घोड़े पर सवार होकर अयोध्या आ पहुंचे। सुग्रीव और विभीषण भी अपने-अपने आदमियों के साथ हाजिर हो गये। अयोध्या की प्रजा आज रामचंद्र के साथ स्वर्ग की यात्रा के लिए तैयार खड़ी है।

सरयू नदी के किनारे लोगों की अपार भीड़ इकट्ठी हुई है। रामचंद्र सारे मानव-समुदाय की ओर एक दृष्टि डाल रहे थे कि इतने में हनुमान उनके पास पहुंचे और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। रामचंद्र ने गंभीर आवाज में पूछा, "कहो हनुमान ! अयोध्या की प्रजा तो स्वर्ग का सुख भोगने के लिए मेरे साथ जाने को तैयार हुई है। क्या तुम भी स्वर्ग को चलना चाहते हो ?"

हनुमान ने कहा, "महाराज ! क्या आप मेरे अंतर को नहीं जानते ? मेरे निकट स्वर्ग-नर्क का कोई हिसाब नहीं है। हनुमान के लिए तो राम की आज्ञा ही स्वर्ग है, बाकी सब नर्क। महाराज ! आपकी क्या आज्ञा है ? अयोध्या की प्रजा को आप सहर्ष स्वर्ग ले जाइये।"

रामचंद्र बोले, "हनुमान ! मैं जानता हूं कि तुम्हारे समान सेवक स्वर्ग की लालसा नहीं रखते। तुम्हें मेरे साथ नहीं आना है। तुमको तो इसी लोक में रहना है। मेरी जीवन-कथा असल में तुम्हारी ही जीवन-कथा है। तुम्हारी सेवा-कथा को लोग अधिक जानेंगे, तो मुझे हर्ष होगा। तुम्हारे समान सेवकों की संसार में बहुत आवश्यकता है, इसलिए तुम यहीं रहो। हनुमान ! तुम तो चिरंजीव हो। संसार तुम्हें कैसे भूल सकता है ?"

हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा, "जैसी प्रभु की आज्ञा !"

श्रद्धालु लोगों का विश्वास है कि आज भी जहां-जहां रामायण पढ़ी जाती है, वहां-वहां हनुमान किसी-न-किसी रूप में हाजिर हो जाते हैं और राम के स्मरण से इस लोक के अपने जीवन को सार्थक समझते हैं। □

विभीषण

: १ :

लंका-वास का निर्णय

विभीषण विश्रवा और कैकसी का सबसे छोटा पुत्र था। रावण और कुंभकर्ण के साथ उसने भी गोकर्ण तीर्थ में तपश्चर्या की थी। रावण और कुंभकर्ण की तरह उसने भी ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए अपनी काया को घुला डाला था। रावण और कुंभकर्ण की तरह ब्रह्मा ने उसे भी "वरं ब्रूहि" (वरदान मांग) कहा था। रावण और कुंभकर्ण को सुनते ही भारी घृणा हो, ऐसा वरदान विभीषण ने मांगा था, "भगवान्! मेरी बुद्धि सदा-सर्वदा धर्म में स्थिर रहे!"

तपश्चर्या समाप्त करके तीनों भाई श्लेष्मातक वन में वापस आये और अपने माता-पिता के साथ रहने लगे! इसके बाद तो रावण ने अपने बड़े भाई कुबेर से लंका छीन ली, महादेव शंकर को कैलास में हैरान किया, नन्दी ने उसे शाप दिया, रावण ने वेत्रवती-जैसी सती को सताया और वह हजारों देव-गंधर्व-कन्याओं को चुरा लाया। रावण ने तो अपने जीवन की राक्षसी प्रवृत्तियों को बड़ी तेजी से शुरू कर दिया और उन्हें सफल बनाने लिए वह राक्षसी वेग से आगे बढ़ा।

इस बीच विभीषण के सामने राक्षसों के साथ लंका में जाकर बसने का प्रश्न खड़ा हुआ। रावण और विभीषण के रास्ते एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न और उल्टे थे। वैसे, दोनों विश्रवा और कैकसी के पुत्र थे, किंतु रावण राक्षस था और विभीषण देव; रावण शक्ति का पुजारी था, विभीषण सौजन्य का पुजारी; रावण को अपनी देह और देह के भोग ही जीवन में सर्वोपरि प्रतीत होते थे, जबकि विभीषण को आत्मकल्याण और धर्म-अधर्म का विचार अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता था; रावण अनेक देव-गंधर्व-

कन्याओं को उठा लाता, शराब के नशे में मत्त होकर भोग-विलास में डूबा रहता और अनेक आर्यस्त्रियों का आर्तनाद सुनकर मन-ही-मन फूला न समाता। इसके विपरीत, विभीषण ऐसी दुखियारी स्त्रियों को ढाढ़स बंधाने में और अपने जीवन में उग्र संयम का पालन करने में ही लीन रहता था।

एक बार कैकसी और विभीषण अपने आश्रम की अमराई में टहलते हुए बात करने लगे। साथ में विभीषण की स्त्री सरमा भी एक ओर चल रही थी।

कैकसी बोली, "बेटा विभीषण ! रावण और कुंभकर्ण दोनों लंका जाने के लिए तैयार हुए हैं, यह तो ठीक ही है; पर तू वहां किस तरह रह सकेगा ? तुझे लगता होगा कि तेरा विवाह हो चुका है, इसलिए अब तू सयाना हो गया है, लेकिन मेरी दृष्टि में तो तू अभी छोटा ही है। इन राक्षसों के बीच तेरा क्या होगा ?"

विभीषण ने कहा, "माता ! अपनी तरफ से तो मैं यही मांगता हूं कि मैं हमेशा छोटा ही बना रहूं; लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मैं इस श्लेष्मातक वन में पड़ा रहूं, जहां बड़े भैया रहेंगे, वहीं मैं भी रहूंगा। यदि मंदोदरी लंका में रह लेती है, तो मेरी सरमा भी लंका में रह लेगी।"

कैकसी कहने लगी, "विभीषण ! तू मेरी बात समझा नहीं। मैंने यह कब कहा कि तेरे लिए लंका में रहने को घर नहीं है ? वैसे तो रावण बहुत बड़े दिलवाला है। वह मुझसे कह रहा था, 'मैं कुंभकर्ण के सोने के लिए संगमरमर का बड़ा तलघर बनानेवाला हूं और विभीषण के लिए तो अपने महल के ढंग का महल ही बनवाऊंगा !' किंतु इस तरह रहने के लिए महल की चहारदीवारी मिल जाने से होता क्या है ? प्रश्न यह है कि रावण की और राक्षसों की उस हवा में तू किस प्रकार जी सकेगा ?"

विभीषण बोला, "मां ! ऐसी बात मत कह। जन्म से तो मैं राक्षस ही हूं, तू भी है, लेकिन तुझे और मुझे हम राक्षसों का रहन-सहन अच्छा नहीं लगता। फिर भी मैं लंका में अपने राक्षसों के बीच रहूंगा और इस तरह रहूंगा कि जिससे तेरी और मेरी शोभा बढ़े।"

कैकसी ने समझाते हुए कहा, "बेटा विभीषण ! बात उतनी सरल नहीं है, जितनी तू कह रहा है। जरा अपने पिता से पूछ लेना। मेरे सगे-संबंधी

उन्हें किस तरह और कितना परेशान करते हैं ? मुझे तेरे पिता का साथ मिला और आश्रम में रहने का अवसर मिला, इस कारण कोई बड़ी बाधा सामने नहीं आई। पर तेरे लिए तो चारों ओर से रोज-रोज राक्षसों के नए-नए ऊधम होंगे और उन सबके बीच में तू अकेला होगा ! तू अपनी सरमा के साथ यहां श्लेष्मातक में ही रह।"

विभीषण बोला, "माता कैकसी ! तेरी बात मेरे गले नहीं उतरती। पहली बात तो यह है कि अपने सगे-संबंधियों से बिलकुल दूर और अलग रहने में मुझे कोई सार दिखाई नहीं देता। माना कि राक्षस सब दुष्ट होते हैं, फिर भी वे मेरे हैं और मैं उनका हूं। आज तो अपने सब विचारों में मैं रावण से और राक्षसों से अलग पड़ जाता हूं; लेकिन मेरे समान कई नौजवान उस समय फिसल जाते हैं, जब विचारों को आचरण में उतारने का समय आता है। यही नहीं, बल्कि वे दूसरों से अधिक ही नीचे फिसलते हैं। मैं लंका में रहूंगा, अपने इन राक्षस-भाइयों के साथ रहूंगा, और फिर भी उनसे भिन्न रीति से रहूंगा। तभी तो मुझे यह देखने का अवसर मिलेगा कि मेरे अपने विचार कहां तक सच्चे हैं ? जीवन के कई मनोरथ कल्पना में तो सुंदर प्रतीत होते हैं, किंतु वे व्यवहार में उतर ही नहीं पाते। यदि लंका में जाने के बाद मेरे मनोरथ भी पानी के बुदबुदों की तरह फूंक लगते ही फूट जायं, तो तू समझ लेना कि विभीषण ने बचपने में आकर तुझसे कुछ बातें कही थीं; पर अंदर से तो वह भी रावण ही था। माता ! मैं सोचता तो यह भी हूं कि अपने इन राक्षस भाइयों के साथ रहकर मैं इनके जीवन में ही भारी परिवर्तन कर डालूं।"

कैकसी ने सिर हिलाते हुए कहा, "बेटा ! तुझे दुनिया की कोई खबर नहीं। तू राक्षसों को जितना पहचानता है, उससे अधिक मैं पहचानती हूं। विभीषण ! सांप के शरीर की रचना ही ऐसी होती है कि उसे दूध पिलाने पर भी उसका जहर ही बनता है। जिस आदमी के पेशाब में शकर बनने की बीमारी हो जाती है, उसके शरीर की रचना ही ऐसी बन जाती है कि वह जो कुछ खाता है, उसके शरीर में उसकी शकर बनती जाती है। अपने राक्षसों के मन की रचना ही ऐसी है कि उनके पास जो भी चीज पहुंचती है, वह तुरंत ही विकृत बन जाती है और फिर उस विकृत

रूप में ही वह प्रकट भी होती है।"

विभीषण बोला, "मां, तू अपने भाइयों के साथ आवश्यकता से अधिक अन्याय कर रही है। ईश्वर की सृष्टि में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसके हृदय में सत्य वस्तु के संस्कार न पड़े हों। यदि मुझमें सच्ची धर्म-बुद्धि होगी, तो इन भाइयों के मन पर मेरा प्रभाव अवश्य ही पड़ेगा। संसार का यह सनातन नियम है। यदि उन पर मेरा प्रभाव न पड़े, तो तू समझ लेना कि मेरी धर्म-बुद्धि में उतनी कमी है।"

कैकसी ने कहा, "विभीषण ! तू नहीं जानता। दुष्टों को चाहे जितना समझाओ, वे अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते। ये रावण-कुंभकर्ण तेरे सगे भाई हैं, पर क्या ये आज भी तेरी बात समझते हैं ? वैसे देखा जाय, तो रावण ने वेद का अभ्यास किया है। तेरे साथ ही वर्षों तक तपश्चर्या की है। मैं भी उसे इतना समझाती रहती हूं, पर क्या वह समझ रहा है ? मुझे लगता है कि लंका में तेरा दम घुटने लगेगा। आज तो हम यहां बैठे हैं, इसलिए तेरे ये भाई तुझसे कुछ कह नहीं सकते। लंका में जाने के बाद तो तुझे उसी तरह रहना और जीना होगा, जिस तरह रावण चाहेगा। यदि वैसा न हुआ, तो वह तेरी दुर्दशा कर देगा।"

विभीषण बोला, "मां, तू कबतक इन सब बातों की चिंता करती रहेगी ? जो माताएं नित्य निरंतर अपने पुत्रों की ऐसी चिंता करके उन्हें अपनी छाया में ही रखे रहती हैं, वे उन्हें बढ़ने नहीं देतीं। परिणाम यह होता है कि जब ऐसे बच्चों को प्रत्यक्ष जीवन में थोड़ी भी धूप सहने का मौका आता है, तो वे तुरंत मुरझा जाते हैं। मां ! अब मेरा विवाह हो चुका है। आजतक हम तेरी शीतल छाया में रहे, अब तू हमें दूर जाने दे। हमको स्वतंत्रता पूर्वक उड़ने दे। आजतक हमने तुझसे जो कुछ पाया है, उसके बल-भरोसे और अपने सामर्थ्य के भरोसे अब हम जीयेंगे। निरंतर तेरी ही छाया में रहकर जीने में सुरक्षा चाहे हो, पर ऐसी निर्वीर्य सुरक्षा न तेरे विभीषण को चाहिए और न तेरी सरमा को चाहिए। मां ! एक बात मैं तुझे आज ही कह देना चाहता हूं। मैंने ब्रह्मा से जो धर्म-बुद्धि मांगी है, वह ऐसी निर्वीय धर्म-बुद्धि नहीं है। मैं तो उसे धर्म-बुद्धि मानता हूं, जो चारों ओर अधर्म के बादलों से घिरने पर भी उनमें से अपने लिए रास्ता निकाल

सके; मैं तो उसे धर्म-बुद्धि मानूंगा, जो चारों ओर फैले हुए कपट और माया के जाल को छिन्न-भिन्न कर सके; मेरे निकट धर्म-बुद्धि वह है, जो चारों ओर व्याप्त अंधकार में प्रकाश की किरण फैलाकर उसे सदा के लिए समाप्त कर दे। मां ! यदि तेरा विभीषण राक्षसों के बीच रहकर धर्म-परायण-जीवन न जी सके, तो वह उसका धर्म-जीवन नहीं, बल्कि नन्हें बच्चे की तुतली बोली-भर होगा। मां ! तू मेरी चिंता मत कर। अपनी सरमा को आशीर्वाद दे।"

कैकसी की आंखें भर आईं। वह बोली, "बेटा ! जैसी तेरी मरजी। बेटा विभीषण ! रावण की आज्ञा का पालन करना। स्वयं आगे बढ़कर उसका विरोध मत करना। सरमा ! जब कभी विभीषण घबड़ा उठे, तो तू उसकी घबड़ाहट को शांत करना। बहुत ही सावधानी से रहना। मंदोदरी का दिल मत दुखाना। इस सबके बाद भी लंका में रहना कठिन ही हो जाय, तो तुरंत यहां आ जाना।"

विभीषण ने कहा, "मां ! आशीर्वाद दे कि विभीषण तेरी कोख को न लजाये।"

कैकसी ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "बेटा, चिरंजीव हो।" और विभीषण के झुके सिर पर आंसू की एक बूंद टपक पड़ी।

: २ :

अन्तर का उद्वेग

सरमा गंधर्वराज शैलूष की पुत्री और विभीषण की पत्नी थी। रावण द्वारा कुबेर से लंका छीन लेने के बाद सारे राक्षस फिर लंका में आकर बस गए। राक्षसराज ने कुंभकर्ण के लिए ऐसा सुंदर तलघर बनवा दिया, जिसमें वह आराम से लंबी नींद ले सके। रावण ने अपने छोटे भाई विभीषण के लिए भी महल बनवा दिया।

लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे विभीषण को लंका में रहना अखरने लगा। रावण के आसपास दादा सुमाली का और ऐसे ही दूसरे राक्षसों का जोर बढ़ने लगा। अंत में स्थिति इस हदतक पहुंच गई कि विभीषण की केवल उपस्थिति भी रावण के लिए असह्य हो गई।

सरमा बहुत भली स्त्री थी। धरती पर जहां बड़े-बड़े रेगिस्तान होते हैं, आमतौर पर वहां पानी नहीं होता। इस कारण अक्सर यात्री गरमी से और पानी के अभाव से व्याकुल हो उठते हैं; किंतु ऐसे वीरान रेगिस्तानों में कहीं पानी का कोई झरना फूट निकलता है, तो आसपास का थोड़ा प्रदेश हरा-भरा दीखता है। प्यास से बेदम यात्री जब वहां जा पहुंचते हैं, तो उनमें नए प्राणों का संचार हो आता है। लंका के राक्षसी वातावरण में विभीषण और सरमा ऐसे ही मीठे झरनों के समान थे। लंका में जो इनेगिने राक्षस-देहधारी मानव थे, उनके लिए विभीषण का घर विश्राम की जगह बन गया था। रावण पृथ्वी के कोने-कोने से अनेक सुंदर युवतियों को अपने भोग-विलास के लिए पकड़कर ले आता था। समय मिलने पर वे बेचारियां अपने दिल की आहें सरमा के सामने प्रकट करती थीं और सरमा की गोद में सिर रखकर रो लिया करती थीं। जब रावण सीता का हरण करके लाया और उसे अशोक वन में रखा, तो उसने यह बात किसी के कान पर भी नहीं डाली। लेकिन राक्षसियों की आपस की बातों से सरमा को इसका पता चल गया। फिर तो वह समय-समय पर सीता के पास जाने भी लगी थी।

एक बार सरमा और विभीषण अपने महल की छत पर बैठे थे। उनके चारों ओर गहन अंधकार था। आसमान में तारे जगमगा रहे थे। आधी रात होगी। सीता देवी के निःश्वासों ने लंका की हवा में एक विचित्र-सी गरमी पैदा कर रखी थी। बीच-बीच में, थोड़े-थोड़े समय के अंतर से, रावण द्वारा पकड़कर लायी गई देव-गंधर्व-कन्याओं की जो चीखें दूर पर सुनायी पड़ती थीं, वे रात के उस घने अंधेरे को और शांति को चीरती रहती थीं।

विभीषण बोला, "देवि ! क्या इन चीखों का और आधी रात के इन पापों का कोई उपाय तुझे नहीं दीखता ? ये सारी देवकन्याएं क्यों महाराज

के वश हो जाता हूँ ?"

सरमा ने कहा, "विभीषण ! आपको यह बात नहीं कहनी चाहिए। ये बेचारी क्या करें ? जब से आयी हैं, तब से लेकर आजतक एक दिन भी इन्होंने न तो सुखपूर्वक भोजन किया है और न ये आराम से सो ही सकी हैं।"

विभीषण ने पूछा, "यदि ऐसी बात है, तो ये रावण के अधीन होती ही क्यों हैं ? ये उसे लात क्यों नहीं मार देतीं ?"

सरमा ने कहा, "विभीषण ! क्या आपने स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा दी है ?".

विभीषण बोला, "तू ही तो मुझसे कह रही थी कि महाराज रावण कितने ही बड़े क्यों न हों, लेकिन जब सीता उनके सामने तिनका लेकर बैठ जाती है, तो वे दीन बन जाते हैं और मुंह से गर्व की या भय की चाहे जितनी बातें क्यों न करते रहें, वे सीता को हाथ भी नहीं लगा सकते।"

सरमा ने कहा, "बात बिलकुल सच है, लेकिन सब स्त्रियां तो सीता नहीं हो सकतीं। सीता की तो बात ही और है। रावण कितने ही प्रतापी क्यों न हों, पर जब वे सीता को देखते हैं, तो उसमें उन्हें अपना काल दिखाई पड़ता है। दूसरी कन्याओं से इतने भारी आत्मबल की आशा कैसे रखी जा सकती है ? लेकिन मुझे तो आप पर गुस्सा आता है।"

विभीषण ने पूछा, "मुझ पर ?"

सरमा ने कड़ककर कहा, "हां, आप पर ! मैं तो यह मानती हूं कि आप धर्म-अधर्म को समझनेवाले हैं, सारी दुनिया भी इसे मानती है। मैं यह भी जानती हूं कि महाराज रावण के इन और ऐसे राक्षसी कर्मों की निंदा आप करते रहते हैं। फिर भी आप इन सारी बातों को क्यों बरदाश्त कर लेते हैं और महाराज रावण को एक भी शब्द नहीं कह पाते ? ये बेचारी देवकन्याएं तो बोल नहीं सकतीं; बेचारी गंधर्व-कन्याएं भी बोल नहीं सकतीं; लेकिन ब्रह्मा के पास से धर्म की छाप लेकर लौटे आप भी यह सब चुपचाप क्यों देखते रहते हैं ?"

उत्तर में विभीषण ने कहा, "सरमा ! मेरे मन में अकसर यह बात उठती रहती है कि मैं महाराज को चेतावनी दूं। एक-दो बार मैंने उन्हें

चेताया भी है, पर महाराज इतने चतुर हैं कि वे मुझसे इसकी चर्चा ही नहीं करते। सारी लंका जानती है कि रावण सीता का हरण करके उसे यहां लाये हैं, पर आजतक राज-सभा में किसी दिन इसका जिक्र तक नहीं हुआ, अन्यथा जिस बात के साथ समूची लंका का हित-अनहित जुड़ा हुआ है, उसकी चर्चा राज-सभा में तो होनी ही चाहिए।"

सरमा बोली, "जब महाराज स्वयं राज-सभा में इस बात की चर्चा नहीं करते, तो आप इसे क्यों नहीं उठाते ? आप महाराज के भाई के नाते ही इस सुंदर महल में रहते हैं; महाराज के भाई के नाते ही राज-सभा में आपका आसन सबके आगे होता है; राक्षस मन-ही-मन आपसे कितने ही क्यों न नाराज हों, फिर भी बाहरी तौर पर महाराज के भाई के नाते वे आपका सम्मान तो करते ही हैं। अतः विभीषण ! क्या महाराज के भाई के नाते आपका यह धर्म नहीं है कि आप इस विषय में उन्हें सावधान करें ? विभीषण ! मैं सच कहती हूं; जब से सीता आयी है, तभी से मुझे तो लगने लगा है कि अब राक्षसों के दिन पूरे हो गये हैं। आपके साथ विवाह होने के दिन से आपने मुझे धर्म-अधर्म का अंतर समझने योग्य बनाया है; किंतु इस सीता को देखने के बाद तो मेरे अंतर की आंखें मानो खुल गयी हैं ! आप तो मुझे दो बात समझाते भी हैं। कभी-कभी मुझको शास्त्रों की बातें भी सुनाते हैं, पर यह सीता तो ऐसा कुछ भी नहीं करती। अगर कुछ करती है, तो मेरे पास बैठकर दो आंसू बहा लेती है, या दो बात अपने रामचंद्र की-कह लेती है। किंतु जब मैं उसे देखती हूं, तो मुझे इतना आनंद होता है, मानो मैं किसी दूसरी ही दुनिया में पहुंच गयी हूं ! विभीषण ! मैं उस दुबली-पतली सीता को देखती हूं और उसके आंसुओं को देखती हूं, तो मुझे लगने लगता है कि उसका एक-एक आंसू महाराज रावण के राज्य की जड़ को उखाड़ रहा है। विभीषण ! आपकी पुरुष-जाति को पता नहीं है कि हम स्त्रियों के आंसुओं में कितनी शक्ति छिपी पड़ी है।"

विभीषण ने कहा, "सरमा ! मैंने तो सीता को देखा नहीं है, लेकिन जब पहली बार तूने मुझसे उसकी बात की थी, तभी मैं समझ गया था कि वह कोई साधारण स्त्री नहीं है।"

सरमा बोली, "विभीषण ! मैं क्या बताऊं ? वह तो साक्षात् योग-

माया है। छड़ी-सा दुबला-पतला शरीर, बिलकुल रूखा केशपाश, शरीर पर एक ही पीला वस्त्र, ललाट पर पुँछा हुआ तिलक, और बड़ी-बड़ी आंखें। आज तो वह दुःख के कारण अधिक दुबली हो चुकी है, पर उसके चेहरे का तेज दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। जैसे अपने आसपास करोड़ों सियारों की भाग-दौड़ से सिंहनी का रोआं तक नहीं फड़कता, वैसे ही अपने चारों ओर फैली पड़ीं राक्षसियों के बीच मैंने कभी सीता के दिल को फड़फड़ाते नहीं देखा। उसके तेज को देखकर मुझे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि अकेली सीता ही समूची लंका को जला डालने में समर्थ है। पता नहीं, क्यों, किस विचार से, वह हमें शाप नहीं दे रही !"

विभीषण ने कहा, "सरमा! शाप देकर वह अपनी शक्ति क्यों गँवाए ? ऐसी सतियों पर अत्याचार करने वाले जितने शाप से मरते हैं, उसकी तुलना में अपने पाप से वे अधिक मरते हैं।"

सरमा बोली, "समझिए कि महाराज का भी यही हाल होगा। यदि आप उनके कल्याण में रुचि रखते हैं, तो आपको उनसे यह बात कहनी ही चाहिए।"

विभीषण ने पूछा, "और अगर वे न सुनें तो क्या किया जाय ?"

जवाब में सरमा बोली, "फिर भी आपको अपनी बात तो उनसेकहनी ही चाहिए। इस बात को कभी मत भूलिए कि जबतक आप लंका में हैं, तबतक महाराज के इन पापों में आप भी उनके भागीदार हैं। विभीषण! आप ही ने मुझे सिखाया है कि धर्म-अधर्म का भेद बहुत सूक्ष्म होता है।"

विभीषण ने कहा, "सरमा ! तेरी बात सच है। मुझे अपनी बात महाराज से अधिक स्पष्टता के साथ और अधिक कड़े शब्दों में कहनी चाहिए, और मैं कहूंगा भी; किंतु मैं उसके परिणाम को भी जानत हूं।"

सरमा बोली, "परिणाम की क्या चिंता करना !"

विभीषण ने कहा, "सुन, परिणाम यह होगा कि फिर हम लंका में रह नहीं सकेंगे।"

सरमा बोली, "आप महाराज से बात तो कीजिए। यदि बात न करेंगे, तो हम महाराज के और समूचे राक्षस-कुल के द्रोही बनेंगे। अगर बात

करने से ही हमें लंका छोड़नी पड़ती है, तो भले छोड़नी पड़े।"

विभीषण ने कहा, "मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं। धर्म के लिए यह भी होता हो, तो भले हो जाय। सरमा ! तेरी बात बिलकुल सच है।"

सरमा बोली, "विभीषण ! मेरी चिंता मत कीजिए। मैं समझती हूं कि ऐसे कठोर कदम उठाते समय पुरुषों को अपने प्यारे बाल-बच्चों का और स्त्री आदि का विचार परेशान कर डालता है, और इनके कारण पुरुष प्रायः दुनिया में अनेक प्रकार के अपमान भी सहन कर लेते हैं। विभीषण ! मैं सरमा शैलूष की बेटी हूं। मैं आपके साथ रही हूं और आपसे मैंने धर्म-बुद्धि भी प्राप्त की है। बेचारी सीता अयोध्या के महल छोड़कर रामचंद्र के साथ वन में रहती थी, तो फिर सरमा की अपनी क्या बिसात है ? विभीषण ! आपकी सरमा ऐसी कच्ची मिट्टी की नहीं बनी है कि लंका छोड़ने-भर से वह घुल जायगी। आप निश्चिंत रहिए और महाराज को सारी बातें सुना दीजिए। मैं तो आज ही लंका को जलती देख रही हूं। कौन जानता है कि हमारे नसीब में उस आग से बचना बदा है या कुछ और बदा है ? लेकिन लंका में महाराज पूरे जोर-शोर से राक्षसी कार्य करते चले जायं और सरमा-विभीषण दोनों यह सब चुपचाप देखते रहें और सुख की नींद सोयें, यह कैसे संभव है ? विभीषण ! इस उजाड़ वीरान में अकेले आप ही धर्म को उसके उग्र रूप में समझते हैं, इसलिए आपको तो उग्र धर्म का आचरण करना ही चाहिए। चलिए, अब हम सो जायं। भगवान ही जानता है कि कल का दिन कैसा बीतेगा !"

: ३ :

रावण का त्याग

हनुमान के लंका से जाने के बाद एक दिन रावण ने अपने सब मंत्रियों को इकट्ठा किया और शर्म के कारण नीची निगाह रखकर बोला, "प्यारे

राक्षसो ! एक मामूली वानर हमारी लंका में न केवल चला आया, बल्कि अशोक वन में पहुंच कर सीता से मिल लिया, उसने हमारे महल का शिखर तोड़ दिया राक्षसों को मार डाला और समूची लंका को हिलाकर वापस चला गया ! अपने इन कामों के कारण उस दुष्ट ने हम सबकी नाक काट ली। प्यारे राक्षसो ! अब हमें और किसी कारण नहीं, तो अपनी प्रतिष्ठा के कारण ही यह सोचना चाहिए कि इन वानरों का क्या किया जाय ?"

रावण की इन बातों को सुनकर राक्षस-मंत्री प्रणाम-पूर्वक बोले, "महाराज ! आपको खेद नहीं करना चाहिए। हमारी सेना कौन छोटी है ? आपने कुबेर को हराया है। आपने वासुकि और तक्षक को वश में किया है। आपने अनेक क्षत्रियों को मारकर उन्हें यमराज के यहां पहुंचाया है। महाराज ! आपको राम का विचार ही क्यों करना चाहिए ? आपका पुत्र इंद्रजित अकेला राम को मारकर सबकुछ ठिकाने लगा देगा।"

राक्षस मंत्रियों की ऐसी बातें सुनकर प्रहस्त नमस्कार-पूर्वक कहने लगा, "जब हम देव, दानव, गंधर्व, पिशाच, पतग, उरग आदि सब को मार डालने में समर्थ हैं, तो फिर इन आर्यों की क्या बिसात है ? रो-रोकर मर रहे दो क्षत्रिय बच्चों की गिनती ही क्या है ? हम सब तो विश्वास-ही-विश्वास में पड़े रहे, नहीं तो हनुमान बच्चा हमारे बीच से ज़िन्दा जाता ही कैसे ? बस, आप आज्ञा-भर कीजिए। मैं अकेला ही पृथ्वी पर से वानरों की जड़ खोद डालने में समर्थ हूं।"

प्रहस्त की इन बातों को सुनकर दुर्मुख बोला, "महाराज, हमें यह अपमान सहन नहीं करना चाहिए। आप इसी क्षण मुझे आज्ञा दीजिए। मैं अकेला इन वानरों को बीन-बीन कर मार डालूंगा।"

अभी दुर्मुख अपनी बात पूरी कर ही न पाया था कि इतने में क्रोध से लाल-सुर्ख बना वज्रदंष्ट्र बोला, "हम सब मूर्ख हैं। हम उस बेचारे हनुमान को भूल जायं। आप मुझे आज्ञा दीजिए। मैं अभी राम, लक्ष्मण, सुग्रीव तीनों का वध करके वापस आता हूं।"

फिर तो निकुंभ, महापार्श्व, महोदर, धूम्राक्ष आदि राक्षस क्रोध से लाल-पीले होते हुए अपने-अपने शस्त्रास्त्रों पर हाथ रखकर अपनी-अपनी

शक्ति का बखान करते हुए अभिमान-भरी बातें कहने लगे।

क्रोधवश अपने हथियारों को खड़खड़ानेवाले इन राक्षसों को चेतावनी देता हुआ विभीषण बोलने लगा, "महाराज रावण ! प्यारे भाइयो ! हम सब क्रोध से उत्तेजित हो उठे हैं। इस कारण हमारी बुद्धि भी भ्रमित हो चुकी है। जो हनुमान सौ योजन लंबे सागर को लांघकर यहां आया, उसकी अपनी शक्ति कितनी होगी, इसकी कोई कल्पना आप कर सकते हैं ? हमारे इतने बड़े चौकी पहरे के रहते भी वह लंका में घुसा, महाराज के सारे महल में आराम से घूमा, राक्षसियों की कड़ी निगरानी के बीच भी सीता से बात कर आया और हमारे इस नगर को सुलगाकर भाग गया—आपने कभी सोचा है कि इस हनुमान के पीछे कितनी बड़ी शक्ति है ? महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि राम ने कभी आपका कोई अहित किया है ? सच है कि राम ने खर और दूषण को मारा; लेकिन खर और दूषण अपनी मर्यादा तोड़कर व्यवहार करें और राम उन्हें मारें, तो इसमें उनका क्या कसूर ? महाराज ! मेरी बात आपको जहर की तरह कड़ुई लगेगी, फिर भी मुझे कहना चाहिए कि आप सीता को ले आये, इसके कारण आज सारी लंका में भय छा गया है। आप सीता को वापस सौंप दीजिए। सीता के समान एक छोटी-सी लड़की अपने विचार पर दृढ़ता से अड़ी हुई है, इससे हमें समझ लेना चाहिए कि उसके पीछे दूसरी कितनी शक्ति है। जैसा कि हम सब मानते हैं, मुझे राम और लक्ष्मण वैसे मामूली आदमी नहीं लगते। मैं तो देख रहा हूं कि यदि आपने सीता को वापस नहीं किया, तो वानर-सेना आपकी समूची लंका को नष्ट कर देगी। राम को उसकी स्त्री वापस सौंप दीजिए। महाराज ! आपके भाई के नाते मैं आपसे विनती करता हूं कि आप सीता को लौटा दीजिए। मुझ पर क्रोध मत कीजिए। मुझे तो स्पष्ट दीख रहा है कि सीता को लौटाने में ही हमारा और समग्र संसार का कल्याण है।"

विभीषण की ये बातें सुनकर सब क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गये। कोई कुछ बोल नहीं पाया। रावण भी चुपचाप उठकर चला गया। उसके बाद सब अपने-अपने घर चले गये।

सभा में रावण को ये सब बातें कहने के बाद विभीषण अपने घर गया,

पर उसे नींद नहीं आई। सारी रात वह सीता के, रावण के, अपने धर्म के, लंका के, राम के और ऐसी ही दूसरी बातों के बारे में सोचता रहा। इस विचार ने उसके मन में भारी उथल-पुथल मचा दी कि रावण के भाई के नाते, एक राक्षस के नाते, एक लंकावासी के नाते और एक मनुष्य के नाते, उसे क्या करना चाहिए। कुछ ही समय पहले सरमा ने जो बातें उससे कही थीं, उनके मर्म को वह अब अधिक समझने लगा।

सवेरा होते ही विभीषण रावण के महल में पहुंचा। रावण सोने के एक बड़े सिंहासन पर बैठा था। उसके आसपास बैठे ब्राह्मण वेद मंत्रों का घोष कर रहे थे। उसके निकट मंत्री बैठे थे। विभीषण ने अंदर पहुंचकर रावण को नमस्कार किया और रावण की आज्ञा पाकर बैठ गया। आज विभीषण रावण के सामने अपना हृदय उंडेल देने के लिए वहां पहुंचा था। विभीपण ने अत्यंत नम्रतापूर्वक किंतु उतनी ही दृढ़ता के साथ कहा, "महाराज! जब से आप सीता को लाये हैं, चारों ओर अमंगल के चिह्न दीख रहे हैं। होम के समय अग्नि को मन्त्र द्वारा विधिवत् प्रकट करने पर भी वह उतनी प्रज्वलित नहीं होती, जितनी होनी चाहिए; हमारी होमशालाओं में और पाठशालाओं में सर्प जब-तब दिखाई पड़ते हैं; हमारे आहुति-द्रव्यों को चींटियां खा जाती हैं; हमारी गायों का दूध सूख गया है; पशुओं को कितना ही क्यों न खिलाया जाय, उन्हें तृप्ति ही नहीं होती; ऊंट, गधे आदि मानो रोते ही रहते हैं; कौए कानों को न सुहानेवाली आवाज किया करते हैं; रात को सियार आदि पशु रोते रहते हैं। महाराज! इन सब अपशकुनों के निवारण के लिए आप सीता को वापस भेज दीजिए। महाराज! मेरे इस कथन में मेरा अज्ञान अथवा मेरी मूर्खता हो, तो उसके लिए आप मुझे क्षमा कीजिए। किंतु जिस चीज का मैं अनुभव कर रहा हूं अथवा जो मुझे दिखाई दे रही है, उसकी बात तो मुझे आपसे कहनी ही चाहिए। आप समूचे राक्षस-कुल के शिरछत्र हैं। आप राक्षसों के कल्याण की इन बातों पर अवश्य ध्यान दीजिए। आगे जैसी आपकी मरजी!"

विभीषण की ये बातें सुनकर रावण कुपित हो उठा। उसने कहा, "विभीपण! तुझे समझ लेना चाहिए कि रावण कौन है। रावण को किसी का डर नहीं। राम को सीता तीन काल में भी वापस नहीं मिलेगी। फिर

वह सारे देवों को अपने साथ लेकर भले ही लड़ने क्यों न आये।"

यों कहकर राक्षसराज रावण ने अपने सत्यवादी भाई विभीषण को अपने महल से बिदा कर दिया।

... ...

राक्षस मंत्रियों के अनेक उत्साहवर्धक शब्द सुनने के बाद भी रावण किसी निश्चय पर पहुंच नहीं पा रहा था, इसलिए इस बार उसने सब राक्षसों की परिषद् बुलाई। रावण ने अचानक समूची लंका में ढिंढोरा पिटवाया। अतएव राक्षस जहां थे, वहीं से अपना-अपना काम छोड़कर परिषद् में उपस्थित हो गये। मंत्री आये, उपमंत्री आये, पंडित आये, अमात्य आये, शूरवीर आये, डरपोक भी आये; इस सभा में शुक और प्रहस्त भी आये और राक्षसराज रावण का छोटा भाई विभीषण भी आया। एक बड़े सिंहासन पर बैठा रावण देवों के बीच इंद्र की भांति सुशोभित हो रहा था। उसने समूची परिषद् पर एक दृष्टि डाली और प्रहस्त से कहा कि वह ऐसी व्यवस्था करे, जिससे सभा में बाहर का कोई अजनबी आदमी न आ सके। जब प्रहस्त सारी व्यवस्था करके लौटा तो रावण कहने लगा, "मेरे सुख-दुःख में, मेरे लाभ-हानि के अवसरों पर, मेरे हित-अहित के समय में, मुझे क्या करना चाहिए, इस बात को आप सब मुझसे अधिक अच्छी तरह जानते हैं। आजतक कई अवसरों पर आप सबने मेरे लिए अपने प्राण न्योछावर किये हैं और मुझे विजयी बनाया है। जो बात मैं आज आपके सामने रखने जा रहा हूं, वह बहुत पहले ही रखनी थी, लेकिन कुंभकर्ण जागा नहीं था, इसलिए मैंने उसके जागने की बाट देखी। आज छह महीनों की अपनी लंबी नींद पूरी करके वह जागा है, इसलिए अब मैं अपनी बात रख रहा हूं।

"मैंने दंडकारण्य से राम की स्त्री का हरण किया है। तीनों लोकों में सीता के समान एक भी स्त्री नहीं है। उसका कटि-प्रदेश, शरद के चंद्रमा-सा उसका मुख-मंडल, उसके पैर के तलुए, उसके लाल-लाल नाखून, वासुकि के जैसी उसकी चोटी, इन सबको देखता हूं, तो मेरा मन विचलित हो उठता है। मैं सीता को बहुत आग्रह-पूर्वक कहता हूं, पर वह मेरी बातपर तनिक भी ध्यान नहीं देती। जब मैंने उस पर बहुत दबाव डाला, तो उसने मुझसे एक

वर्ष की अवधि मांग ली। उसके मोह में पड़कर मैंने उसे उतनी अवधि दे दी है। लेकिन अब तो मैं अपनी कामवासना के आगे बिलकुल लाचार हो गया हूं और सीता के साथ भोग भोगने के लिए आतुर हो उठा हूं।

"मैं मान नहीं सकता कि राम-लक्ष्मण सागर पार करके यहां आ सकेंगे, यद्यपि मैं अच्छी तरह जानता हूं कि एक वानर यहां आकर हमें हैरान कर चुका है। हमें देव, दानव, गंधर्व आदि किसी का भय नहीं रहा, तो आर्यों का भय तो हो ही क्यों? फिर भी आप सोचिए। आप सबके सहयोग से मैंने आजतक अनेक विजय प्राप्त की है। आज भी आप सबके सहयोग से मैं सीता को अपनी स्त्री बनाने की आशा रखता हूं। कोई सागर पार करके यहां आयेगा, यह बात मेरे गले उतरती ही नहीं; फिर भी आप सब विचार करके देखिए और ऐसा कोई उपाय खोज निकालिए, जिससे किसी भी हालत में मुझे सीता को लौटाना न पड़े।"

रावण की ये बातें सुनकर पहले तो कुंभकर्ण बहुत उत्तेजित हो उठा और उबल पड़ा, "महाराज! आप सीता का हरण करके लाये, उस समय आपने हममें से किसी को पूछा था? आज जब संकट में फँस गये हैं, तो हमारा सहयोग खोजने लगे हैं। महाराज! आप अपने को भाग्यशाली समझिए कि आप सीता को लेने गये तभी राम का बाण आपको नहीं लगा, नहीं तो आप दुबारा लंका देख ही न पाते।" कुंभकर्ण के ये शब्द सुनकर रावण क्रुद्ध हो उठा। इस पर कुंभकर्ण कहने लगा, "किंतु महाराज! आप तो अपने मन की कीजिए; राम-लक्ष्मण को तो मैं एक ही बाण से मार डालूंगा। फिर सीता आपकी बनकर रहेगी। आप तो कल ही से सीता को अपनी स्त्री बना लीजिए।"

कुंभकर्ण के ये वाक्य सुनकर रावण बोला, "भैया! तेरी बात तो ठीक है, किंतु मैं सीता के साथ बलात्कार नहीं कर सकता। यदि मैं ऐसा करूं, तो अपने शाप से स्वयं ही मर मिटूं। वैसे, यह तो निश्चित ही है कि राम-लक्ष्मण मेरे बाणों के सामने टिक नहीं सकेंगे।"

रावण के इन वाक्यों को सुनकर विभीषण ने कहा, "महाराज रावण; अत्यंत तीखी दाढ़ों वाले सीता-रूपी इस सर्प को यहां लाया कौन? इससे पहले कि अपनी दाढ़ों, नखों और पर्वतों के शिखरों का शस्त्रों के रूप में

उपयोग करनेवाले वानर आकर लंका को तहस-नहस करें, आप सीता को लौटा दीजिए। हमारे कुंभकर्ण और इंद्रजित, महापार्श्व और महोदर, कुंभ और निकुंभ कोई भी युद्ध में रामचंद्र के सामने टिक नहीं सकेंगे। आपकी रक्षा करने के लिए सूर्य आये चाहे इंद्र आये, यम आये या वायु आयें, रामचंद्र आपको जीवित नहीं छोड़ेंगे।"

विभीषण के ऐसे वचन सुनकर प्रहस्त कहने लगा, "हमें न देवों का भय है, न दानवों का; हम न यक्षों से डरते हैं, न गंधर्वों से और न सर्पों से; फिर व्यर्थ ही अपने मन में हम आर्यों का भय क्यों रखें ?"

प्रहस्त के ये वाक्य सुनकर विभीषण ने कहा, "प्रहस्त ! आपका और कुंभकर्ण का कहना यथार्थ नहीं है। मुझे साफ दिखाई दे रहा है कि हममें से कोई रामचंद्र का वध नहीं कर सकेगा। रामचंद्र के जीवन में धर्म का तेज है, अतः उसके सामने हम कोई टिक नहीं पायंगे। मैं महाराज रावण के चारों ओर सर्वनाश के बादलों को घिरता देख रहा हूं। आप सब आज महाराज को उलटा पाठ पढ़ाने में लगे हैं। महाराज की बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है, इस कारण उन्हें आपकी ग़लत सिखावन मीठी लग रही है और मेरे शब्द विष-जैसे लगते हैं। आप सबको अपनी-अपनी शक्ति का हद से अधिक गुमान है। पर आप यह जानते नहीं हैं कि आप सबसे कहीं अधिक शक्ति रामचंद्र में और उनके वानरों में है। अगर मेरा बस चले तो मैं आप सबको महाराज के पास से खदेड़ दूं, और सीता राम को लौटाकर महाराज का और राक्षस कुल का कल्याण करूं। लेकिन आज मैं क्या करूं ? महाराज की बुद्धि बहक चुकी है। इस कारण आज मेरी बातें उन्हें रुचती-जंचती नहीं हैं। मैं तो अब भी उनके पैरों पड़कर उनसे कहता हूं कि महाराज ! सीता राम को वापस सौंप दीजिए और राक्षसों को बचा लीजिए।"

विभीषण की ऐसी तीखी और कड़ुई बातें सुनकर इंद्रजित उछल पड़ा और बोला, "काका विभीषण ! डरपोकपन से भरी ये बातें आपको किसने सिखाई ? क्या इस समूचे राक्षस-समाज में एक ही आदमी सत्य, शौर्य और तेज से वंचित रहेगा ? जब हमारा कोई भी मामूली राक्षस राम-लक्ष्मण से निपट सकता है, तो फिर उनसे इतना डर क्यों ? मेरे

सामने स्वयं इंद्र को भी झुकना पड़ा था। ऐसी दशा में ये दो मामूली व्यक्ति हैं किस गिनती में ?"

मंदोदरी के पुत्र की ऐसी बातें सुनकर विभीषण बोला, "बेटा इंद्रजित, तू अभी बालक है। ऐसे गंभीर प्रश्नों के लिए तेरी बुद्धि अभी पकी नहीं है, इसीलिए तूने ऐसी बहुतेरी बातें बिना सोचे कही हैं, जो हमारा सर्व-नाश कर सकती हैं। इंद्रजित ! तू रावण का सच्चा पुत्र नहीं, बल्कि शत्रु है, क्योंकि तू उसका सर्वनाश करायेगा। तू मूर्ख बालक है, इसलिए यहां के विचार-विमर्श में जो तुझे आगे करते हैं, वे तो वध के योग्य हैं। यह बच्चों का कोई खेल नहीं है; इसमें तो समूचे राज्य और सारे समाज का हित-अहित छिपा है। इसलिए कहता हूं कि मूर्ख ! इसमें तेरा काम नहीं। हमारा काल तुम सबसे ये बातें कहलवा रहा है।"

विभीषण के इन वाक्यों को सुनने के बाद रावण कहने लगा, "विभीषण ! मुझे आज पूरा अनुभव हुआ कि भाई दुश्मन कैसे बन सकता है। तेरी ईर्ष्या का कारण यही है कि लोगों के बीच मेरी कीर्ति फैलती है, मेरा ऐश्वर्य बढ़ता है और मैं शत्रुओं के सिरों को अपने पैरों तले रौंदता हूं ? मेरी सबसे बड़ी भूल यही है कि मैंने तेरे-जैसे अनार्य को लंका में अपने साथ रखा। तेरे समान दुष्ट का तो वध करने से ही संसार का भला हो सकता है।"

रावण की ये बातें सुनकर विभीषण बहुत दुःखी हो गया। उसने कहा, "महाराज ! काल के गाल में फंसे लोग अपने हित की बातें सुन नहीं सकते। आपकी "हां" में 'हां' मिलानेवाले राक्षस-मंत्रियों जैसे लोग तो आपको बहुत मिल जायंगे, किंतु सुनने में विष की तरह कड़ुई होने पर भी अंत में मीठी सिद्ध होनेवाली बातें कहनेवाला विभीषण आपको कहीं देखने को नहीं मिलेगा। महाराज ! आपका कल्याण हो ! भगवान आपको सद्बुद्धि दे। आप इन राक्षसों के और समूची लंका के रक्षक बनें। इस सारे समाज में एक मैं ही आपकी आंख में खटकता हूं, इसलिए मैं जा रहा हूं। मेरे बिना भी आप सुखी हों !" यों कहकर विभीषण और उसके चार अनुयायी सभा छोड़कर चले गए।

: ४ :

लंका में राज्याभिषेक

राक्षसों के भारी संहार की खबर सुनकर कुंभकर्ण अत्यंत उत्तेजित हो उठा और वह वानरों का नाश करने के लिए चल पड़ा। उसके हृदय को इस समाचार से भारी आघात पहुंचा कि उसका अपना भाई रामचंद्र का साथी बन गया है। रण-क्षेत्र में पहुंचते ही वह जोर से पुकार उठा, "विभीषण, ओ विभीषण ! लंका के नए राजा ! मुझे तेरे दर्शन करने हैं। तू इस तरफ आ !"

कुंभकर्ण की ललकार सुनते ही विभीषण उसकी ओर दौड़ गया और बोला, "कुंभकर्ण ! देखो, यह मैं तुम्हारा विभीषण हूं। बड़े भैया ! मैंने भविष्यवाणी की थी कि सीता को लौटाया नहीं गया, तो सारे राक्षसों का संहार होकर रहेगा। अब रामचंद्र के इस प्रताप को आज तुम स्वयं देख लो।"

कुंभकर्ण से रहा नहीं गया। क्रोध से आकुल-व्याकुल होकर वह बोला, "दुष्ट, हत्यारे ! तूने विश्रवा के कुल को कलंकित कर दिया। सगे भाई को छोड़कर इस तरह दुश्मन के पास जाते हुए तुझे शर्म नहीं आई। तुझे अपने लिए ही लंका का मुकुट चाहिए था, तो तूने मुझसे उसी दिन क्यों नहीं कहा ? क्या स्वयं रावण तुझे लंका का मुकुट न देता ? रावण से कहा होता, तो वह तुझे किसी भी देश का राजा बना देता, तेरे चरणों में तीनों लोकों की लक्ष्मी लोटने लगती और अकेले राक्षस ही नहीं, देव भी तेरी सेवा में उपस्थित रहते ! राम ने तो तेरा अभिषेक समुद्र के खारे पानी से ही किया है न ? विभीषण ! लंका का मुकुट तो अभी बहुत दूर है। उस मुकुट की रक्षा करने के लिए हजारों राक्षस धड़ पर सिर रखकर खड़े हैं। विभीषण तूने बुरा किया !"

विभीषण ने कहा, "भैया ! मैंने तो आप सबको चेतावनी दी थी। लेकिन जब आपको खुलेआम अधर्म ही करना है, तो फिर आप मुझे दोष क्यों दे रहे हैं ? मैंने लंबे समय तक अधर्म का साथ दिया, पर जब अधर्म

मेरे लिए असह्य हो गया तो मैं हट गया।"

कुंभकर्ण कहने लगा, "बस, रहने दे, बड़ा धर्म की पूंछ बिना बैठा है ! तू तो जन्म से ही धर्म-अधर्म के बाट रखनेवाला बनिया ठहरा। रावण कैसा भी अधर्म क्यों न करे, आखिर वह तेरा भाई है और राम कितना ही धर्मात्मा क्यों न हो, तो भी वह तो दुश्मन ही है। यह आर्य हम राक्षसों से श्रेष्ठ हो ही कैसे सकता है ? हम राक्षस हैं। राक्षस जो भी कुछ करेगा हमारे लिए करेगा। तूने बड़ी गलती की। तेरे जैसे लोग ही राजाओं की छोटी-सी गलती को बड़ा करके दिखाते हैं, जिसका परिणाम सर्वनाश होता है। विभीषण तू तो भाग खड़ा हुआ, फिर भी देख, तेरी सरमा लंका में कितनी सुखी है ? इसी का नाम है भाई ! अब भी मौका है। तू इधर आ जा। रावण के हृदय में मैं तेरे लिए जगह कर दूंगा। तू कैसा भी क्यों न हो, तेरी शोभा राक्षसों के साथ रहने में है। आ भैया, वापस आ जा।"

विभीषण ने जवाब दिया, "कुंभकर्ण ! अब यह संभव नहीं। मैं रामचंद्र के साथ बंध चुका हूं। अब भी रावण सीता को सौंप दे, तो यह लड़ाई इसी क्षण बंद हो जाय और हम सबका विनाश रुक जाय।"

कुंभकर्ण बोला, "कुलांगार विभीषण ! अब तो सीता को लौटाने की सलाह मैं भी नहीं दूंगा। अब यह कुंभकर्ण रण-क्षेत्र में उतर आया है, तू जल्दी ही देख लेगा कि तेरे राम-लक्ष्मण की क्या गत होती है। मैं तु। पर तरस खाकर तुझसे ये बातें कह रहा हूं। याद कर ले कि एक बार तू बैठा-बैठा अपने मूर्च्छित राम-लक्ष्मण पर पंखा झल रहा था। उस समय तो वे जी उठे थे, लेकिन अब तू उनकी आशा छोड़ दे। तूने इन शत्रुओं को युद्ध की हमारी युक्ति-प्रयुक्तियां बता दी हैं, इसीलिए यह लड़ाई इतनी लंबी चली है, नहीं तो राम-लक्ष्मण कभी के स्वधाम पहुंच चुके होते और रावण सीता के साथ विहार करता होता। जा, दुष्ट विभीषण ! जा ! अपने राम को मेरे सामने भेज दे।" यों कहकर कुंभकर्ण वानरों पर टूट पड़ा और वानर भागदौड़ करने लगे।

... ...

आखिर रावण का अन्त हुआ। रावण के सब मंत्री तो बहुत पहले ही मर चुके थे। रावण का प्यारा पुत्र भी स्वर्ग सिधार चुका था। कुंभकर्ण

के लिए तो अब छह महीनों के बाद नींद से जागने का सवाल ही नहीं रहा था। रावण के अन्त के साथ राक्षसों का अंतिम आधार भी चला गया।

रावण की मृत्यु का समाचार मिलते ही विभीषण दोड़ा और वहां पहुंच गया, जहां रावण का शरीर पड़ा था। उसकी आंखों से आंसुओं की धारा बह चली। क्षणभर के लिए उसका मन विह्वल हो उठा। उसकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। वह अचानक बैठ गया। वह अपने को रोक न पाया। बोला, "महाराज! अपनी इस मृत्यु से आप कितने शोभित हुए हैं ? रावण, भैया ! आपने मेरी बात नहीं मानी, योगमाया सीता को आप पहचान नहीं पाये। आप यह भी न समझ पाये कि राम कोई साधारण मनुष्य नहीं, बल्कि युगपुरुष हैं। रावण ! गोकर्ण पर्वत पर आपने कहा था कि इन वरदानों ने हमें एक-दूसरे से अलग किया है। आज आपकी वह बात सच साबित हुई। भैया ! जिस समय रामचंद्र ने मेरा राज्याभिषेक किया था, उस समय मेरे मन में जो हर्ष प्रकट हुआ था, वह आज लुप्त हो चुका है। मैं इस कल्पना-मात्र से चौंक रहा हूं कि राजमुकुट कितना वजनदार होता है। महाराज, इन राक्षसों को मैं कल्याण के मार्ग पर किस प्रकार ले जा सकूंगा ? धर्म और कल्याण की बातें करना तो आसान है, धर्म की अवज्ञा करनेवालों की टीका करना भी आसान है, पर जुए में जुतकर धर्मानुसार राज्य चलाना बहुत कठिन है। भैया ! इस दुनिया के मुझ-जैसे छोटे भाइयों को इस बात का भान हो जाय तो दुनियादारी के अनेकानेक झगड़े-झंझट कम हो जायं। जबतक राज्य नहीं मिलता, तभी तक उसका मोह मीठा लगता है। मिलने के बाद क्या होता है, इसका पता तो राजा ही दे सकते हैं। कोई उनसे पूछकर तो देखे।"

राम की ओर देखकर विभीषण ने कहा, "महाराज ! रावण का त्याग करके आपकी शरण में आते समय मुझमें जो भी स्वार्थ-बुद्धि रही हो, उस सबको भैया के चरणों में रखकर मैं मुक्त होना चाहता हूं। मुझे लंका का राज्य नहीं चाहिए। भाई के रक्त से सना यह राज्य विभीषण के लिए हराम है। महाराज ! लक्ष्मण के मूर्च्छित होने पर आप कितने घबरा गये थे ? रावण कैसे भी क्यों न रहे हों, आखिर थे तो मेरे बड़े भाई ही। हमने एक साथ तपश्चर्या की। श्लेष्मातक वन में हम साथ-साथ खेले-कूदे।

किसी अतर्क्य प्रारब्ध-योग के कारण उन्हें सीता का हरण करने की बात सूझी और उसी के कारण उनका अंत हुआ। रामचंद्र ! मेरा दिल बैठा जा रहा है, हम तीन थे। आज मैं अकेला ही रह गया !"

रामचंद्र बोले, "विभीषण ! व्यर्थ का शोक मत करो। अब रावण का जो उत्तर-कार्य करना है, सो कर लो। इन सारे राक्षसों को और रावण की स्त्रियों को शांत करो—उन्हें ढाढस बंधाओ। संकट के समय में धीर पुरुष अपनी बुद्धि स्थिर रखते हैं।"

इसके बाद विभीषण ने मंदोदरी आदि को आश्वस्त किया। रावण का उत्तर-कार्य संपन्न किया और लंका की कामचलाऊ व्यवस्था खड़ी करके वह रामचंद्र के साथ अयोध्या जाने के लिए निकल पड़ा।

जिस तरह कोई जादूगर अपनी बाजी समेटता है, उसी तरह रामचंद्र ने अपनी बाजी समेटनी शुरू की। सीता तो बहुत पहले चली गई थीं। लक्ष्मण ने भी वही रास्ता अपनाया था। दिव्य अस्त्र और तूणीर बिदा हो चुके थे। अंत में रामचंद्र स्वयं महाप्रस्थान के लिए तैयार हुए और सब सरयू के किनारे इकट्ठे हो गये। भरत साथ में जाने को तैयार हुआ; शत्रुघ्न वायुवेग से आ पहुंचा; सुग्रीव भी मौजूद था; हनुमान भी राम की आज्ञा की प्रतीक्षा में छिपकर बैठा था; विभीषण भी राक्षसों को लेकर आ पहुंचा था।

रामचंद्र ने अपनी आंखों के संकेत से विभीषण का स्वागत करते हुए कहा, "राक्षसराज ! आपको पीछे रहना है। आप इन राक्षसों में आर्य संस्कृति का प्रचार कीजिए। समझ लीजिए कि मेरे साथ जानेवाले जितने भाग्यशाली हैं, उससे अधिक भाग्यशाली वे हैं, जो मेरी इच्छा को सिर-माथे चढ़ाकर पीछे रहनेवाले हैं। मैं भली-भांति जानता हूं कि आपके और हनुमान के समान साथियों के लिए पीछे रहना कितना कठिन है। फिर भी मैं कहता हूं कि आप रुकिए। राक्षसराज ! जाइए, सुखी रहिए।"

ऐसा कहकर रामचंद्र अयोध्या की प्रजा के साथ ऊर्ध्व गति को प्राप्त हुए। उधर विभीषण ने लंका पहुंचकर वहां का अपना राज्य संभाला।

लोग कहते हैं कि आज भी विभीषण लंका में राज कर रहा है। □

मंदोदरी

: १ :

मनोव्यथा

अशोक वन के एक चबूतरे पर चढ़ते-चढ़ते मंदोदरी बोली, "भाई विभीषण ! मेरे पिता मय दानव को तो आप अब अच्छी तरह पहचानते हैं। जब मेरी मां हेमा हमें छोड़कर स्वर्ग सिधारी, तो मेरे लालन-पालन का भार पिता के सिर आ पड़ा। विभीषण ! माता की शीतल छाया के अभाव में पिता के प्रतापी वातावरण में पल-पुसकर बड़ा होना लड़की के लिए कितना कठिन होता है, इसकी कल्पना आज भी मुझे पागल बना देती है। जैसे-जैसे मैं सयानी होती गई, मेरे पिता की चिंता बढ़ने लगी। उन दिनों पिता की इस चिंता को मैं समझ नहीं पाती थी। हृदय का अमृत पिलाकर पाली-पोसी पुत्री को जीवन में प्रतिष्ठित करने की चिंता माता-पिता के मन को किस प्रकार मथ डालती है, इसे मैं आज समझ रही हूं।"

चबूतरे पर बिछे रत्नजटित आसन पर बैठते-बैठते विभीषण ने कहा; "मंदोदरी ! इस आसन पर बैठिए। आज लंबे समय के बाद हम मिले हैं, तो निश्चित भाव से थोड़ी बात कर लें।"

मंदोदरी बोली, "मैं भी आपके साथ बात करने का अवसर खोज ही रही थी।"

विभीषण ने पूछा, "तो अब अपनी बात आगे चलाइये। बड़े भैया के साथ आपका मिलाप वन में ही हुआ न ?"

मंदोदरी बोली, "हां, वन में ही हुआ। मेरे पिता मुझे अपने साथ लेकर मेरे लिए पति की खोज करने निकले। उस समय आप तीनों भाई ब्रह्मदेव से वरदान प्राप्त करके गोकर्ण से लौटे थे।"

विभीषण ने कहा, "मंदोदरी ! उस समय तो लंका हमारे हाथ में आ चुकी होगी।"

मंदोदरी बोली, "हां, मैं भूली। अपने बड़े भाई कुबेर को लंका से

निकालने के बाद महाराज वन में घूम रहे थे तभी मेरे पिता ने उन्हें देखा था। यह उस समय तो उनके मुख पर तपश्चर्या का तेज था; उनकी आंखें रह-रहकर हृदय की ओर झुकती-सी लगती थीं; उनकी वाणी में नाम-मात्र की कठोरता थी; हृदय में थोड़ी कोमलता थी।"

विभीषण ने कहा, "सब ब्रह्मदेव की कृपा समझिए !"

मंदोदरी बोली, "मेरे पिता ने महाराज से उनका नाम, गोत्र आदि पूछ लिया और मानो अपने सिर का भार ठीक-ठिकाने उतार रहे हों, इस भाव से उन्होंने मेरा हाथ महाराज के हाथ में सौंप दिया।"

विभीषण ने पूछा, "मंदोदरी ! सच कहिए, उस समय बड़े भैया के साथ जुड़ना आपको अच्छा लगा था या नहीं ?"

मंदोदरी बोली, "भैया ! सच कहूं ? पहले तो महाराज की प्रचंड काया, काल-सी आंखें और कलेजे को चीरने वाली चाल देखकर मैं सहम गई; लेकिन बाद में मेरे पिता ने आपके कुल की, ब्रह्मा के साथ आप लोगों के संबंध की और आप सबके वरदानों आदि की बातें मुझसे कहीं, तो मैंने अपने मन को मना लिया। किंतु विभीषण ! सच कहती हूं, यदि उस समय मेरी मां होती, तो मेरे शरीर के रोंगटों को देखकर वह समझ जाती और मेरा ब्याह न करती। लेकिन यह तो अब भूतकाल की बात हो चुकी। महाराज के साथ मेरा विवाह हुआ और मैं लंका की पटरानी बनी।"

विभीषण ने कहा, "मंदोदरी ! आप आज भी पटरानी ही हैं।"

मंदोदरी बोली, "सच है। विभीषण ! उन दिनों मैं जानती नहीं थी कि पटरानी का मतलब क्या होता है। उस समय तो लंका के ये महल और पटरानी के मुकुट में लगे हीरे-मानिक ही मेरी आंखों के सामने चमक रहे थे, उन्हें चौंधिया रहे थे। लेकिन भैया! आज मैं समझ पा रही कि हूं ये कि महल, यह मुकुट, ये हीरे-मानिक, ये नौकर-चाकर, यह वैभव, सबकुछ खोखला है। यदि लंकापति मुझे अनुमति दें, तो इस त्रिकूट पर्वत के शिखर पर चढ़कर मैं आज सारे संसार को पुकार कर सुनाऊं और दुनिया की सारी स्त्रियों से कहूं कि बहनो ! बाहरी वैभव के जाल में फँसकर रूखा जीवन जीने की अपेक्षा एक साधारण पुरुष के साथ अपना जीवन जोड़ो और गरीब-परिवार में प्रेमपूर्वक मोटा-झोटा पकाकर और खाकर सुख से रहो !"

विभीषण ने कहा, "मंदोदरी ! पटरानी बनने पर आपको यह अनमोल अनुभव मिला। सारी दुनिया तो पटरानी बनने के लिए औंधे सिर तप करती है। जब महाराज के साथ आपका ब्याह हुआ, उस समय तो आपने भी अपने मन में न जाने क्या-क्या मनोरथ रचे होंगे ?"

मंदोदरी कहने लगी, "विभीषण ! देखो, यह चंद्रमा सिर पर आ चुका है। इसे साक्षी रखकर कह रही हूं, जब हम लंका में आये, तो मेरे कान पर महाराज की विद्वत्ता, महाराज की कीर्ति, महाराज के पराक्रम आदि की वातें इतने जोर से टकराने लगीं कि कुछ पूछो मत ! लंका के अंदर और लंका के बाहर मैं जहां कहीं भी नजर दौड़ाती थी, हर जगह मुझे महाराज के पराक्रमों के ही दर्शन होने लगते थे। किंतु विभीषण ! आपको अपना भाई मानकर मैं कहती हूं कि मैं जिस दिन लंका में आई, उस दिन से लेकर आज की घड़ी तक महाराज मेरे दिल की गहराई में पहुंचे ही नहीं हैं। मैं उन्हें अपने हृदय में धारण करने के लिए बहुत हाथ-पैर पटकती हूं, किंतु पता नहीं क्यों, वे मेरे उस सिंहासन पर बैठते ही नहीं। महाराज की शक्ति, उनके पराक्रम, उनका दिग्विजय, सबकुछ कितना ही अच्छा क्यों न हो, पर मेरे मन में इन सबके प्रति घृणा का ही भाव जागता है। भैया ! मैं तो स्त्री की जाति में जन्मी हूं। आप पुरुष अपनी शक्ति का जो गलत उपयोग करते हैं, उसे हम कैसे सहन करें ? आज महाराज अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके सारे संसार को त्रस्त कर रहे हैं, मेरे मन में इसकी गहरी चुभन है।"

विभीषण बोला, "मंदोदरी ! आपकी बात सच है। हम राक्षस लोग स्वभाव ही से शक्ति के उपासक रहे हैं।"

मंदोदरी ने कहा, "किंतु शक्ति तो जगदंबा है। जगदंबा के उपासक जगदंबा के बालकों पर ही अत्याचार करें और जगदंबा उन्हें सहन करती रहे, यह एक बड़ी अटपटी-सी बात है।"

विभीषण बोला, "मंदोदरी ! प्रश्न यही है कि शक्ति का अर्थ जगदंबा है या रणचंडी ? राक्षस जगदंबा के उपासक नहीं, वे उपासक तो रणचंडी के हैं।"

मंदोदरी कहने लगी, "विभीषण ! महाराज चाहें, तो दुनिया के दुष्ट

लोगों को दंड देकर वे संसार की संस्कृति की रक्षा कर सकते हैं; महाराज चाहें, तो संसार के अत्याचारियों को ठिकाने लगाकर गरीब और पीड़ित लोगों को शक्ति दे सकते हैं; महाराज चाहें, तो आज जो पुरुष सारी दुनिया की स्त्रियों को सताने में लगे हैं, उनसे उन्हें छुड़ा सकते हैं और स्त्रियों को उनकी दिव्यशक्ति का भान करवा सकते हैं। विभीषण ! महाराज चाहें, तो संसार के सारे पाखंडों को नष्ट-भ्रष्ट करके वे सत्य की और शांति की स्थापना कर सकते हैं।"

विभीषण ने कहा, "लेकिन मंदोदरी ! महाराज यह सब स्वयं चाहें, तब न ! महाराज यही सब चाहने लग जायं, तो उसका अर्थ यह होगा कि हम राक्षस न रहकर आर्य और देव बन जायं !"

मंदोदरी बोली, "यही नहीं, हम सच्चे मनुष्य बनें। मैं दानव पुत्री हूं, फिर भी यह समझ सकती हूं कि मनुष्यको क्या शोभा देगा और क्या नहीं। महाराज प्रतिदिन किसी-न-किसी प्रदेश को उजाड़ कर आते हैं और अपने भोग-विलास के लिए वहां की बहन-बेटियों को पकड़ लाते हैं, यह देखकर मेरा कलेजा फटने लगता है। विभीषण ! जब आप लोगों ने तपश्चर्या करके शक्ति प्राप्त की, तो उस शक्ति का अच्छा उपयोग करने की वृत्ति क्यों नहीं मांगी ? क्या आप यही मानते हैं कि आप में शक्ति के आते ही उसका उपयोग करने की शुभ वृत्ति भी आ जाती है ? शक्तिशाली बनकर संसार को सताने के लिए निकल पड़ने के बदले क्या यह अधिक अच्छा नहीं कि हममें शक्ति ही न हो ? हम राक्षस अपनी शक्ति से संसार को कितना त्रास पहुंचा रहे हैं, क्या महाराज के मन में कभी इसका विचार तक नहीं जागता ?"

विभीषण ने कहा, "मंदोदरी ! उनके मन में ऐसा विचार जागे कैसे ? शक्ति के उपासक शराब पीकर उपासना का आरंभ करते हैं, इस कारण विचार के द्वार तो पहले से ही बंद हो जाते हैं। मनुष्य विचार करता चले, क्रिया करता चले, और फिर विचार करे, तो क्रिया से विचार की और विचार से क्रिया की सफाई होती रहे और दोनों एक-दूसरे को दृढ़ बनाते रहें। किंतु जब शक्ति का नशा चढ़ता है, तो अंदर से विचार डंक मारता है, इसलिए शक्ति के उपासक विचार को ही समूचा दबा देते हैं और नशे

के जोर में वड़े वेग से क्रिया करते रहते हैं। मंदोदरी ! सच तो यह है कि शक्ति की उपासना करने योग्य ही नहीं हैं। मनुष्य सबके कल्याण की उपासना करने लगे, तो उसमें से शक्ति अपने आप ही आ जाती है। लेकिन जब हम शक्ति की उपासना करते हैं, तो शक्ति हमारे अधीन रहने के बदले हमारे सिर पर चढ़ बैठती है और फिर जैसे उसका जी चाहे, वह हमें नचाती रहती है !"

मंदोदरी बोली, "विभीषण ! आपकी ये बड़ी-बड़ी बातें तो मैं क्या समझूं ? पर मुझे इसका परिणाम अच्छा नहीं लग रहा। इन देव-दानव-गंधर्व-कन्याओं के आंसुओं को इकट्ठा किया जाय, तो उनसे एक बड़ा महा-सागर भर जाय। भले ही ये सारे आंसू आज महाराज के तप से सूख जाते हों, किंतु मेरे मन में तनिक भी शंका नहीं है कि एक दिन ये आंसू लंका की नींव को इस तरह उखाड़ फेंकेंगे कि हम कोई समझ ही नहीं पायेंगे। आज तो महाराज के बल के सामने निर्बल दीखने वाली ये बहन-बेटियां कुछ बोल नहीं पाती हैं, लेकिन आप निश्चय मानिए कि एक दिन इनके हृदय की आग हमारी समूची लंका को सुलगा देगी।"

विभीषण ने पूछा, "मंदोदरी ! क्या आप कभी महाराज को ये बातें कहती हैं ?"

मंदोदरी बोली, "कई बार कह चुकी हूं, और बराबर कहती ही रहती हूं, इस कारण तो मैं अधिक अप्रिय बन गई हूं। महाराज तो मुझसे कहते हैं, 'तू मेरी विजय सह नहीं सकती, इसलिए मुझसे ईर्ष्या करती है।' इधर कुछ समय से तो महाराज मेरे महल में भी नहीं आते। मैं दानव-कन्या हूं, फिर भी मेरी मां ने अपने दूध के साथ मुझे ऊंची मानवता पिलाई है, इस कारण महाराज का यह राक्षसी व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगता।"

विभीषण ने कहा, "देवि मंदोदरी ! आपके विचार यथार्थ हैं, किंतु मुझे नहीं लगता कि महाराज अपना मार्ग छोड़कर कोई नया मार्ग अपना सकेंगे ! अंतःकरण का अधिकार पुष्ट होने से पहले जिन लोगों के हाथ में सत्ता आ जाती है, वे लोग अपने अंदर से उत्पन्न होनेवाले नियंत्रण के अभाव में बहक जाते हैं, और जिस तरह बे-लगाम घोड़ा अपने सवार को गिराकर उसे धूल चटा देता है, उसी तरह ऐसी निरंकुश शक्ति मनुष्य

का सत्यानाश कर देती है। मंदोदरी ! खूबी यह है कि जब यह बे-लगाम घोड़ा उन्मत्त होकर दौड़ता है, तो सवार को ऐसा आनंद होता है, मानो वह स्वयं हवा में उड़ रहा हो। बेचारे को पता ही नहीं रहता कि वह स्वयं पूरे वेग से गहरी खाई की ओर धंसा जा रहा है ! बड़े भैया आज विनाश के मार्ग पर निकल पड़े हैं। शुरू-शुरू में उनके दिल में जो थोड़ी-सी कोमलता थी भी, वह आज विजय के मद में लुप्त हो चुकी है। आज तो अहंकार के नशे-ही-नशे में वे न जाने कहां जा रहे हैं !"

मंदोदरी बोली, "विभीषण ! मैं कोई भविष्यवेत्ता तो हूं नहीं, पर मैं अनुभव कर रही हूं कि मेरे पैरों तले की यह जमीन महाराज के विनाश की कामना कर रही है। आज इस अशोकवन में हम दो को छोड़कर तीसरा कोई है ही नहीं। किंतु विभीषण ! मैं यह देख रही हूं कि मानवी माता की कोख से जन्मी उसकी कोई बेटी महाराज की वज्र-सी कठिन छाती में अपना छुरा भोंक रही है। आपको कुछ भी क्यों न लगता हो, लेकिन क्या आप यह मानते हैं कि इन पीड़ित कन्याओं के चीत्कार को इस विश्व में कोई भी नहीं सुनेगा ? भले रावण उसे न सुनें, विभीषण न सुनें, कुंभकर्ण न सुनें, एक यह मंदोदरी भी भले ही उसे न सुने, किंतु विभीषण ! बिना कान की होते हुए भी असंख्य कानों वाली जो एक शक्ति इस संसार में मौजूद है, वह इन चीत्कारों को आज भी सुनती है, और मुझे विश्वास है कि उसका सुना कभी व्यर्थ नहीं जाता। आप महाराज के सगे भाई हैं। महाराज के दिल में आपका हित है। लंकापति के प्रति आपका इतना कर्त्तव्य है। इसलिए आप महाराज के कान तक ये सारी बातें पहुंचाइये और महाराज को, हमारे समूचे कुल को और लंका को सर्वनाश से बचा लीजिए।"

विभीषण ने कहा, "जैसी मंदोदरी की आज्ञा ! मैं महाराज को एक बार फिर कहूंगा। किंतु मंदोदरी ! यह आशा मत रखो कि महाराज मेरी बात मान लेंगे।"

मंदोदरी बोली, "आशा क्यों न रखूं ? किसी तरह महाराज समझ जायं और लोगों को सताना छोड़ दें, तो इसमें मैं अपना और आपका ही नहीं, बल्कि समूचे संसार का कल्याण देख रही हूं।"

इस तरह बातचीत करते हुए दोनों चबूतरे पर से नीचे उतरकर लंका की ओर जाने लगे, तभी पीछे एक पेड़ पर से किसी पक्षी की अमंगल चीख सुनाई पड़ी, और जब वे लंका के दरवाजे पर पहुंचे, तो वहां एक उल्लू वातावरण को कंपानेवाली तीखी आवाज में बोल उठा।

: २ :

अरण्यरुदन

राजमहल के एक आलीशान कमरे में रावण एक गद्देदार पलंग पर पड़ा था। लगता था मानो मदमाते सांड के कंधे-जैसी उसकी गरदन पर दस सिर तनकर उग निकले हों ! रावण की छाती और दोनों भुजाओं पर सुगंधित केसर का लेप लगा था। दोनों पलकों के बीच उसकी लाल-लाल आंखें चकरी की तरह घूम रही थीं। उसके सिर का मुकुट पलंग पर बैठी एक गंधर्व-कन्या की गोद में पड़ा चमक रहा था। पलंग के आसपास अनेक वंदी कन्याएं हाथ में लाल अमृत की प्याली लेकर खड़ी थीं। महाराज रावण किसी के हाथ से प्याली लेता, किसीके गाल पर हलकी चपत लगाता, किसी के कर्ण-पल्लव संवारता और किसी को आंख के इशारे से समझाता हुआ मदमस्त हाथी की भांति क्रीड़ासक्त बना था।

इसी बीच मंदोदरी वहां अचानक आ पहुंची। मोटे तौर पर रिवाज यह नहीं था कि ऐसे समय मंदोदरी रावण के पास पहुंचे। तिस पर आज तो बिना किसी प्रकार की खबर दिये ही मंदोदरी आ पहुंची थी, इसलिए सबको थोड़ा-बहुत क्षोभ भी हुआ ! वंदी कन्याओं ने अपने-अपने वस्त्रों को संभाला और शरीर के अवयवों को थोड़ा ठीक किया। रावण अचानक ही पलंग पर उठ बैठा और जिस कगार पर स्वयं खड़ा हो, उसी को अपने सींगों की ताकत से तोड़ने में लगे मदोन्मत्त सांड की-सी हुंकार करता हुआ बोला,

"मंदोदरी ! ऐसे कुसमय में तुम इस महल में क्यों आई हो ? क्या रावण के महल की साधारण शिष्टता का भी पालन तुम नहीं करोगी ?"

मंदोदरी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, "महाराज ! मुझे क्षमा कीजिए। इतने वर्षों में कभी, किसी समय आई हूं ? किंतु आज तो दिल हाथ में नहीं रहा, इसलिए आवेश में दौड़ी चली आई।"

रावण ने पूछा, "अच्छी बात है। कहो, अचानक ऐसा कौन-सा काम निकल आ गया कि यों दौड़कर आना पड़ गया ?"

मंदोदरी बोली, "महाराज ! इन कन्याओं को यहां से विदाकर दीजिए। मुझे आपसे एकांत में बात करनी है।"

रावण ने कहा, "ये बेचारी कन्याएं भले न यहां रहें, पर देवि ! आज रावण ऐसी स्थिति में पहुंच चुका है कि अब जीवन की कोई भी क्रिया उसके लिए गोपनीय रही ही नहीं है। कुछ बातों को गोपनीय रखना और अमुक कुछ बातों को ही प्रकट करना, डरपोक लोगों की इस नीति को अब रावण ने ठुकरा दिया है।"

मंदोदरी बोली, "किंतु महाराज ! मेरा ध्यान रखकर आप इन बहनों को यहां से जाने की अनुमति दे दीजिए।"

रावण ने कहा, "अच्छी बात है। तुम सब पास के कमरे में चली जाओ। देवी तो कुछ ही देर में लौट जायंगी।" और सारी कन्याएं उठकर चली गईं।

रावण अपने पलंग पर अधिक स्वस्थ होकर बैठा, और मंदोदरी पलंग पर रखे मुकुट को अपनी गोद में लेती हुई पास जाकर बोली, "महाराज ! आपने यह सब क्या कर रखा है ?"

रावण मूंछों में हँसता हुआ बोला, "क्यों मंदोदरी ! आज तुम यह नया तूफान कहां से ले आई हो ?"

मंदोदरी ने कहा, "लंकापति ! आजतक आप हजारों देव-दानव-गंधर्व-कन्याओं को पकड़कर लाये हैं और आप जानते हैं कि उनके दिलों की आहों से सारी लंका जल रही है।"

रावण बोला, "मंदोदरी, सच है कि मैं इन कन्याओं को लाया हूं। यह भी सच हो सकता है कि शुरू-शुरू में इन्हें अच्छा न लगा हो। लेकिन ये अपने

दिल की जलन प्रकट करती हैं और उससे मेरी नगरी जल रही है, यह तो मात्र बकवास है। उलटे, ये सब तो मेरे पास दौड़ी आती हैं, मुझसे झूम जाती हैं और लंकापति के साथ रस की बहार लूटती हैं।"

मंदोदरी ने पूछा, "महाराज ! तो क्या मैं झूठ बोल रही हूं ?"

रावण ने भृकुटि तानकर कहा, "एक बार नहीं, बल्कि हजार बार झूठ। मंदोदरी ! तुम कैसी भी क्यों न हो, आखिर मय दानव की पुत्री हो न ! तुम्हारी हैसियत तो छोटी ही मानी जायगी। त्रिभुवन को जीतकर सारे ब्रह्मांड को कंपानेवाले रावण की कल्पना ही तुम भला कैसे कर सकती हो ? ऐसे रावण की पटरानी का मुकुट तुम्हारे लिए अपेक्षाकृत अधिक वजनी है। इसी कारण तुम दु:खी रहा करती हो।"

मंदोदरी बोली, "राक्षसराज, आप इस तरह मेरी अवगणना नहीं कर सकते। मेरी मां हेमा तो इंद्र की अप्सरा थी। मेरे पिता ने सारे संसार की बड़ी-बड़ी राज-सभाओं की कल्पना की है, और राक्षसराज के नाते आपके घर-दरवाजे सारे संसार का साम्राज्य आ जाय, तो उस साम्राज्य की जिम्मेदारी को भी पूरा करने की तैयारी आपकी इस मंदोदरी में है। किंतु लंकापति ! इस संसार का आपका यह सारा साम्राज्य अब तो समाप्त होने जा रहा है। इसलिए मैं आई हूं।"

रावण ने कहा, "मंदोदरी ! तुम कितनी मूर्ख हो ? संसार के देश एक के बाद एक मेरे दरवाजे आते जा रहे हैं; सारे प्राकृतिक बल एक के बाद एक मेरे अधीन होते जा रहे हैं; अग्नि, वरुण, सूर्य आदि देव मेरे घर में नौकर की तरह रहकर काम कर रहे हैं, और जब तीनों लोकों की ये ललनाएं मुझे खोजती हुई मेरे पास आती हैं, ऐसे समय तुम कह रही हो कि मेरा साम्राज्य समाप्त होने जा रहा है ! देवि ! तुम रावण के पराक्रम को सहन नहीं कर पा रही हो और जिस रावण की तुम मालकिन रहीं, वही रावण आज दूसरी स्त्रियों के साथ उठता-बैठता और विहार करता है, इससे तुम्हारी आंखों में जहर उतर आया है।"

मंदोदरी बोली, "महाराज ! जिस बात को एक साधारण आदमी सरलता से समझ सकता है, उसे भी आप उलटे ढंग से समझते हैं, इसे मैं अपना दुर्दैव मानती हूं ! आप विद्वान हैं, पराक्रमी हैं, तपस्वी हैं, इसलिए

आप चाहें, तो पलक मारते सबकुछ समझ सकते हैं और सारे संसार के लिए आशीर्वाद-रूप बन सकते हैं। किंतु पता नहीं क्यों, आपको अपना धर्म सूझता ही नहीं है।"

लंकापति ने सहज ही क्रोधित होकर कहा, "मंदोदरी ! अब अति हो रही है। मैंने तुमसे कई बार कहा है कि तुम्हें धर्म की ये सब बातें मुझसे नहीं कहनी चाहिए। धर्म का सारा पाखंड मैंने तुम्हें और विभीषण को सौंप दिया है। मैंने बहुत दुनिया देखी है। धर्म की और विश्व-कल्याण की बातें करनेवाले अपने दिलों में कैसी-कैसी छुरियां छिपाकर रखते हैं, सो मैंने बड़ी-बड़ी देवसभाओं में प्रत्यक्ष देखा है। मंदोदरी ! तुम धर्म के नाम से मुझे मत डराओ। तुम्हारा यह रावण अब इतना नादान नहीं रहा कि इन बातों से डर जाय।"

मंदोदरी बोली, "महाराज ! इसमें डरने की कोई बात है ही नहीं। लेकिन आज मैं आपसे यह कहने आई हूं कि अगर आप मानते हैं कि जो कुछ आप कर रहे हैं, सो ठीक ही कर रहे हैं, तो उसमें आपकी बहुत बड़ी भूल हो रही है।"

रावण ने हंसते-हंसते कहा, "यह बात तो आजतक कई बार तुम कह चुकी हो और मैं सुन चुका हूं। समझ लो कि अब रावण के पास तुम्हारी ऐसी बे-सिर-पैर की बातें सुनने की फुरसत नहीं रही है।"

रावण के अधिक निकट पहुंचकर मंदोदरी कहने लगी, "लंकापति ! मैं आजतक कहती थी और आज कह रही हूं, उसमें बड़ा अंतर है। आपने अपने बड़े भाई कुबेर से लेकर अनेकानेक छोटे-बड़े राजाओं को सताया है, यह सचाई आपके विरुद्ध खड़ी है; अपनी शक्ति के मद में उन्मत्त होकर आपने इन सब देवों को अपना दास बनाया है और आप इनका निरंतर अपमान करते रहते हैं, यह हकीकत भी आपके खिलाफ है; आपका विजय-रथ देश-परदेश से कोमल अंतःकरणवाली बहन-बेटियों को घसीटकर लाता रहता है और उन्हें आपकी वासना का शिकार बनाता रहता है, यह चीज भी अभी आपके खिलाफ है; समूचा राक्षसकुल आपकी शक्ति से छककर संसार के सारे कल्याणकारी तत्वों को नष्ट करने में लगा है, यह तथ्य भी आपके खिलाफ है। इस पर आज एक नई हकीकत मेरे कान पर आई है। यदि

वह सच हो, तो महाराज ! समझ लीजिए कि हमारा घड़ा भर चुका है !"

रावण ने पूछा, "वह नई हकीकत कौन-सी है ?"

मंदोदरी बोली, "लोग कह रहे हैं कि महाराज सीता को उठा लाये हैं।"

तिरस्कार से हँसते हुए रावण ने कहा, "ओ हो, यह इतनी वड़ी नई हकीकत ! मामूली लोगों की मूर्खता भी कितनी जबरदस्त होती है ? मैं आज-तक सीता से कहीं अधिक तेजस्वी और आकर्षक अनेकानेक देव-कन्याओं को लाया, उस समय तो कोई कुछ बोला नहीं, और आज एक मामूली-सी सीता को ले आया, तो सारी लंका मानो मुझे खाने को दौड़ पड़ी है !" फिर कुछ गंभीर होकर रावण बोला, "हां, यह सच है कि मैं सीता को लाया हूं।"

मंदोदरी ने कहा, "महाराज ! यदि यह सच है, तो सीता को वापस छोड़ आइए।"

रावण क्रोधित होकर बोला, "मंदोदरी ! यह बात तुमने एक बार कह दी; सो काफी है। तुम कहोगी, तो मैं इन सारी कन्याओं को उनके देश पहुंचा दूंगा और उनके माता-पिताओं के पैर छू लूंगा। तुम कहोगी, तो अपने पराक्रम से अर्जित सारे प्रदेश, मैं वापस सौंप दूंगा। मंदोदरी ! तुम कहोगी तो मैं लंका का सारा राज्य भी छोड़ दूंगा; लेकिन मैं सीता को तो कभी वापस जाने नहीं दूंगा।"

मंदोदरी ने कहा, "महाराज ! आप ऐसी बातें करते हैं, इसमें दोष आपका नहीं है। हमारा काल ही आपसे यह सब कहलवा रहा है।"

रावण गुस्से में आकर बोला, "मंदोदरी ! बस करो ! जंगल में भटकनेवाले दो साधु मेरे शत्रु क्या हुए, मेरा काल ही आ गया ? स्वयं शेषनाग के सिर पर पैर रखनेवाला रावण क्या इस प्रकार डर जायगा ? मंदोदरी ! मेरे साथ तुम्हारी निकटता इतनी अधिक है कि तुम मेरे सच्चे स्वरूप को समझ नहीं सकती।"

मंदोदरी कहने लगी, "महाराज ! लंकापति ! यह सब आप अपने अभिमान के आवेश में बोल रहे हैं।"

रावण ने कहा, "अगर यह अभिमान है, तो अभिमान ही सही ! आज तो यह अभिमान भी रावण की आत्मा है। मैं तुम्हें किस तरह सम-

झाऊं कि ब्रह्मा के दिये वरदानों के कारण काल भी रावण का कुछ कर नहीं सकता ?"

मंदोदरी बोली, "राक्षसराज रावण ! मैं किसी जंगल से पकड़कर लाई गई कोई भील-कन्या नहीं हूं कि इन सब बातों को समझ न सकूं। मैं भी अप्सरा की कोख से पैदा हुई हूं और दानव-कुल में पली हूं। हजारों वर्षों की तपश्चर्या मेरे लिए कोई नई बात नहीं। किंतु लंकापति ! संसार का अनुभव यह है कि स्वयं ब्रह्मा के दिये वरदानों की अवहेलना करके भी काल मनुष्यों को पकड़ लेता है। दानव पुत्री मंदोदरी को ठीक पता है कि दानवों द्वारा प्राप्त वरदानों के गर्भ में काल हमेशा छिपा ही रहा है। आप आज मानें, चाहे न मानें, पर महाराज ! मैं कहती हूं कि सीता आपका काल है, इसलिए उसे वापस भेज दीजिए !"

रावण ने कहा, "अभी तो मैंने सीता का मुंह तक नहीं देखा। ऐसी हालत में काल-काल कहकर तुम मुझे परेशान क्यों कर रही हो ? मंदोदरी ! जब सीता के समान स्त्रियां काल बनेंगी और राक्षस-राज को इन मुट्ठी-भर हड्डियों से भी डरना पड़ेगा, तो समझो कि पृथ्वी रसातल को चली जायगी !"

मंदोदरी बोली, "लंकापति ! ऐसी बात मत कहिए। मैं सीता को देखूंगी। उस समय जो होना होगा, सो होकर रहेगा। किंतु आप जानते नहीं हैं कि जगन्नियंता की इच्छा होने पर वह एक तिनके को भी अपना साधन बना सकता है और उससे मृत्यु ला सकता है। एक मदोन्मत्त हाथी को मारने के लिए उतना ही बड़ा हथियार कब आवश्यक हुआ है ? उसके लिए तो सूई की छोटी-सी नोक भी काफी होती है। राक्षसराज ! मैं आपसे विनती करती हूं कि आप सीता को वापस भेज दीजिए।"

दृढ़ता-सी धारण करते हुए रावण बोला, "मंदोदरी ! अब तो सीता को वापस न सौंपने का मेरा निश्चय दृढ़ हो रहा है ! देखता हूं, सीता मुझे कैसे मार डालती है। संसार में स्त्रियां, साधु, ऋषि-मुनि, गरीब, पीड़ित, ये सब जबतक अपनी मर्यादा में रहते हैं तबतक हम इनकी रक्षा कर सकते हैं। लेकिन आज तो ये लोग हमें डराने निकल पड़े हैं। अब हमें इन्हें दिखा देना चाहिए कि दया भी मांगनी हो, तो दया का अधिकार कमाना

होता है। मंदोदरी ! तुम सीता को कहना चाहो, तो उससे भी कह देना; इन सब कन्याओं को कहना चाहो, तो इन्हें भी कह देना और विभीषण के समान डरपोक राक्षस से भी कह देना कि लंकापति रावण किसी से डरता नहीं है। तुम सब, तुमसे जो बन पड़े, खुशी-खुशी कर लो। कन्याएं आज तक कम चीखी-चिल्लाई हों, तो आज से अधिक चिल्लाना-चीखना शुरू कर दें। सीता की आंखों से आंसू बहते हों, तो अब भले उनसे लहू की धाराएं बहें, पर यह रावण किसी से डरेगा नहीं। क्या तुम लोग कैकसी के पुत्र रावण को इतनी कच्ची मिट्टी का मानते हो? मंदोदरी ! जाओ, मुझे तुम्हारी सलाह की जरूरत नहीं। तुम उल्लू लोग मेरे तेज को कैसे सह सकते हो ?"

मंदोदरी ने कहा, "राक्षसराज, मेरे प्रिय पति ! मैं थकी। मैं हारी। आपने मेरा हाथ पकड़ा है, इस कारण आपसे इतनी बात कहने का मैं अपना अधिकार मानती थी; किंतु जब मेरा दैव ही विपरीत है, तो मैं आपसे क्या कहूं ? आज आपकी आंखों में नशा छाया हुआ है, इस कारण मेरी बात आप समझ नहीं रहे हैं। किंतु महाराज ! याद रखिए, संसार के सनातन नियम अपना काम करते रहते हैं। उन नियमों से स्वयं ब्रह्मा भी बच नहीं सकते, तो आप-हम किस गिनती में हैं !"

रावण बोला, "मंदोदरी ! अब तुम जाओ। मैं थक गया हूं। कन्याओ ! मुझे थोड़ा आसव दो। और रानी ! अब अपनी बकवास बंद करो।" यों कहकर रावण ने मुंह फेर लिया। दर्द भरा चेहरा लेकर मंदोदरी वहां से चल निकली और सब कन्याएं फिर पहले की तरह आकर इकट्ठी हो गईं।

: ३ :

सौभाग्य की लालसा

रावण ने सीता को अशोक वन में रखा है, मंदोदरी को इसकी खबर बहुत देर बाद मिली। जिस दिन सीता ने लंका में पैर रखा, उसी दिन से लंका में एक छोटी-सी आंख रावण का, लंका का और राक्षस-समुदाय का अकल्याण देखने लगी थी और लंका के किसी-किसी हृदय से ऐसे अकल्याण के उद्‌गार प्रकट भी होते थे।

मंदोदरी जन्म से दानव-पुत्री थी और विवाह के कारण राक्षसों की पटरानी थी, किंतु वह स्वभाव से आर्य थी। संसार के जो सनातन मूल्य मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं, मंदोदरी को उनकी परख सहज ही थी। यही कारण है कि लंकापति रावण के सारे वैभव-विलास के बीच उसका दिल दुःखी बना रहता था और वह रावण के विशाल ऐश्वर्य के गर्भ में दुर्गन्ध का अनुभव करती थी।

एक दिन अमावस की रात में मंदोदरी स्वयं अशोक वन के दरवाजे पर जा पहुंची। रावण ने त्रिजटा को स्पष्ट आदेश दे रखा था कि उसकी अनुमति के बिना वह किसी पक्षी को भी अशोक वन में न आने दे। कुसमय में मंदोदरी को आया जानकर त्रिजटा तुरंत वहां पहुंची और प्रणाम करके बोली, "देवि ! इस समय अचानक कैसे पधारना हुआ ?"

मंदोदरी ने कहा, "त्रिजटा ! अपने हृदय की अशांति को मिटाने के लिए मैं सीता को देखना चाहती हूं।"

त्रिजटा पुनः हाथ जोड़कर बोली, "महारानी ! आपको पता तो होगा ही कि महाराज की अनुमति के बिना किसी को अंदर जाने देने की छूट नहीं है।"

मंदोदरी ने कहा, "मैं उस आदेश को जानती हूं। फिर भी मैं यहां आई हूं। त्रिजटा ! मैं मंदोदरी हूं, लंका की पटरानी हूं और महाराज की

अर्धांगिनी हूं, इस नाते तू मुझे अंदर जाने दे।"

जवाब में त्रिजटा बोली, "आपकी बात सच है; किंतु महाराज के आदेश का हेतु इससे भिन्न है।"

मंदोदरी ने कहा, "वह तो है ही। मुझे किसी भी तरह अंदर जाकर सीता से मिलना है। अतः महाराज तुझसे पूछें, तो तुझे क्या बहाना बनाना है, यही मैं तुझसे कहना चाहती हूं। त्रिजटा ! मैंने सुना है कि तू भली है। मैंने यह भी सुना है कि महाराज कितने ही कड़े आदेश क्यों न दें, फिर भी तू सीता पर दया रखती है।"

त्रिजटा बोली, "देवि ! यह तो सच है ही कि हम सीता को कड़े-से-कड़ा त्रास पहुंचाने का विचार करते हैं, पर जब उसके पास पहुंचते हैं, तो दिल में भारी उथल-पुथल मच जाती है और सीता के पैरों में सिर रख देने की इच्छा हो आती है।"

मंदोदरी ने कहा, "तो बहन त्रिजटा ! मुझे उसके दर्शन तो करने दे ! तू चाहेगी, तो महाराज को कुछ भी जवाब दे सकेगी।"

त्रिजटा ने पूछा, "महारानी ! महाराज के अपने आदेश का अनादर करके और मुझ-जैसी पहरेदारिन को नाजुक-स्थिति में डालकर आप सीता को क्यों देखना चाहती हैं ? आप मेरे मन की इस शंका का समाधान कर देंगी, तो महाराज के पूछने पर मैं उन्हें हिम्मत के साथ जवाब दे सकूंगी।"

मंदोदरी ने कहा, "त्रिजटा ! लंका के अच्छे-अच्छे लोग मूक भाषा में बोल रहे हैं कि यह सीता महाराज की मृत्यु का कारण बनेगी। स्वयं मैंने अभी सीता को देखा नहीं है; किंतु मैं आज लंका में और महाराज के जीवन में जो चिह्न देख रही हूं, उनके कारण मुझे भी लगने लगा है कि कोई विपरीत बात होनेवाली है। सीता को देखकर मैं उसकी थाह लेना चाहती हूं। त्रिजटा ! केवल मेरे कुतूहल के लिए नहीं, बल्कि महाराज के और समूची लंका के हित की दृष्टि से तू मुझे अंदर जाने दे।"

"महादेवि ! पधारिए।" यों कहकर त्रिजटा ने मंदोदरी को अशोक वन में आने दिया और वह उसे शीशम के उस पेड़ के पास ले गई, जहां सीता रहती थी।

त्रिजटा बोली, "सीता ! ये लंकापति की पटरानी मंदोदरी हैं।"

मानो किसी गाढ़ योगनिद्रा से जागी हो, इस प्रकार अपनी आंखों को ऊपर की ओर उठाकर सीता ने कहा, "बहन त्रिजटा ! क्या सचमुच ये पटरानी हैं ? लंका की पटरानी ! देवि ! पधारिए। अभागिनी सीता आपको प्रणाम करती है।"

मंदोदरी बोली, "सीता ! मैं आपकी नींद में बाधक बनी, इसके लिए आप मुझे क्षमा कीजिए।"

सीता ने कहा, "नहीं बहन ! सीता के नसीब में नींद कहां ? नींद तो आज वैरिन बनकर न जाने कहां चली गई है ! क्या आज इस अंधेरी रात में आप महाराज रावण का कोई संदेशा लेकर आई हैं ? अशोक वन में जब-जब किसी नये चेहरे को देखती हूं, मेरा मन कांप उठता है।"

मंदोदरी बोली, "सीता ! घबराइए नहीं।"

सीता ने कहा, "क्यों न घबराऊं ? आपके समान पटरानी के रहते भी मुझ-जैसी अबला की ऐसी दशा हो, और आप सब उसे चुपचाप सहन कर लें, ऐसे समय मैं घबराऊं नहीं, तो क्या करूं ? इतनी-इतनी रातें बीत गईं, मैं दीन बनकर रोती-बिलखती रहती हूं, फिर भी समूची लंका को सुख की नींद सोते देखती हूं, तो सहज ही मेरे मन में विचार आता है कि आज सारी सृष्टि ने मेरे विरुद्ध षड्यंत्र रचा है और लंका की कुल-स्त्रियां भी पवित्रता के मूल्य को गंवा बैठी हैं।"

मंदोदरी शीशम के पेड़ के नीचे सीता की बगल में बैठते हुए बोली, "सीता ! बहन ! आप शांत होइए।"

सीता ने कहा, "रावण की राजरानी ! मैं शांत कैसे होऊं ? जब सारे संसार को शांति देनेवाला चंद्रमा उगता है, तो वह रावण को उत्तेजित करके मेरे पास भेज देता है और मेरे दुःखी दिल को और अधिक दुःखी बना देता है। समूची लंका की रक्षा करनेवाला यह सागर जब गर्जना करता है, तो मैं यह सोचते-सोचते विह्वल बन जाती हूं कि मेरा राम इस सागर को लांघकर यहां कैसे आ सकेगा ? कोई मुझसे कहते हैं कि लंका में राक्षसों के बीच भी विभीषण के समान साधु पुरुष रहते हैं; किंतु उन विभीषण की शीतलता इतनी दूर मुझ तक पहुंच नहीं पाती। लंका की पटरानी ! आज

आप आई हैं; मेरी ओर से अपने प्रिय पति के पैरों पड़कर आप उनसे कहिए कि वे मुझे मेरे राम के पास वापस भेज दें। आप इतना कहेंगी, तो मैं जीवन भर आपकी ऋणी रहूंगी। मंदोदरी ! क्या आप इतनी कृपा करेंगी ?"

मंदोदरी अपनी आंखों के छिपे आंसू पोंछती हुई बोली, "सीता ! शांत हो जाओ। मैं लंका की पटरानी नहीं हूं। मेरे पिता ने रावण के हाथ में मेरा हाथ सौंपा है, राक्षसों के राज्य का मुकुट मेरे सिर पर रखा गया है, किंतु मैं राक्षसराज रावण के हृदय की हिस्सेदार नहीं बन पाई हूं। इसलिए मेरा यह विवाह और यह मुकुट व्यर्थ है। इस दृष्टि से देखें, तो महाराज की असल पटरानी तो उनकी अपनी कामवासना है।"

त्रिजटा ने कहा, "और सीता ! आज वह वासना आपकी ओर मुड़ी है, अत: आज की अथवा आनेवाले कल की पटरानी तो आप ही मानी जायंगी !"

सीता तमककर बोलीं, "त्रिजटा ! दुष्टा ! तेरी जीभ के हजार टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ?" और फिर मंदोदरी की तरफ मुड़कर कहने लगी, "मंदोदरी ! तब तो मुझे आप पर ही दया आती है। क्या संसार की सब पटरानियां इसी तरह दया की पात्र होती हैं ? किंतु बहन ! आप मुझ पर हँसिए मत; मुझे यहां से छुड़ा दीजिए। आपने मेरे राम को देखा है ?"

मंदोदरी ने कहा, "देखा तो नहीं है, पर उनके बारे में सुना है। आपके बारे में भी सुना करती थी, इसलिए सोचा कि चलूं, आज आप को देख आऊं।"

सीता बोलीं, "मंदोदरी ! मुझमें ऐसा क्या है कि लंकापति मुझे उठाकर ले आये, और अब भी मेरा पीछा नहीं छोड़ रहे हैं ? मुझसे कहीं अधिक रूपवती, कहीं अधिक मनोहर और कहीं अधिक चालाक मंदोदरियां तो इस लंका में ही मौजूद हैं। महारानी !आप लंकापति को कुछ भी नहीं कहेंगी ?"

मंदोदरी ने-कहा, "सीता ! आपकी बातों में इतनी अधिक निर्दोषता है कि कोई कैसा भी राक्षस क्यों न हो, पिघले बिना रह नहीं सकता। सीता ! आपकी कहीं सब बातों को मैं समझती हूं और जो आप नहीं कह

रही हैं, ऐसी भी बहुत-सी बातों को मैं समझती हूं; किंतु मैं लाचार हूं !"

सीता बोलीं, "लंका की महारानी और लाचार ?"

जवाब में मंदोदरी ने कहा, "हां, लंका की महारानी लाचार है; किंतु सीता ! मैं तो आपके पास अपने स्वार्थ के लिए आई हूं।"

सीता बोलीं, "तो क्या लंका स्वार्थी लोगों से ही भरी है ? रावण स्वार्थी, ये राक्षसियां स्वार्थी, मारीच स्वार्थी, त्रिजटा स्वार्थी और आप भी स्वार्थी ! क्या लंका की हवा ही ऐसी है ? अच्छी बात है, कहिए, आप अपने किस स्वार्थ को लेकर आई हैं ?"

मंदोदरी ने कहा, "स्वार्थ तो और क्या हो सकता है ? जो रावण का स्वार्थ है, वही मेरा समझिए।"

सीता संकोच अनुभव करती हुई बोली, "महारानी ! आप तो लंका-पति से भी अधिक भयंकर लगती हैं ! मैं तो समझती थी कि लंकापति का कार्य आपको पसंद नहीं होगा; लेकिन आप तो उन्हीं के स्वार्थ से जुड़ी दीखती हैं। हा दैव ! मैं इस लंका से कब छूट पाऊंगी ?"

मंदोदरी ने कहा, "सीता ! आप मुझे समझी नहीं। मैंने आपके बारे में बहुत-कुछ सुना है। उनमें एक बात यह भी सुनी है कि आप अपने पाति-व्रत्य के तेज से रावण को भस्म कर देनेवाली हैं। पतिव्रता स्त्रियों के तेज की कल्पना मुझे है। आपके अंदर मैं उस तेज के दर्शन भी कर रही हूं। इसीलिए आपके पैरों पड़कर मैं आपसे यह मांगने आई हूं कि आप मेरे पति को शाप देकर अथवा ऐसे ही किसी उपाय से भस्म न करें।"

सीता तनकर बैठ गईं और बोलीं, "मंदोदरी ! बहन ! मेरे पैरों पड़ने का कोई अर्थ नहीं। पैर तो लंकापति के पड़िए और उनसे मांगिए कि वे मुझे वापस सौंप दें। मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि राम के पास पहुंचने के बाद मैं लंकापति की इन सारी दुष्टताओं को भूल जाऊंगी ?"

मंदोदरी ने कहा, "किंतु सीता ! रावण के पैर छूने से मेरा कोई काम बनेगा नहीं। आपके पांवों में तो मैं इसलिए पड़ रही हूं कि आप क्रोध में आकर शाप न दें, जिससे रावण और लंका दोनों सुरक्षित रह सकें।"

सीता बोलीं, "मंदोदरी ! मेरे लिए यह एक आश्चर्य की ही बात है कि लंका की हवा में ऐसी मंदोदरियां भी पैदा होती हैं। बहन ! रावण

की और लंका की रक्षा तो रावण के अपने हाथ में है। आप यह मत मानिए कि मेरे समान साधारण स्त्री लंका का अथवा रावण का कोई अकल्याण कर सकती है। हां, मंदोदरी ! मैं यह कहती हूं कि राक्षसराज आज जिस प्रकार का व्यवहार कर रहे हैं, वह व्यवहार उनका सर्वनाश कर सकता है, इसमें मुझे तिलभर भी शंका नहीं !"

मंदोदरी ने कहा, "सीता ! इस व्यवहार की बात तो लंकापति स्वयं जानें, किंतु मैं तो आपसे यही मांगने आई हूं कि आप मेरे पति को शाप न दें।"

सीता बोलीं, "मंदोदरी ! सीता में शाप देने और शाप को फलीभूत करने की शक्ति ही नहीं है।"

मंदोदरी ने कहा, "विभीषण और सरमा तो कहते हैं कि सीता की आंख में वह शक्ति है, जो पलक मारते सारी लंका को भस्म कर सकती है।"

सीता बोलीं, "विभीषण को और सरमा को उसका पता होगा। मैं नहीं जानती कि सीता में ऐसी कोई शक्ति है। किंतु महारानी ! एक बात मैं अवश्य जानती हूं कि रावण के जैसा व्यवहार करनेवाले लोगों को जगन्नियंता की शक्ति सहन नहीं करती, अतः ऐसे लोगों का पतन हुए बिना नहीं रहता।"

मंदोदरी ने पूछा, "लेकिन आप शाप नहीं देंगी, यह तो मैं मान लूं न ?"

सीता बोलीं, "महारानी ! आपकी यह ममता कितनी खोटी है ? जिसके पैरों पड़ने पर भी जो आपका कहा नहीं मानता, जिसे देव-दानव-गंधर्व-कन्याओं का हरण करने में तनिक भी संकोच नहीं होता, और जो अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिए हर किसी को सता सकता है, ऐसे पति के कारण अपने को सधवा मानना और ऐसे पति के दीर्घ जीवन की कामना करके पतिव्रता बनना, इसके जैसा दूसरा कोई पाप मेरे ध्यान में नहीं आता। यदि ऐसे पति के व्यवहार की हिमायत करने में पतिव्रतापन हो, तो वैसा पतिव्रतापन उस पत्नी के लिए और संसार के लिए कलंकरूप ही है। महारानी ! क्षमा कीजिए, मैंने भी अपनी

मां की गोद में बैठकर पतिव्रता धर्म सीखा है। लंका की महारानी को दो शब्द कहने का अधिकार सीता को हो तो मैं कहूंगी कि मंदोदरी ! ऐसे पति से अपना सौभाग्य सुरक्षित रहता है, यह मानने की अपेक्षा वैधव्य को न्योतना हजार गुना अच्छा है। मंदोदरी ! यही समझिए कि लंकापति के साथ से आपके अंदर भी इतना पाप समा गया है। आपके स्थान पर कोई दूसरी पटरानी हो, तो वह लंकापति के साथ अपना हिसाब बेबाक कर ले और अपना सोचा काम न बने, तो अपने जीवन को समाप्त कर दे। इसके विपरीत आप अपने हाथों अपमान सहन करती हैं और लंकापति के इन सारे दुष्कर्मों की सहभागिनी बनती हैं। मंदोदरी ! यदि सीता को कुछ कहने का अधिकार हो, तो मैं आपसे कहती हूं कि रावण को उसके सारे पापों की बात सुना दो, उससे बिनती करो कि वह उन पापों से मुंह मोड़े, और यह सब करने पर भी वह न माने, तो आप उससे अलग हो जाओ, उसका त्याग करो और परमात्मा से प्रार्थना करो कि वह उसे सद्बुद्धि दे ! जिस भाव से आप आज आई हैं, उस तरह रावण का उसके पाप में साथ मत दो।"

मंदोदरी फूट पड़ी। बोली, "सीता ! बेटी सीता ! मुझे क्षमा करो। तेरी बात सोलह आने सच है। मैं तो मानती ही हूं कि जगन्नियंता शक्ति रावण को उसके दुष्कर्मों के लिए क्षमा नहीं करेगी, क्षमा कर ही नहीं सकती। मैं यह भी अनुभव करती हूं कि एक बार भारी आघात पहुंचे बिना ऐसी राक्षसी वृत्तियां शांत नहीं होतीं। किंतु बेटी ! अपने हृदय की दुर्बलता के कारण मैं तेरे पास दौड़ी चली आई, और हेमा की पुत्री को जो न मांगना चाहिए, वह मैं तुझसे मांग बैठी। सीता ! भगवान तेरा कल्याण करें। तू सचमुच योगमाया है। तुझसे मुझे बहुत कुछ जानने को मिला है और मेरे हृदय का भार बहुत हल्का हुआ है। मैं समझती हूं कि मुझे रावण का त्याग करना चाहिए; किंतु मंदोदरी में इतनी शक्ति नहीं। यदि मैंने अपने जीवन में ऐसा आग्रह रखा होता, तो रावण की क्या ताकत थी, जो सारे संसार की बहन-बेटियों को लंका में लाकर बसाता और उन्मत्त बनकर उनके साथ रह सकता ? मैंने धर्म के मिथ्या विचार से ही अथवा डर के मारे लंकापति के विरुद्ध धर्म-युद्ध छेड़ा ही नहीं, उसी का यह परिणाम

है ! सीता, तू चाहे लंकापति को शाप न दे, पर तेरे समान योगमाया को सतानेवाले पुरुष को संसार की शक्तियां नष्ट करके ही रहती हैं। विभीषण मुझसे जो कहता है, वह बिलकुल सच है। सीता ! तू मुझे क्षमा कर। मैं आई तो थी अपना सौभाग्य मांगने, किंतु जा रही हूं अपना वैधव्य अपनी गोद में लेकर।"

सीता बोली, "महारानी ! भगवान किसी को वैधव्य न दे, लेकिन मेरे विचार में तो आप वर्षों पहले से विधवा ही हैं। अंतर केवल इतना है कि आप अपने सौभाग्य के बाह्य चिह्नों को अभी भी धारण करती हैं।"

मंदोदरी भारी दिल लेकर लौट पड़ी।

: ४ :

मंदोदरी-विलाप

युद्ध में रावण की मृत्यु के समाचार बिजली की गति से लंका में फैल गये और समूचे नगर में भारी हाहाकार मच गया। इंद्रजित तो बहुत पहले ही खेत रहा था; वानरों ने कुंभकर्ण को भी धूल चटा दी थी; वज्र दंष्ट्र आदि प्रसिद्ध सेनापति भी काफी पहले रणक्षेत्र में सदा के लिए सो चुके थे। आज जब समूचे राक्षस-कुल के मस्तक का मुकुट रूप रावण भी रण-शैया में सदा के लिए सो गया, तो उसका शोक मनाने के लिए लंका की स्त्रियां ही शेष रही थीं। राक्षस तो लगभग सभी मारे जा चुके थे।

रावण के पतन के समाचार मिलने पर अन्तःपुर की स्त्रियां हृदय-विदारक रुदन करती हुई महल के बाहर आईं और समूचे वातावरण को उद्वेलित करनेवाले रुदन के साथ रणक्षेत्र की ओर चलीं। मंदोदरी इस सारे समूह के आगे-आगे चल रही थी।

मंदोदरी रणक्षेत्र में वहां पहुंची, जहां रावण का शरीर पड़ा था।

रावण के शव को दूर से देखते ही मंदोदरी जोर से बिलख उठी और उसके विलाप का अनुसरण करके दूसरी सब स्त्रियों ने अपने रुदन से सारे आकाश को चीर-सा डाला।

रावण के पास पहुंचकर मंदोदरी ने उसके शव को अपनी गोद में रख लिया और वह रोते-रोते कहने लगी, "महाराज लंकापति ! आप मुझे छोड़कर कहां चले गये ? संसार के देव, दानव, गंधर्व सभी आपके नाम से थर-थर कांपते थे। मैं इसे भलीभांति जानती थी। सारी दुनिया जानती है कि मेरे पुत्र मेघनाद ने इंद्र को हराया था। अग्नि, वरुण आदि देवताओं को तो आपने लंका में बांध ही रखा था। फिर भी राक्षसराज ! आज आप चिरनिद्रा में सोए हैं, मैं इसका कारण समझ नहीं सकी हूं। महाराज, लंकापति ! मैं आपसे कहा करती थी कि आप सीता को वापस कर दीजिए, पर आप माने नहीं। जब से मैंने सुना कि आप सीता को ले आये हैं, तभी से मुझे लगने लगा था कि यह सीता नहीं है, बल्कि आपका काल है। महाराज ! जब मेरे पिता ने मेरा हाथ आपके हाथ में रखा था, उस समय मेरे मन में कितनी-कितनी आशाएं थीं ? आप तो त्रिलोक के स्वामी-से थे; किंतु मेरी सारी आशाएं अधूरी रह गईं और आप चल बसे ! महाराज ! आप मुझसे रुठे तो नहीं हैं ? आपको कड़ुई बातें कहने में मैंने कोई कसर नहीं रखी। आपको कड़ुई बातें सुनानेवालों में एक मैं मंदोदरी हूं और दूसरे भाई विभीषण हैं; किंतु विभीषण तो आपके भाई थे और मैं रही आपकी पत्नी। विभीषण आपको छोड़कर जा सके, पर मैं मंदोदरी तो हेमा की पुत्री ठहरी। मैं आपको क्योंकर छोड़ती ? विभीषण, भैया विभीषण ! आप तो राम के साथी बनकर बैठ गये ! महाराज के कृत्य आपको अच्छे न लगे, आपने उनका विरोध किया, इसे मैं समझ सकती हूं; महाराज जो अधर्माचरण करते थे, उसके विरुद्ध आपके विद्रोह को भी मैं समझ सकती हूं; महाराज को ठीक रास्ते पर लाने और अपने धर्म की रक्षा करने के लिए आप उनका त्याग करें, इसे भी मैं समझ सकती हूं। किंतु भैया ! आपने तो राम के चरण पर हाथ रखा और आप लंका के राजा बन गये। जब मैंने यह सुना, तो मुझे लगा कि आप द्रोही बने हैं ! और, सो भी महाराज के जीतेजी ! भाई के खिलाफ शिकायत थी,

तो भाई-भाई को आपस में समझ लेना था; किंतु आप भाई को छोड़कर विरोधी पक्ष में चले गये, लंका के साधारण-से मुकुट के लिए आपने अपने आपको बेचा और अपनी सारी शक्ति राम के पक्ष में खर्च की, यह सब तो मुझे निरा अधर्म प्रतीत होता है। आपका ही भाई राम-लक्ष्मण को घायल करे और उस समय आप उन पर पंखा झलते हुए उनकी बगल में बैठें, महाराज की सारी गुप्त बातें आप राम को बता दें और इस सबके बाद भी आपकी गिनती धर्मात्माओं में हो, इसे मैं समझ नहीं पाती। महाराज, राक्षसराज ! आपकी मौत का निमित्त सीता नहीं, आपकी मौत का निमित्त यह राम भी नहीं, असल में आपकी मौत का निमित्त आपका ही भाई विभीषण है। हाय, मुझे क्या पता था ? आपकी पत्नी के नाते मैंने आपको न कहने योग्य बातें कही होंगी, और आपके ही भाई विभीषण ने आपको कड़ुई बातें कहकर आपका त्याग किया होगा, तभी तो जीवित रहने का आपका रस सूखा होगा ? राम, आज आपने मुझे पति-विहीन किया है। आज आपने हमारी जोड़ी को खंडित कर दिया है। अब आप और सीता आराम से सुख भोगेंगे; किंतु मेरा हृदय आपको आशीर्वाद कैसे दे सकेगा ? सीता, मंदोदरी की ऐसी दशा करनेवालों को मैं ठोकर वचन न कहूं, ऐसी सती मैं नहीं हूं। सीता, तेरा जन्म न हुआ होता, तो आज मेरी यह दशा न होती। राम ! मैंने केवल एक बार आपको लंका के गढ़ पर से देखा है। लोग कहते हैं कि आप युग-पुरुष हैं। मेरे राक्षस कहते हैं कि शत्रु के रूप में भी आप अलौकिक पुरुष हैं; किंतु मेरे लिए तो आप मेरे वैधव्य के निमित्त बने बैरी ही हैं। भले ही आप सारे संसार को सुखी बनानेवाले हों, पर मेरे लिए तो आप यह दशा लेकर आये हैं। अयोध्या के कुमार ! मेरे और रावण के बीच में बिछोह पैदा करनेवाले आप और सीता अयोध्या के राजमहल में सुखपूर्वक आनंद लूटेंगे, मैं सहन कर लूंगी, किंतु सीता ! जगन्नियंता क्योंकर सहेंगे ? पर मैं भूल रही हूं। महाराज ! आपको इस दशा में पहुंचानेवाली स्वयं मैं ही हूं। आपके इस मार्ग का मैंने कड़ा विरोध किया होता, तो आप इस हद तक पहुंच ही न पाते। जब आप देव-दानव-गंधर्व-कन्याओं को उठाकर लाते थे, तब मैंने आपका विरोध किया होता, तो आप सीता का हरण

करने की हद तक जाते ही नहीं; किंतु मैं अभागिन आपके इन कृत्यों के परिणामों का अन्दाज नहीं लगा पाई और अपनी दुर्बलता में ही फंसी-की-फंसी रह गई! महाराज, लंकापति! आप तो वीर की मौत मर रहे हैं। आपकी इस मंदोदरी ने आप से कड़ुई बातें कही हों या आपका कोई अपराध किया हो, तो आप इसे क्षमा कर दीजिए। लंका की तो किसी को चिंता ही नहीं है, क्योंकि आपके जीतेजी ही आपके भाई गद्दीधारी बन चुके हैं। विभीषण, मैंने आपको सही रूप में पहचाना नहीं, इसीलिए मैंने अपने मन की सारी व्यथा आपके सामने उंडेली थी। आज बड़ी देर के बाद मैं समझ पा रही हूं कि पापी रावण भी धर्मिष्ठ विभीषण से कितने बढ़े-चढ़े थे। महाराज! मंदोदरी के अंतिम नमस्कार!"

बोलते-बोलते मंदोदरी फूट-फूटकर रोने लगी। इसी बीच विभीषण आदि रावण की अन्त्येष्टि के लिए वहां आ पहुंचे और रावण के शव को पालकी में रखकर वहां से ले गये।

पति-विहीन मंदोदरी रोती-विलखती लंका में वापस आई। विभीषण रावण-विहीन लंका की गद्दी पर बैठा और लंका की प्रजा को सुखी बनाने के लिए विभीषण ने कठिन परिश्रम किया। किंतु महारानी मंदोदरी तो उस दिन से अंधकार में कुछ ऐसी विलुप्त हुईं कि बाद में उनका क्या हुआ, इसे दुनिया आज भी नहीं जानती। □

रावण

: १ :

वरदान

गोदावरी और नर्मदा नदी के बीच के प्रदेश में बड़े-बड़े जंगल थे। प्राचीन काल में यह प्रदेश दंडकारण्य कहलाता था। उन दिनों यह समूचा प्रदेश उजड़ा-सा पड़ा था और इसमें अधिकतर राक्षस रहते थे। आर्यावर्त के कुछ ऋषियों ने इस प्रदेश में यहां वहां अपने आश्रम स्थापित किये थे, और वे अपने चारों ओर आर्य संस्कृति की सुवास फैला रहे थे। इसी दंडकारण्य में रावण अपने भाई कुंभकर्ण और विभीषण के साथ तप करने आया था।

पहले पुलस्त्य नाम के एक ऋषि थे। उनके विश्रवा नामक एक पुत्र हुआ। सुमाली नाम के राक्षस ने अपनी कन्या कैकसी का विवाह विश्रवा से किया। कैकसी के चार सन्तानें हुई—रावण, कुंभकर्ण, विभीषण और शूर्पणखा। राक्षस-पुत्री होने पर भी कैकसी बड़े भले स्वभाव की थी। उसने इस आशा से अपने पुत्रों को तप करने भेजा था कि वे तपश्चर्या करेंगे, तो ब्रह्मा उन पर प्रसन्न होंगे और उनकी कीर्ति सारे संसार में फैलेगी। दंडकारण्य में गोकर्ण नाम का एक पवित्र स्थान था। तीनों भाई वहीं तप करने लगे।

वर्षों बाद एक दिन ब्रह्मा रावण के सामने प्रकट हुए और बोले, "बेटा! मैं तेरे तप से प्रसन्न हुआ हूं। तू वरदान मांग!"

तपश्चर्या में अपना सारा शरीर घुला डालने वाले रावण ने ब्रह्मा को प्रणाम किया और कहा, "ब्रह्मदेव! मुझे वरदान दीजिए कि मैं कभी न मरूं।"

ब्रह्मा बोले, "बेटा रावण! मृत्यु तो मनुष्यों का ही नहीं, प्राणिमात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। किसी के इस अधिकार को छीनना सृष्टि के आदि-संकल्प के विरुद्ध है।"

रावण ने सिर ऊंचा किया और कहा, "पितामह ! मैं आपको केवल ब्रह्मा नहीं मानता। आप तो मेरे पितामह हैं। आपका रक्त मेरी नसों में बहता है। मैं जो भी तपश्चर्या कर पाया हूं, वह आप ही के प्रभाव का फल है। आप सारे संसार के तपस्वियों को उनकी इच्छा के अनुसार वरदान देते हैं। फिर भी आज मेरे निमित्त से आपको सृष्टि के आदि-संकल्प का स्मरण हो आया, इसे मैं अपना दुर्भाग्य ही मानता हूं।"

ब्रह्मा ने रावण के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "बेटा रावण, ! बुरा मत मान। विश्रवा का पुत्र यानी मेरा पुत्र। मैं जानता हूं कि जब तेरी मां कैकसी का विवाह हुआ था, उस समय उसके मन में धर्म-निष्ठ पुत्रों की माता बनने की कैसी-कैसी अभिलाषाएं थीं। ऐसे माता-पिता की संतान को वरदान देने का अवसर मिलता है, तो मैं उसे अपना सौभाग्य समझता हूं। किंतु बेटा ! तू जिस तरह की अमरता चाहता है, वह तो किसी के लिए भी संभव नहीं है। स्वयं ब्रह्मा के लिए भी सम्भव नहीं ! मृत्यु तो जगन्नियंता द्वारा सृष्टि को दिया गया अनमोल उपहार है। संसार से मृत्यु एक क्षण के लिए भी अदृश्य हो जाय, तो समूचा संसार दुर्गन्ध से भर जाय। मृत्यु ही संसार के सारे प्रवाह को निरंतर स्वच्छ रखती है। हां, यदि तू यह मांगे कि तुझे कोई मार न सके, न दानव तुझे मार सकें और न यक्ष तुझे मार सकें, तो ऐसा वरदान मैं तुझे दे सकता हूं।"

ब्रह्मा की ये बातें सुनकर रावण सहज ही हर्षित हो उठा और बोला, "पितामह ! आपका इतना देना भी मेरे लिए बहुत होगा। मुझे तो मदोन्मत्त होकर घूमनेवाले इन देवों, दानवों, गंधर्वों आदि को ठिकाने लगाना है। जगत् में चमत्कार दिखाए बिना कोई नमस्कार नहीं करता। सारा संसार आज अनेक प्रकार की विकृत दशा का अनुभव कर रहा है। ये आर्य लोग संस्कृति के पाखण्डपूर्ण पैमाने लेकर आये हैं। मैं इन्हें कुचल डालना चाहता हूं। ये दुष्ट वानर हमारी संस्कृति को बट्टा लगानेवाले ढंग से जीवन जीने लगे हैं। मैं इन्हें सुधारना चाहता हूं। किंतु मुझे इन लोगों की चिंता नहीं। इन सबको मसल डालना तो रावण के लिए बाएं हाथ का खेल है। मैं यही मांगता हूं कि केवल इन देवों, दानवों, गंधर्वों, यक्षों, सुपर्णों

आदि के हाथों मैं न मरूं। आप मुझे इतना वरदान दे दीजिए। बाकी सब मैं देख लूंगा।"

ब्रह्मा बोले, "तथास्तु !" और वे तुरन्त अन्तर्धान हो गये।

ब्रह्मा का वरदान मिल जाने पर रावण हर्ष से पागल हो उठा। जिस वट-वृक्ष के नीचे वर्षों तक एक आसन से बैठकर रावण ने एक ही नाम जपा था, उस वट-वृक्ष के नीचे रावण नाचने-कूदने लगा। थोड़ी देर के लिए वह वट-वृक्ष के ऊपर चढ़ गया। वट-वृक्ष की ऊंची-से-ऊंची डाल पर बैठकर उसने दूर-सुदूर हजारों मील की दूरी वाली जगहों पर अपनी दृष्टि डाली, उसने समूचे दक्षिण प्रदेश को ही नहीं, बल्कि उस प्रदेश से भी आगे के विशाल महासागर वाले प्रदेश को अपनी आंखों में भर लिया और उन मद-भरी आंखों से ऊपर की ओर देखते हुए वह बोलने लगा, "मैं इन्द्र को इंद्रासन से खींचकर नीचे गिरा दूंगा। आर्यावर्त के अनेकानेक राजा महा-राजाओं को मैं अपने रथ में जोतूंगा। देव, दानव, गंधर्व और यक्ष-कन्याओं को पकड़ूंगा और उनका रोना-बिलखना सुनकर हंसूंगा। संसार के पाखंडी ब्राह्मणों को समुद्र में डुबो देने का समय अब आ चुका है। अब इस दंड-कारण्य की सब दाढ़ियों को पकड़-पकड़ कर मुझे उन्हें अपने यज्ञ की अग्नि में होम देना-भर बाकी बचा है !"

ऐसे-ऐसे अनेक सपने देखता और साथ ही अपने हाथों के प्रहार से वट-वृक्ष के पत्तों और फलों को नीचे गिराता हुआ रावण इधर-से-उधर चक्कर काट रहा था कि इतने में उसने कुंभकर्ण और विभीषण को अपनी ओर आते देखा और वह दौड़कर उनके पास पहुंच गया। बोला, "भाई विभीषण ! आज मेरा बेड़ा पार हो गया !"

निकट आते हुए विभीषण ने कहा, "भैया ! आज हमारी तपश्चर्या भी सफल हो चुकी है। ब्रह्मा ने आज हम पर भी कृपा की है।"

विभीषण के ये शब्द सुनते ही रावण उछला और उसने विभीषण को अपने गले लगाते हुए कहा, "तब तो अब कुछ शेष रहा ही नहीं !"

किंतु कुंभकर्ण से नहीं रहा गया। ज्योंही रावण और विभीषण एक-दूसरे से अलग हुए, वह बोला, "भैया ! आप जितना चाहें, उतना नाच लीजिए और जितनों को गले लगाना हो, गले लगा लीजिए। पर आज

हम दोनों को तो ब्रह्मा ने मूर्ख ही वनाया है।"

रावण ने कहा, "भाई कुंभकर्ण ! ब्रह्मा के हम तीनों पर प्रसन्न हो जाने के बाद तो हम चौदहों ब्रह्माण्डों को थरथरा देंगे। फिर तू ऐसी बात क्यों कह रहा है ?"

कुंभकर्ण बोला, "जो मुझे लग रहा है, मैं वही कह रहा हूं।"

रावण ने पूछा, "तो क्या तुम्हें ब्रह्मा ने वरदान नहीं दिये ?"

कुंभकर्ण बोला, "वरदान तो दिये हैं..."

रावण बीच ही में पूछ बैठा, "तो क्या तुमने जो मांगे, सो नहीं दिये ?"

कुंभकर्ण बोला, "वही दिये, जो हमने मांगे।"

रावण ने अधीर होकर कहा, "तो क्या मैं यह समझूं कि तुम्हें वरदान मांगना ही नहीं आया ?"

कुंभकर्ण ने जवाब दिया, "भैया ! आपने ठीक ही समझा है। सच-मुच हमें कुछ मांगना ही नहीं आया।"

विभीषण बीच ही में बोल उठा, "भैया ! मैं तो मांगना जानता हूं। और मुझे जो मिला है, उसके लिए मेरे मन में कोई पछतावा नहीं है।"

विभीषण के ये शब्द सुनकर कुंभकर्ण उत्तेजित हो उठा। बोला, "बस-बस, रहने भी दे ! इतने वर्षों तक तप कर-करके कंचन-सी काया को घुला डाला और मांगी तो धूल मांगी ! ऐसी धर्मबुद्धि को लेकर जीवन में क्या करना है ?"

रावण से रहा नहीं गया। बोला, "कुंभकर्ण ! मैं तेरी बात समझ नहीं पाया। मुझे यह तो बता कि तुम दोनों को ब्रह्मा ने कौन-कौन से वर-दान दिये हैं ?"

कुंभकर्ण सिर हिलाते हुए बोला, "भैया ! हमारे वरदानों में कोई दम नहीं है। आपका वरदान दमदार लगता है, इसलिए पहले आप अपने वरदान की बात कहिए।"

रावण ने दोनों भाइयों के हाथ पकड़ कर उन्हें नीचे बैठाया और कहने लगा, "दम हो चाहे न हो, मैंने तो पितामह से मांगा है कि मैं देव, दानव, गंधर्व आदि किसी के हाथों न मरूं।"

विभीषण के मुंह से अचानक निकला, "और आर्य मनुष्यों के

हाथों ?"

रावण तुरन्त भड़भड़ाकर बोला, "भाई ! अपने मुंह से ऐसी बात कहते हुए तू लजाता नहीं ? बेचारे आर्य ! जानता हूं कि आर्यों, वानरों आदि के पास दो हाथ, दो पांव और एक सिर है; पर इससे होता क्या है ? मेरी निगाह में तो वे लोग तिनके के समान हैं। ऐसे क्षुद्र जीवों के हाथ रावण मरेगा, इसकी कल्पना भी न जाने क्यों तेरे मन में आती है ! मेरे विचार में तो उन बेचारों की कोई गिनती ही नहीं है।"

कुंभकर्ण ने कहा, "भैया ! विभीषण की तो यह पुरानी आदत है। आपकी बात बिलकुल सच है। यह मानने की जरूरत ही क्या है कि ये आर्य जी रहे हैं? लेकिन भैया ! आपने बढ़िया वरदान मांगा। अब आप-को कोई मार ही नहीं सकेगा। तब तो आपको किसी का कोई डर ही न रहा !"

रावण ने मूंछों पर हाथ रखते हुए कहा, "हां, यही बात है !"

कुंभकर्ण बोला, "अब आप इस दुनिया में जो चाहेंगे, सो कर सकेंगे ! वरदान मांगना भी आना चाहिए ! भाई ! जब ब्रह्मा हमारे पास आये थे, उस समय हमने आपको बुला लिया होता, तो कितना अच्छा होता !"

रावण ने पूछा, "अच्छा, कुंभकर्ण ! बता तुझे कौन-सा वरदान मिला है ?"

सिर खुजलाते हुए कुंभकर्ण कहने लगा, "मुझे तो जो मिला है, उसे न मिला ही समझो।"

रावण-बोला, "लेकिन कह तो सही कि क्या मिला है ?"

कुंभकर्ण ने कहा, "भैया ! मुझे तो सदा की नींद मिली है।"

रावण ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा, "नींद ? तुझे और कुछ नहीं सूझा, जो नींद मांग ली ?"

कुंभकर्ण दीन स्वर में बोला, "मांगी नहीं, बल्कि मंग गई। मुझे तो इंद्र का इंद्रासन मांगना था, पर फिर मन में विचार उठा कि इंद्रासन का उपभोग करने के चक्कर में कौन पड़ेगा ? मुझे तो इंद्रासन भी चाहिए और हैरानी नाम को भी नहीं चाहिए। इंद्रासन तो सही, पर हैरानी बिलकुल नहीं, मन में यही उधेड़बुन चल रही थी और ब्रह्मदेव सामने

खड़े थे। इसी बीच मेरे मुंह से 'निंद्रासन' शब्द निकल पड़ा और पितामह ने 'तथास्तु' कह दिया !"

रावण ने पूछा, "अब हम क्या करेंगे ?"

कुंभकर्ण ने जवाब दिया, "बस, नींद लेंगे। आप चौदह ब्रह्मांडों में घूमते रहिए और मैं आराम से सोता रहूंगा।"

रावण ने पूछा, "लेकिन क्या तू जीवन-भर सोता ही रहेगा ? तेरे उस जीवन में स्वाद क्या होगा ?"

कुंभकर्ण ने हँसकर कहा, "आप स्वाद की बात पूछते हैं ? दुनिया में स्वाद नाम की कोई चीज़ है भी ? आप अमर बनकर मार-काट करते रहेंगे, उसमें कौन-सा स्वाद होगा ? भैया ! स्वाद कहीं है, तो वह नींद में है। नींद तो मौत की छोटी बहन होती है। जो स्वाद मौत में है, वह और कहां है ? दुनियादारी की आंच में झुलसे-जले लोग मौत की गोद में पहुंचकर विश्राम करते हैं। मुझे तो सबकुछ भूलकर छह महीनों तक मरे हुए की तरह सोना है। यह मेरा निद्रासन है । वर्ष में दो बार जागने पर पूरे वर्ष का आहार ले लिया करूंगा।"

रावण ने कहा, "कुंभकर्ण ! तुझे मांगना तो आया नहीं, लेकिन खैर, फिकर की कोई बात नहीं। तुझे जागने और खाने के लिए जो दो दिन मिलेंगे, उनमें तू बारह महीनों के दुश्मनों को खा लिया करना। मुझे तो यह बिलकुल आसान मालूम होता है। अच्छा, विभीषण ! अब तू अपने वरदान की कह।"

अपने आसन पर बायां हाथ टिकाकर और तनकर बैठा विभीषण बोला, "भैया ! मैंने पितामह से मांगा, 'मेरी बुद्धि धर्म में स्थिर रहे।' और ब्रह्मा ने कहा, 'तथास्तु !' "

विभीषण की यह संक्षिप्त किंतु प्रमाणभूत बात सुनकर रावण से रहा न गया। वह बोला, "विभीषण ! तू तो अभी तक निरा पोथी पंडित ही बना हुआ है ! इतनी तपश्चर्या के बाद भी क्या हमें अपनी बुद्धि में विश्वास नहीं, जो दूसरा कोई उसे स्थिर करे ? तू नहीं जानता कि अब इस दुनिया में धर्म-अधर्म के बाटों की हेराफेरी का काम हमें करना है। तू नहीं जानता कि अबतक जो लोग धर्म-अधर्म की व्यवस्था प्राप्त करने के लिए देवों

के पास जाया करते थे, वे अब हमारे पास आनेवाले हैं। तुझे पता नहीं कि अब हम सबको धर्म का अनुसरण नहीं करना है, बल्कि स्वयं धर्म हमारा अनुसरण करेगा। विभीषण ! थोड़े ही समय में मैं तुझे दिखा दूंगा कि हम राक्षस जो भी कुछ करेंगे, वह धर्म माना जायगा और उसके आधार पर धर्म-अधर्म के नए शास्त्रों की रचना होगी। तेरी बुद्धि को धर्म में स्थिर रखनेवाला और कौन होगा ? हमारी बुद्धि जिस विषय में स्थिर होगी, वही धर्म कहलायेगा।"

रावण की ये बातें सुनकर विभीषण अधिक दृढ़ता से बोला, "धर्म तो संसार के सनातन नियमों पर सदा निर्भर है। उसे न देवों की व्यवस्था की परवा है और न हमारी परवा है। मानव-जीवन के ये सनातन नियम किसी के बदले बदलते नहीं। भैया ! देश-काल के बदलने पर धर्म का बाहरी रूप कितना ही क्यों न बदल जाय, फिर भी सनातन नियमों का हार्द कभी नहीं बदलता। इन सनातन नियमों को ध्यान में रखकर मैं अपना जीवन विताता रहूं, इससे अधिक मैंने कुछ भी नहीं मांगा है।"

विभीषण के ये वचन सुनकर रावण थोड़े समय के लिए चुप रहा, फिर बोला, "विभीषण ! तेरी पंडिताई से मैं कौन अपरिचित हूं ? लेकिन तुझे समझना चाहिए कि रावण ने भी चारों वेदों का अध्ययन किया है। देख, हम राक्षस तो शक्ति के पुजारी हैं। संसार के निकम्मे लोगों ने धर्म नाम पर निर्वीर्यता का जो जाल फैला रखा है, उसे हमें तोड़ना है। हमें प्रकृति के बलों को पहचानकर उनका उपयोग करना है। केवल हाथ-पैर जोड़कर ईश्वर का गुणगान करते रहना ही हमारा मार्ग नहीं है। मात्र हमारे अनुनय-विनय से प्रसन्न होनेवाले ईश्वर की भी हमें आवश्यकता नहीं है !"

रावण के ये विचार सुनकर कुंभकर्ण हर्षावेश में खड़ा हो गया और बोला, "भैया ! मैं भी विभीषण को यही बात कह रहा था। मात्र मेरी जीभ पर आपके ये शब्द आ नहीं रहे थे।"

रावण कहने लगा, "विभीषण ! तू यह समझ ले कि आजतक इन नामधारी ऋषियों और ब्राह्मणों ने जीवन के जो मूल्य हमारे सामने रखे थे, उन्हें हमें ठुकरा देना होगा। मेरे लिए यही पर्याप्त है कि तू हमारे इस राक्षस-धर्म में स्थिर रहे।"

विभीषण बोला, "भैया ! आप और कुंभकर्ण दोनों ठीक क्या कहना चाहते हैं, सो तो मैं समझ नहीं सका हूं, पर मैं अपनी बात थोड़ी और स्पष्ट करूं। संसार में भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक जीवन के कुछ निश्चित नियम अपना काम करते रहते हैं। इन सब नियमों का ताल-मेल बैठाकर जीने को मैं धर्म-जीवन कहता हूं। यह धर्म न ब्राह्मण-धर्म है और न राक्षस-धर्म है; इसका सच्चा नाम तो मानव-धर्म है। इस मानव-धर्म को क्षति पहुंचाकर जीवन का एक भी काम करने की इच्छा मेरे मन में प्रकट न हो, यही मैंने ब्रह्मा से मांगा है। मैं न तो नामधारी ब्राह्मण-धर्म को पहचानता हूं और न राक्षस-धर्म को पहचानना चाहता हूं। मैं तो इस मानव-धर्म को पहचानता हूं, और पहचानना चाहता हूं।"

कुंभकर्ण हंसकर बोला, "तेरा मानव-धर्म हमने कहीं देखा नहीं। तू तो पागल हो गया है। भैया ! छोड़ो न इसका नाम ? आखिर यह हमें छोड़कर जायगा कहां ? जिस दिन अपने भाइयों को छोड़कर शत्रु की सहायता करने का मानव-धर्म विभीषण के दिल में प्रकट होगा, क्या उस दिन हमारे दिलों में कोई तीसरा धर्म प्रकट नहीं होगा ?"

कुंभकर्ण के मना करने पर भी रावण बोला, "भाई ! तेरी बात तो ठीक है, लेकिन सही दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि हमारे वरदानों ने हमें एक-दूसरे से अलग कर दिया है। मेरा अपना मनोरथ तो यह है कि मैं एक बार इन देवों, गंधर्वों, यक्षों आदि को हराकर इनके सिर पर अपना पैर रखूं और सारे संसार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करूं ! अपने इस मनोरथ को पूरा करने में मुझे तुम दोनों का सहारा चाहिए, किंतु तू धर्म में फिसल पड़ा और यह कुंभकर्ण नींद में फंस गया। अब मैं अकेला कहां-कहां अपने हाथ-पैर फैलाऊंगा ?"

आंख मलते हुए कुंभकर्ण बोला, "भैया ! आपने वेद पढ़े हैं, इसलिए आप बहुत सूक्ष्म बातें करते रहते हैं। मैं तो एक ही बात समझता हूं। आप दुनिया में अपना डंका बजाने को निकल पड़िए और हम दोनों को अपनी बगल में खड़ा समझिए। क्यों, विभीषण ?"

विभीषण ने कहा, "ऐसी किसी भी विजय में मैं आपके साथ ही हूं, जिसमें मानव-समाज के कल्याण-कार्य में कोई बाधा न पहुंचती हो।"

रावण से नहीं रहा गया, वह बोला, "कुंभकर्ण ! तू समझता नहीं। पर मैं इस विभीषण को अच्छी तरह समझा हूं। यदि मैं हम सबके लिए किसी राजा से उसका राज छीनूंगा, तो विभीषण उसमें मेरी मदद नहीं करेगा। क्यों, विभीषण, मैं ठीक कह रहा हूं न ?"

विभीषण ने कहा, "आप बिना कारण किसी का प्रदेश छीनेंगे, तो मैं आपकी कोई मदद नहीं करूंगा।"

कुंभकर्ण गरजा, "लेकिन हमें उस प्रदेश की आवश्यकता है, क्या यही सबसे बड़ा कारण नहीं है ?"

विभीषण ने जवाब में कहा, "इतना ही पर्याप्त नहीं। विश्व पर जितना अधिकार हमें है, उतना ही दूसरे प्राणियों को भी है।"

कुंभकर्ण बोला, "लेकिन हमारा अधिकार तो है, है और है ही ! दूसरे का हो, तो भले हो।"

इस बीच रावण ने ऊब कर कहा, "भाइयो ! अब इस समय तो इस बात को छोड़ो। आज की हमारी यह चर्चा तो व्यर्थ ही रही है, किंतु मैं अनुभव कर रहा हूं कि हमारे ये वरदान, वरदान नहीं, छिपे शाप हैं।"

विभीषण बोला, "भैया ! मेरा वरदान तो ब्रह्मा से मेरी एक विनती-भर है। पर आपका वरदान सच्चा वरदान है। और, जैसाकि आप कहते हैं, उसके गर्भ में शाप छिपा हो, तो मैं उससे इनकार नहीं कर सकता। इतिहास के जानकार लोग कहते हैं कि दुनिया में जिन-जिन लोगों ने वरदान के बल से दूसरों को कुचलने के प्रयत्न किये हैं, वे अंत में नष्ट ही हुए हैं।"

रावण उत्तेजित हो उठा। बोला, "विभीषण ! अब तू मर्यादा छोड़-कर आगे बढ़ रहा है।"

बीच में कुंभकर्ण बोल उठा, "अभी तो हमने वरदान-प्राप्ति का अपना उत्सव भी नहीं मनाया है। ऐसी स्थिति में आप दोनों यह शाप-वाली बात कहां से ले आये ? क्या आपको और कोई धंधा ही नहीं है ? अच्छा हुआ कि मैं वरदान अथवा शाप की इस उपाधि से बच गया। मुझे तो बस, सोते ही रहना है, और आपको यह सारी सिर पच्ची करनी है। भैया ! आज तो अब जी-भरकर खाना है।"

वरदान की तरफ आंख उठाकर देखते हुए विभीषण बोला, "हमारे

सिर पर ही बरगद के ये कितने सुंदर फल लटक रहे हैं ? इनका रंग भी कितना मनोहर है !"

विभीषण के ये शब्द सुनकर कुंभकर्ण खीझ उठा। उसने कहा, "विभीषण! तू सगा भाई न होता, तो मैं तुझे इसी क्षण मारकर खा जाता। इतने वर्षों तक न भूख जानी, न प्यास जानी, और आज जब मैं आनंद-भोज की बात करता हूं, तो तू मुझे बरगद के फल दिखा रहा है ? क्या तू नहीं जानता कि हमारे पेट का गड्ढा भरने के लिए तो न जाने कितने भैंसे, बकरे और गधे तैयार होकर घूम रहे होंगे ! क्या कैकसी के पुत्र बरगद के फल खाने को पैदा हुए हैं ? मुझे तो कोई दाढ़ीवाला मिल जाय, तो मैं पहला आहार उसी का करूं !"

रावण बोला, "भाई ! तू ठीक कहता है। ऐसी कड़ी तपश्चर्या के बाद तो अब हमें जीवन-भर भोग-विलासों में ही फंसना है। भोग-विलासों का सुख लूटने के लिए आवश्यक शक्ति और तीव्रता हमने कमा ली है। तपश्चर्या कर चुकने के बाद भी जब इंद्रियों के भोगों को भोगने की घड़ी आये, उस समय डरकर पीछे हटना अथवा डरते-डरते उनका उपभोग करना, यही यदि विभीषण का धर्म है, तो उसे मुबारक हो ! हमें तो खाना है, पीना है और दुनिया के मालिक बनकर ठाठ से रहना है !"

यों कहकर रावण गोकर्ण के आसपास के क्षेत्र में शिकार की खोज के लिए निकल पड़ा।

: २ :

राक्षसकुल-भूषण

विश्रवा और कैकसी श्लेष्मातक वन में अपना एक आश्रम बना करके वहीं रहते थे। रावण, कुंभकर्ण और विभीषण गोकर्णतीर्थ से वापस आकर

श्लेष्मातक वन में रहने लगे। रावण आदि को ब्रह्मा से वरदान मिलने के समाचार पाताल तक पहुंच गये। राक्षसों का मुखिया सुमाली इन समाचारों को सुनकर तुरंत अपने नातियों से मिलने श्लेष्मातक वन में आया।

एक दिन सुमाली, कैकसी और तीनों भाई एकांत में बैठे थे। तभी सुमाली ने चर्चा छेड़ी, "बेटी ! अब ये रावण-कुंभकर्ण इस वन में कब-तक रहेंगे ?"

कैकसी बोली, "उनका घर है, वे जब तक चाहें, रहें।"

सुमाली ने कहा, "तू इतनी सयानी होकर ऐसी बात क्यों कहती है ? अब ये लोग बालक तो हैं नहीं । तूने इन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया है, इनसे तप करवाया है, तीनों के विवाह भी करवा दिये हैं। अब तो इन्हें पराक्रम से अपना स्थान बना लेना चाहिए। समय पाकर पराक्रमी पुत्र माता-पिता का आश्रय छोड़कर अपना स्वतंत्र निवास-स्थान बना लेते हैं।"

रावण बोला, "नानाजी ! आप ठीक कह रहे हैं। स्वयं मुझे भी अब यहां अच्छा नहीं लग रहा है। इस आश्रम में मुझे ऐसा लगता है, मानो मेरा दम घुटा जा रहा हो।"

सुमाली ने कहा, "ऐसा लगना स्वाभाविक ही है। तुझे भी लगेगा और तेरी मंदोदरी को भी लगेगा। तुम्हें तो अब अपनी शक्ति से अपना मार्ग खोज लेना चाहिए।"

रावण बोला, "किंतु नानाजी ! ऐसा कोई स्थान मुझे कहीं दीख नहीं रहा है।"

सुमाली तनिक तेज होकर बोला, "आंखें खोलकर देखेगा, तभी न दिखाई पड़ेगा या आंखें मूंदकर बैठे रहने से दीखेगा ? स्थान तो विश्व में हजारों पड़े हैं। केवल तेरे देखने-भर की देर है।"

रावण ने कहा, "तो आप मुझे ऐसी एकाध जगह सुझाते क्यों नहीं हैं ?"

सुमाली बोला, "रावण! तू स्थान, स्थान की यह रट क्यों लगाये हुए है ? देख, यह लंका भी तो एक स्थान ही है। कभी, किसी दिन उस पर निगाह दौड़ाई है ?"

रावण ने कहा, "लेकिन लंका में बड़े भैया कुबेर जो रहते हैं ?"

सुमाली कुछ उत्तेजित होकर बोला, "देखा है, तेरा बड़ा भाई ! कुबेर कहीं और चला जायगा।"

रावण ने कहा, "बड़े भैया को दूसरी जगह जाना पड़े, क्या इससे अच्छा यह नहीं कि मैं ही और कहीं चला जाऊं ?"

सुमाली खिन्नता-सूचक स्वर में बोला, "कैकसी ! मैंने कभी माना नहीं था कि तेरा रावण भी ऐसा पठित मूर्ख निकलेगा। रावण ! अब तू बड़े भाई और छोटे भाई की इन बातों को भूल जा। मैं तुझसे कुछ कहूं ? तू जानता है, लंका तेरे बड़े भाई की कैसे हुई ?"

रावण ने कहा, "उन्होंने जीती होगी।"

सुमाली बोला, "वे क्या जीतेंगे ? यह लंका असल में तो हम राक्षसों की ही थी। विश्वकर्मा ने यह सारी नगरी विशेष रूप से हमारे लिए बनाई थी। वहां रहकर हम चौदहों लोकों को कंपाते थे।"

रावण ने पूछा, "तो फिर लंका हमने छोड़ क्यों दी ?"

सुमाली बोला, "क्या हमने अपनी मरजी से छोड़ी है ! विष्णु ने हमें हरा दिया, इसलिए लंका छोड़नी पड़ी। जब लंका में रहना कठिन हो गया, तो हम सब पाताल में जा घुसे और तेरा बड़ा भाई उस उजड़ी लंका में जाकर बस गया। अब हमें लंका फिर जीत ही लेनी चाहिए।"

रावण ने कहा, "नानाजी ! मैं बड़े भैया से बात करके देख लूं।"

सुमाली से रहा नहीं गया। वह बोला, "रावण ! तुझे बात करनी हो, तो तू भले ही कर ले; लेकिन ऐसी खोखली बातों से इस दुनिया में कुछ होनेवाला है नहीं। ऐसी बातों के पीछे हमें अपनी तराजू में तलवार तौलनी चाहिए। देश-विदेश में नई बस्ती बसानेवालों से जाकर पूछ ले। बस्ती बसानी हो तो उसका सबसे पहला और एक-मात्र मंत्र है 'अंदर घुसो', बात-वात सब उसके पीछे घसिटती चली आयेगी !"

रावण ने पूछा, "तो क्या बड़े भैया को खबर किए बिना ही अचानक लंका में घुसना होगा ?"

सुमाली ने कहा, "रावण ! तू ये सारी बातें क्यों पूछ रहा है ? जो समूची दुनिया को अपने अधीन करने की अभिलाषा रखता है, क्या वह इस तरह पूछ-पूछकर कदम बढ़ावेगा ? संसार की छाती पर साम्राज्य की

स्थापना करनेवालों से पूछकर देख। वे लोग सबसे पहले प्रहार ही करते हैं। प्रहार करते समय जिसका हाथ कांपता है, वह भला स्वराज्य की स्थापना क्या करेगा ?"

रावण बोला, "नानाजी ! आप बहुत ठीक कहते हैं। आपकी बात मेरी समझ में तो आ रही है।"

सुमाली उत्साह में आकर कहने लगा, "रावण ! तू तो सीधा लंका पहुंच जा और उसे हड़प कर ले। जब तेरा भाई पूछने आवेगा, तो हम देख लेंगे। मैंने सुना है कि कुबेर धर्म-प्राण व्यक्ति है और अधर्म करते डरता है। धर्म-भीरु लोगों के देश को हड़प करना बहुत आसान है। ऐसे लोगों पर पहले तो सीधा प्रहार ही करना चाहिए और जब प्रहार को लेकर झगड़ा खड़ा हो, तो समझौते की बातचीत शुरू कर देनी चाहिए। साम्राज्य-स्थापना की यही कुंजी है।"

रावण बोला, "नानाजी ! आप बिलकुल सच कह रहे हैं। मेरे मन में सारे संसार का स्वामी बनने की महत्त्वाकांक्षा है। मेरे इस मनोरथ की पूर्ति में जो कोई भी बाधक बनेगा, उसे मैं कभी बरदाश्त नहीं करूंगा। मां ! नानाजी ठीक कह रहे हैं।"

कैकसी ने कहा, "बेटा ! मैं ये सारी बातें कहां समझ पाती हूं ? तू अपने पिता से पूछ लेना।"

सुमाली बोला, "बेटा रावण ! मेरी सलाह मुझे वापस दे दे। तुम सबको जो ठीक लगे, सो तुम करो। अब तू कैकसी से पूछ-पूछकर अपने साम्राज्य की स्थापना कर लेना।"

कैकसी ने कहा, "पिताजी ! यों गुस्सा मत कीजिए। मैं आपकी ये बातें समझती कहां हूं ?"

सुमाली गरम होकर बोला, "नहीं समझती है, तो फिर कहती क्यों नहीं कि जो मैं कह रहा हूं, वही वह करे। हम पर तुम लोगों का विश्वास ही कहां रह गया है ?"

कैकसी ने कहा, "बेटा रावण ! तू वही कर, जो पिताजी तुझसे कह रहे हैं।"

सुमाली उठते-उठते बोला, "रावण ! मैं जाता हूं। तू समझ ले कि

जब भी मेरी जरूरत होगी, मैं हाजिर हो जाऊंगा। मुझे विश्वास है कि तू समझदार है, इसलिए अपनी मां की निर्बलता के आगे तू झुकेगा नहीं।"

... ...

कुछ दिनों के बाद रावण ने लंका पर हमला किया और कुबेर अपने पिता की सलाह से लंका खाली करके हिमालय पर रहने चला गया। जैसे ही लंका रावण के हाथ में आई, सुमाली के सारे राक्षस लंका में आकर बस गये और सबने मिलकर बड़ी धूमधाम के साथ रावण का राज्याभिषेक कर दिया। रावण ने कुंभकर्ण के सोने के लिए लंका में बड़ा भारी तलघर बनवा दिया। विभीषण और उसकी स्त्री सरमा दोनों लंका में आकर रहने लगे।

... ...

एक बार रावण लंका के सभागृह में बैठा था। तभी एक नौकर ने आकर समाचार दिया, "महाराज ! अलकानगरी से कोई आदमी आया है और आपसे मिलना चाहता है।"

रावण ने पूछा, "अलकानगरी से ?"

नौकर ने जवाब दिया, "जीहां, अलकानगरी से। कहता है कि आपके बड़े भाई कुबेर ने भेजा है।"

जैसे कोई बात याद आ गई हो, ऐसे स्वर में रावण सहसा बोला, "हां-हां, अलकानगरी से ! ठीक, मालूम होता है, बड़े भाई ने भेजा है। लंका अभी बड़े भैया के दिमाग से निकली नहीं लगती है। अच्छा, उसे अंदर ले आओ।"

रावण की आज्ञा होते ही अलकानगरी का यक्ष सभा में उपस्थित हुआ और रावण को प्रणाम करके खड़ा रहा। यक्ष की ओर एक दृष्टि डालकर रावण ने पूछा, "तू कौन है ? कहां से आया है ?"

यक्ष बोला, "जी, मैं यक्ष हूं। अलकानगरी से आया हूं।"

रावण ने पूछा, "क्या मेरे बड़े भाई कुबेर ने भेजा है ?"

यक्ष ने कहा, "जीहां। यक्षराज कुबेर ने आपके लिए आशीर्वाद भेजे हैं और मेरे द्वारा कहलवाया है कि..."

रावण ने सामने देखकर पूछा, "क्या कहलवाया है ?"

यक्ष बोला, "कहलवाया है, 'रावण ! तुम लोगों को सताने लगे हो। सताना बंद करो। विश्रवा के कुल में यह शोभा नहीं देता।' "

यक्ष के ये वचन सुनते ही रावण लाल-पीला होकर बोला, "दुष्ट ! तुझे होश भी है कि तू किसके सामने खड़ा है और क्या बक रहा है ? मुझे सीख देनेवाला तू होता कौन है ?"

यक्ष ने अत्यंत नम्रतापूर्वक कहा, "महाराज ! मैं तो केवल संदेशा पहुंचाने वाला दूत हूं।"

आपे से बाहर होकर रावण बोला, "चुप रह ! तेरे समान अति चतुर की क्या गति होती है, सो तू अभी देख लेगा। अनुचर! इस दुष्ट को ले जाओ और अपने राक्षसों को हुक्म दो कि वे इसे एकदम फाड़कर खा जायं !"

रावण का हुक्म होते ही एक राक्षस भय से थरथर कांपते हुए यक्ष को उठाकर ले गया। बाद में रावण सभागृह के विश्रामासन पर पड़ा-पड़ा बोलने लगा, "भैया ! अब मुझे आपकी चतुराई की आवश्यकता नहीं रही। सच तो यह है कि मेरी प्रतिष्ठा बढ़ती देखकर आपके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हो रही है। मेरी गलती यही हुई कि मैंने आपको लंका से सही-सलामत जाने दिया। अब मुझे कैलास तक अपने हाथ फैलाने पड़ेंगे !' "

... ...

कुबेर बोला, "रावण ! वह बात तो अब बहुत पुरानी पड़ गई कि जब तूने मेरे दूत को जिंदा ही फड़वा कर खिलवा दिया था। किंतु आज तूने मेरे सेनापति को मार डाला, मेरे द्वारपाल का खात्मा कर दिया, मेरी ही नगरी में मुझसे बिना पूछे प्रवेश किया और मेरे मणिभद्र को मूर्च्छित कर दिया—इन सब बातों के लिए ही मुझे स्वयं तेरे पास आना पड़ा है। मेरी इच्छा तो यह रही कि छोटा भाई मेरे घर-दरवाजे आये, तो मैं बाजे-गाजे के साथ उसकी अगवानी करूं और उसे अपने राज्य का भागीदार बनाऊं। किंतु रावण ! तुझे तो सबकुछ उलटा ही-सूझता दीख रहा है।"

रावण ने कहा, "कुबेर ! मेरी महत्त्वाकांक्षा यह है कि मैं सारी दुनिया पर अपनी सत्ता स्थापित करूं। मुझे आपको स्पष्ट जता देना चाहिए कि जिसके मन में सत्ता की आकांक्षा होती है, उसका अपना न कोई भाई होता है, न बहन होती है और न भागीदार ही होता है ! ये सब तो बेढंगे लोगों

की अपनी बातें हैं। आवश्यकता होने पर हम भी इनका उपयोग जरूर कर लेते हैं। लेकिन वैसे देखा जाय, तो सत्ता की स्थापना करनेवाले के निकट भाई, बहन, मित्र, सगे-संबंधी, ये सब शतरंज के मोहरे-भर हैं। कुबेर ! आपके दूत की मेरे मन में कोई कीमत ही न थी। मैंने आपके दूत को नहीं मरवाया; मैंने तो आपकी प्रतिष्ठा को मरवा डाला है ! मुझे यही करना था। मैंने यही किया है। अब आज मैं आपसे लड़ने आया हूं। या तो मुझसे लड़ने के लिए तैयार हो जाइए या स्पष्ट शब्दों में स्वीकार कर लीजिए कि आप मुझसे हार चुके हैं।"

इसके बाद रावण और कुबेर के बीच युद्ध हुआ। युद्ध में यक्षराज कुबेर हार गया और रावण कुबेर के पुष्पक विमान का हरण करके चला गया।

... ...

हिमालय के कैलास पर्वत पर शंकर और पार्वती का निवास था। कैलास के पास शरवण नामक वन था। इस वन के विषय में आम धारणा यह थी कि जो कोई भी पुरुष इसके अंदर प्रवेश करता था, वह स्त्री बन जाता था। एक बार रावण पुष्पक विमान में बैठकर शरवण के पास पहुंचा, पर स्त्री बन जाने के डर से वह अंदर नहीं गया। शरवण के द्वार पर महादेव का नंदी खड़ा था। नंदी का वानर-सा मुंह और छोटे-छोटे हाथ देखकर रावण को हँसी आ गई। इस पर नंदी खीजा और बोला, "अरे मूर्ख ! हँसता क्यों है ?"

रावण ने हँसते-हँसते ही जवाब दिया, "सुन, नंदी ! वानर का-सा तो तेरा मुंह है ! और छोटे-छोटे तेरे हाथ हैं। तेरी यह सूरत-शकल इतनी बेडौल है कि मैं हँसे बिना रह नहीं सकता। और एक तू है कि अपने को बहुत सुंदर मानकर दरवाजे पर खड़ा है ! पता नहीं, महादेव ने तुझ-जैसे दुर्बल को क्यों अपना सेवक बना रखा है ?"

रावण के ऐसे अपमान-भरे शब्द सुनते ही नंदी का हृदय क्षुब्ध हो उठा। उसने कहा, "रावण ! तुझे अपने बल का अभिमान हो गया है। ब्रह्मा के वरदान से तेरा दिमाग ठिकाने नहीं रहा है। क्या वानर का-सा मुंह दुर्बल की निशानी है ! क्या छोटे-छोटे हाथ भी दुर्बलता के लक्षण हैं ?

रावण ! ईश्वर की दुनिया में क्या सबल है और क्या दुर्बल, इसका निर्णय करना आसान नहीं है। तू भले ही आज अपने को सबल मानता हो; किंतु याद रखना, दुनिया में सबलों के अभिमान को दुर्बलों ने ही चूर-चूर किया है।"

नंदी के ये शब्द सुनकर रावण फिर एक बार खिलखिलाकर हंसा और बोला, "जान दुर्बल की और क्रोध देखो तो रुद्र का !" फिर सहज अभिमान-भरे स्वर में कहा, "अरे ओ नंदी ! खड़ा रह। मैं तुझे भी अपना हाथ दिखा दूं।"

यों कहकर रावण ने समूचे कैलास-शिखर को अपने हाथों उठाने का प्रयत्न किया। रावण ने कैलास के मूल में अपनी अंगुलियां डालकर जो जोर लगाया, तो कड़कड़ाती आवाज के साथ सारा कैलास हिल उठा।

इसी बीच महादेव ने कैलास के शिखर को इतना वजनदार बना दिया कि रावण उसे उठा तो नहीं सका, उलटे उसकी अपनी अंगुलियां बुरी तरह दबने लगीं और वह स्वयं उसकी पीड़ा से चीखने-चिल्लाने लगा।

इस तरह रावण को अपनी शक्ति का परिचय देकर शंकर ने कैलास को फिर हल्का बना दिया। इस पर रावण ने कैलास के नीचे से अपनी अंगुलियां निकाल लीं और वह शरम का मारा सीधा लंका की ओर चला गया।

... ...

एक बार रावण घूमता-फिरता गंधमादन पर्वत पर पहुंच गया। वहां वेदवती नामक एक कुमारिका तप कर रही थी। वेदवती ने रावण का स्वागत-सत्कार किया। आश्रम के एक छायादार वृक्ष के नीचे उसके लिए आसन बिछा दिया और स्वयं उसके सामने बैठ गई।

वेदवती ने पूछा, "आप कौन हैं ? यहां क्यों पधारे हैं ?"

जवाब में रावण बोला, "मेरा नाम रावण है। मैं कैकसी का पुत्र और सुमाली का नाती हूं। मुझे ब्रह्मा ने वरदान दिया है, इसलिए अमर-सा बनकर दुनिया में घूमता-फिरता हूं। आप अपना परिचय देंगी ?"

वेदवती बोली, "अवश्य दूंगी। मैं कुशध्वज राजा की पुत्री हूं। मेरा नाम वेदवती है। मैं इस गंधमादन पर्वत पर तप करने आई हूं।"

वेदवती के लावण्य से मोहित होकर रावण बोला, "भद्रे ! आपके लिए तो मेरे समान न जाने कितने बेचारे तप कर रहे होंगे। आप किसके लिए तप कर रही हैं ?"

वेदवती बोली, "रावण ! सारे संसार के परमपुरुष विष्णु को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए मैं तप कर रही हूं। उन्हें मैंने मन-ही-मन अपना पति माना है—चाहे वे इस जन्म में मिलें या अगले जन्म में।"

वेदवती की बातों पर हंसता हुआ रावण बोला, "भद्रे ! मैं मान नहीं सकता कि इतने सुंदर शरीर में ऐसी जड़-बुद्धि रह सकती है। लोग 'विष्णु, विष्णु !' रटते तो हैं, पर कोई मुझे दिखाता नहीं कि 'यह विष्णु है' ! मैं भी उसी को खोज रहा हूं। किंतु मधुरी ! क्या आप इस दीन सेवक को स्वीकार करेंगी ? मैं आपको लंका की पटरानी बनाऊंगा और आपकी हर आज्ञा का पालन करूंगा।"

रावण के ऐसे वचन सुनकर वेदवती को अचानक क्रोध हो आया। वह बोली, "रावण ! क्या तुम्हें इतनी भी अक्ल नहीं कि कहां, क्या बोलना चाहिए ? मैं कहती हूं कि अपने मन में मैं विष्णु का वरण कर चुकी हूं।..."

रावण के कान पर वेदवती के अंतिम शब्द पहुंचते-पहुंचते वह बोल उठा, "वेदवती ! मेरे शब्दकोश में 'मन से वरण' आदि शब्दों का अर्थ कुछ और है। मैं तो निश्चित रूप से समझता हूं कि रावण जिस स्त्री से विवाह करना चाहता है, वह स्त्री रावण की है; दूसरे किसी की नहीं। वैसे, अपने मन से तुझे एक नहीं, एक हजार विष्णुओं का वरण करना हो, तो रावण को उसमें क्या आपत्ति हो सकती है !"

यों कहकर रावण ने वेदवती की चोटी पकड़ी और वह उस पर अत्याचार करने जा ही रहा था कि इतने में वेदवती की देह से योगाग्नि प्रकट हुई और वह उसमें भस्म हो गई।

बेचारा रावण चकित होकर देखता रह गया !

... ...

यमुना नदी के किनारे पर मरुत्त राजा यज्ञ कर रहा था। बृहस्पति का भाई संवर्त गुरुपद संभाले था। मरुत्त राजा के यज्ञ में सब देवता परो-

सने का काम कर रहे थे। यज्ञ धूमधाम के साथ चल रहा था। इसी बीच एक नौकर ने आकर कहा, "महाराज ! बाहर रावण आया है और वह आपको युद्ध के लिए बुला रहा है।"

रावण का नाम सुनते ही राजा मरुत्त ने अपने हाथ की आहुति छोड़ दी और वे उठने लगे। तभी संवर्त ने कहा, "राजन् ! आप जा नहीं सकेंगे। क्या आप भूल गए हैं कि आपने यज्ञ की दीक्षा ली है?"

मरुत्त बोला, "किंतु गुरुदेव ! ब्रह्मा का वरदान पाकर यह रावण मदोन्मत्त बना घूम रहा है। यह अपने मन में सोच रहा होगा कि मरुत्त को भी जल्दी ही हरा दूं। आप अनुमति दें, तो मैं थोड़ी ही देर में उसे ठिकाने लगाकर वापस आ जाऊं।"

संवर्त ने कहा, "यों अनुमति नहीं दी जा सकती। यज्ञ की दीक्षा तो दीक्षा ही है।"

मरुत्त बोला, "मैं विवश हूं। भाई ! तू जाकर रावण से कह दे कि गुरुदेव अनुमति नहीं दे रहे हैं, अतएव मरुत्त लड़ने के लिए आ नहीं सकता।"

नौकर ने हाथ जोड़कर कहा, "किंतु महाराज ! रावण कह रहा है कि या तो लड़ने आओ या पराजय स्वीकार करो।"

मरुत्त ने फिर कहा, "गुरुदेव ! आप मुझे एक घड़ी की भी अनुमति दे देंगे, तो सारी दुनिया का कांटा निकल जायगा।"

संवर्त बोला, "राजन् ! जिस कांटे को स्वयं ब्रह्मा ने खड़ा किया है, वह इस तरह नहीं निकलेगा। वह तो ब्रह्मा को भी पसीना ला देगा और तब जायगा।"

मरुत्त ने नौकर से कहा, "अच्छी बात है, तू जाकर कह दे कि राजा यज्ञ में बैठा है।"

नौकर ने बाहर आकर रावण को सारी बातें सुना दीं। सुनकर रावण मन-ही-मन बड़बड़ाया, "बेचारे मरुत्त को यज्ञ के चलते क्यों परेशान करूं? भले ही उसने मुंह से कुछ न कहा हो, फिर भी वह तो हारा ही माना जायगा। ऐसे लोग जब हारने को होते हैं, तो अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए यज्ञ का बहाना लेकर बैठ जाते हैं। इन बहानों का भेद जान लेने

के बाद ऐसे डरपोक लोगों को हम क्यों सताएं ? चलो, मरुत्त भी हारा ही माना जायगा। उसने यज्ञ की ओट ली !"

... ...

विष्णु के प्रति राक्षसों के मन में असाधारण शत्रुता थी। यह शत्रुता रावण में परिपूर्ण रूप से प्रकट हुई थी।

एक बार रावण घूमता-फिरता पाताल पहुंच गया। पाताल में वह दानवराज बलि का मेहमान था। बलिराज ने रावण का भव्य स्वागत किया और अपना समूचा प्रदेश उसे दिखाया।

एक दिन बातों-ही-बातों में रावण बोला, "बलिराजा ! जहां तक मैं समझा हूं, विष्णु ने तुझे पाताल में बांध रखा है। इस विष्णु को मैं लंबे समय से खोज रहा हूं, किंतु यह मुझे मिल नहीं रहा। तू मुझे विष्णु को दिखा दे, तो मैं उसे ठिकाने लगा दूं।"

रावण के ऐसे वचन सुनकर बलिराज बोला, "लंकापति ! मुझे न विष्णु ने बांधा है और न किसी दूसरे ने बांधा है। एक मनुष्य के नाते तू जितना स्वतंत्र है, उतना ही स्वतंत्र मैं भी हूं। यदि मुझे किसी ने बांधा भी है, तो वह मेरी अपनी प्रतिज्ञा ने बांधा है। राक्षसराज ! अपनी शुद्ध प्रतिज्ञा से स्वयं बंधना सच्ची स्वतंत्रता का लक्षण है। रावण ! तू विष्णु को ठिकाने लगाने की बात करता है, सो तो ठीक ही है। जरा इधर आ, और यह कुंडल तो देख। इसे थोड़ा पहनकर भी देख ले। तुझे यह बहुत अच्छा लगेगा।"

यों कहकर बलिराज ने रावण को एक कुंडल दिखाया। रावण उस कुंडल को उठाने के लिए आगे बढ़ा। कुंडल के तनिक उठते ही रावण उसके बोझ से झुक गया और उसे कुंडल छोड़ देना पड़ा। बलि ने अपने हाथों से कुंडल उठाते हुए कहा, "रावण ! यह कुंडल हिरण्यकश्यप का है। ऐसा कुंडल पहननेवाले को भी विष्णु ने क्षण-भर में मसल कर फेंक दिया था, तो फिर तेरी तो बिसात ही क्या है ? इसलिए लंकापति, मिथ्या अभिमान छोड़ दे और अपने रास्ते चला जा। इतने पर भी तुझे विष्णु से मिलना ही हो, तो मेरे दरवाजे पर द्वारपाल की जगह जो खड़ा है, वह विष्णु स्वयं है।

मेरी बात गले न उतरती हो, तो उसके हाथ का भी थोड़ा स्वाद चखता जा।"

वलि के ये वचन सुनकर रावण सीधा लंका जा पहुंचा।

... ...

विश्रवा ऋषि और कैकसी आश्रम के आंगन में बैठे थे। संध्या का समय था। कैकसी के मुंह पर शोक की छाया थी। विश्रवा ने बात शुरू की।

विश्रवा बोला, "कैकसी ! तू कबतक शोक करती रहेगी ?"

कैकसी ने कहा, "मैं शोक न करूं तो और क्या करूं ? पिछले कई दिनों से मैं आपको मना रही हूं, पर आप मेरी बात मानते ही नहीं हैं। बच्चों को संकट में फंसा देखकर मां का दिल कितना फटता और फड़फड़ाता है, इसका अंदाज आप पुरुषों को नहीं हो सकता !"

विश्रवा बोला, "कैकसी रावण की सहायता करने में हमने कोई कसर नहीं रखी है। तदुपरांत हमारे मना करने पर भी वह दुष्ट जहां-तहां घुस जाता है, इसके लिए हम क्या करें ? इसका तो एक ही उपाय है कि वह अपने किये कर्मों का फल भोगे !"

कैकसी ने तुरंत कहा, "बाप के नाते आप ऐसी बात कह सकते हैं। पर क्या दुनिया की कोई मां ऐसा कुछ कह सकेगी ? जिस दिन मां के मुंह से ऐसी बात निकलेगी, उस दिन यह पृथ्वी मनुष्यों के रहने योग्य नहीं रह जायगी।"

विश्रवा बोला, "क्या किया जाय, तू कुछ कहेगी भी ?"

कैकसी ने कहा, "मैं तो पहले ही कह चुकी हूं। मेरे रावण को वाली ने अपने अंगद के पालने से बांध रखा है। आप उसे वहां से छुड़ाकर ले आइए।"

विश्रवा ने गहरी सांस ली और कहा, "एक बार सहस्रार्जुन ने रावण को माहिष्मती में बंदी बना लिया था। उस समय मुझे उसे छुड़वाने जाना पड़ा था। अपने पूरे जीवन में मैंने किसी से कभी दया की याचना नहीं की, पर उस दिन मुझे राजा से दया की याचना करनी पड़ी। आज फिर वाली के आगे गिड़गिड़ाऊं और उससे भी दया की भीख मांगूं ? पर इस रावण का क्या ठिकाना ? वह कल फिर अपने लिए कोई नई परेशानी खड़ी कर

लेगा और तू मुझे फिर भेजेगी।"

कैकसी बोली, "मैं रावण की जननी हूं, इस कारण जबतक जीऊंगी, तबतक उसके दुःख से दुखी होऊंगी और आपसे विनती भी करती रहूंगी। किंतु आप कैसे पिता हैं कि मेरे अनुनय-विनय करने पर भी जाते नहीं हैं ?"

विश्रवा बोला, "कैकसी ! तेरे अनुनय-विनय न करने पर भी मैं जा सकता हूं, किंतु बाली ऐसी क्षुद्रवृत्ति का है कि वह बात-की-बात में मुझे अपमानित कर सकता है।"

कैकसी बोली, "पेट के बच्चों के लिए अपमान भी सहने पड़ते हैं। मैं स्वयं आपको कितना मना रही हूं, आपसे कितनी विनती कर रही हूं, फिर भी आप आनाकानी ही किये जा रहे हैं। बाली तो आखिर दुश्मन ही है।"

विश्रवा बोला, "अच्छी बात है, लो, मैं जाता हूं ! रावण को लेकर आऊंगा।"

कैकसी से रहा न गया। वह बोली, "जरा रुकिए, मेरी बात ध्यान से सुन लीजिए। मैं कहती हूं कि वहां जाकर मेरे रावण से कोई कड़ुई बात मत कहिए। बेचारे ने छह-छह महीने बाली की बगल में किस तरह बिताए होंगे ? मेरे रावण को बाली पालने से बांधे और अंगद पालने में पड़ा-पड़ा उसे लातें मारता रहे ! हे भगवान ! ऐसा बेटा तूने मुझे दिया ही क्यों ? बेटा रावण ! मैंने तुझे तप करने न भेजा होता, तो कितना अच्छा हुआ होता ? तू तो सारे संसार को जीत लेने की महत्वाकांक्षा रखता है, पर अब जितना पा चुका है, उतने से ही संतोष कर ले, तो कितना अच्छा हो ? मनुष्य की महत्वाकांक्षा की भी तो कोई सीमा होती है न ?"

... ...

विश्रवा किष्किंधा गया और वहां से रावण को छुड़ाकर घर ले आया।

: ३ :

मंगलाचरण

राजसभा के विशाल कक्ष में रावण बैठा था। पास ही बैठा विभीषण उसके कान में धीमे-धीमे गुनगुना रहा था। इतने में एक राक्षस अंदर आया और बोला, "महाराज! बाहर कुछ ब्राह्मण आये हैं और वे आपसे मिलना चाहते हैं।"

नौकर की ओर देखकर रावण बोला, "ब्राह्मण! मेरे पास इन ब्राह्मणों से मिलने का समय नहीं है। अब तो ये लोग मेरी जान खाने लगे हैं। जितनी मेरी राक्षस जनता है उतने या उससे भी अधिक ये भिखारी हैं! मैं अपनी लंका का राज्य चलाऊं या इन ब्राह्मणों से ही मिलता रहूं? जा, कह दे कि मुझे फुरसत नहीं है?"

राक्षस ने कहा, "किंतु महाराज! वे लोग तो अपने हाथों में कोई चीज लेकर आये हैं और उसके साथ आपसे मिलना चाहते हैं?"

रावण ने सहज प्रसन्न भाव से कहा, "अच्छा! वे कुछ लेकर आये हैं? आजकल मैं इन ब्राह्मणों का नाम सुनता हूं तो मेरे दिल को एक धक्का-सा लगता है। ब्राह्मण जब भी आयेगा, कुछ-न-कुछ मांगने ही आयेगा। या तो कहेगा, 'तपश्चर्या में विघ्न उपस्थित होते हैं, इसलिए आप हमारी मदद कीजिए।' या कहेगा, 'अमुक राक्षस मुझे भ्रष्ट कर रहा है। उसे दंड दीजिए।' या कहेगा, 'यज्ञ करना है, द्रव्य दीजिए।' और कोई बात नहीं सूझी, तो कहेगा, आश्रम खड़ा करना है। उसके लिए जमीन दीजिए।' कोई भी निमित्त क्यों न हो, 'दीजिए, दीजिए और दीजिए!' के सिवाय दूसरी कोई बात ही नहीं!'

विभीषण बोला, "महाराज! ये ब्राह्मण मानव-संस्कृति की रक्षा करते हैं और उसे आगे बढ़ाते हैं। इसीलिए ये सारी चीजें मांगते हैं। आप राजा हैं। राजा के नाते आपका धर्म है कि आप उन्हें सारी चीजें दें।"

रावण ने कहा, 'विभीषण! तू नहीं जानता। क्या ये लोग अपनी संस्कृति की सार-संभाल के लिए मांगते हैं? ये तो मांगते हैं अपने पेट का

गड्ढा भरने के लिए; संस्कृति का तो बहाना-भर है। ये सारे यज्ञ और आश्रम पेट भरे लोगों के अखाड़े मात्र हैं ! मैं ऐसे सारे अखाड़ों को उखाड़ फेंकना चाहता हूं। मुझे अब ब्राह्मण-संस्कृति की आवश्यकता नहीं। मैं अपनी राक्षस प्रजा को भिखारी नहीं बनाना चाहता। मैं तो अपनी इस शक्तिशाली राक्षस-संस्कृति की स्थापना करना चाहता हूं। अच्छा, परिचारक ! उन ब्राह्मणों को अंदर आने दो।"

राक्षस बाहर गया और ब्राह्मणों को लेकर अंदर आया।

ब्राह्मणों ने रावण को वंदन किया और विजय-नाद के साथ खड़े होकर वे बोले, "महाराज रावण की विजय हो, विजय हो, विजय हो ?"

रावण ने पूछा, "भाइयो ! कहिये, आप सब क्यों आये हैं ?"

एक वृद्ध ब्राह्मण बोला, "हम आपसे एक विनती करने आये हैं।"

रावण हंसा और तुरंत कहने लगा, "विभीषण ! मैं कह नहीं रहा था कि ब्राह्मण आयेगा, तो भीख मांगे बिना रहेगा ही नहीं ? "और फिर ब्राह्मणों की ओर देखकर बोला, "आप तो मुझे देने के लिए कुछ लाये हैं न ?"

ब्राह्मण ने कहा, "जीहां, किंतु हम पहले आपसे विनती करेंगे और बाद में अपनी चीज आपको भेंट करेंगे।"

रावण बोला, "अच्छी बात है। कहिए, क्या कहना चाहते हैं ?"

वृद्ध ब्राह्मण ने सरल भाव से कहा, "आपने हम ब्राह्मणों से भी कर वसूल करने का जो आदेश प्रसारित किया है, कृपाकर उसे वापस ले लीजिए। आपसे हमारी यही विनती है।"

रावण ने पूछा, "कहिए, आपसे कर क्यों न वसूल किया जाय ?"

ब्राह्मण बोले, "हम गरीब हैं।"

रावण ने कहा, "आपसे कहीं अधिक गरीब तो मेरे राक्षसों में हैं।"

ब्राह्मणों ने निवेदन किया, "यदि ऐसा है तो आप उनसे भी कर वसूल मत कीजिए।"

रावण चिढ़ गया और बोला, "उस हालत में मैं लंका का राज्य कैसे चलाऊंगा ? आप स्वयं मेरे राज्य के सुखों से लाभ उठाने को तैयार हैं, और कर देते समय विनतियां लेकर आते हैं ! आलसी बनकर पड़े रहते

हैं। इससे अच्छा तो यह है कि आप सब मेहनत-मजदूरी किया करें, जिससे कर भी जमा कर सकेंगे और आज इतना फटेहाल घूमते हैं, तो कल अधिक सुखी भी बन सकेंगे !"

वृद्ध ब्राह्मण आगे आकर कहने लगा, "महाराज ! हम ब्राह्मणों ने अनादि काल से गरीबी को अपनाया है। देह धारण के लिए आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त करने में जो समय जाता है, उसे छोड़कर हम अपना शेष सारा समय अध्ययन-अध्यापन में बिताते हैं। ऐसी स्थिति में हम कर किस प्रकार भर सकते हैं ?"

रावण ने दृढ़तापूर्वक कहा, "कर तो आपको देना ही होगा। मैं आपके समान लोगों के आलस्य का पोषण कैसे कर सकता हूं ? आप सब जल्दी-से-जल्दी काम में लग जाइये।"

एक युवक ब्राह्मण आगे आया और बोला, "महाराज, अध्ययन-अध्यापन को और तत्व-शोधन को हमने आलसियों का धंधा नहीं माना है। हमने तो इस प्रकार के व्यवसायों को जीवन का अत्यंत पवित्र व्यवसाय माना है। इसीलिए इसके निमित्त से जीवन के छोटे-छोटे सुखों को छोड़कर हम आश्रम-जीवन बिताते हैं। हम तो निश्चित रूप से यह अनुभव करते हैं कि जो राजा अपने राज्य में ऐसे ब्राह्मणों का पोषण नहीं करता, वह राजा राज्य के मूल पर ही प्रहार करता है। महाराज ! आप सोचिये और हमें इस कर के बोझ से मुक्त कीजिये।"

रावण ने गुस्से में आकर कहा, "मैं यहां आपका उपदेश सुनने के लिए नहीं बैठा हूं। मैं लंका का राज्य चलाने बैठा हूं। आप अपना कर जमा करवा दीजिये।"

रावण के ऐसे शब्द सुनकर उक्त वृद्ध ब्राह्मण और आगे बढ़ा। उसके हाथ में काली मिट्टी से बना एक घड़ा था। घड़े के मुंह पर बड़ के पत्ते ढके थे। घड़ा रावण के हाथ में रखकर ब्राह्मण वापस अपनी जगह पर जाकर खड़ा हो गया।

रावण ने सहज संतोष प्रकट करते हुए कहा, "हां, यह ठीक है ! आप सबका कर इसी में इकट्ठा है न ?"

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा, "जी हां !"

रावण ने घड़ा अपनी गोद में रख लिया। उसके मुंह पर से बड़ के पत्ते हटाकर अंदर देखा तो कोई तरल पदार्थ दिखाई पड़ा। ज्योंही रावण ने घड़े को अपनी नाक से लगाया, त्योंही उसका सिर दुर्गंध से फटने लगा। वह चिल्ला उठा, ऊं हूं-हूं-हूं...यह दुर्गंध किस चीज की है ? दुष्टो ! आप यह क्या लाये हैं ?"

ब्राह्मण बोले, "महाराज ! इसमें हमारा रक्त है।"

रावण गरजा, "मैंने आपसे रक्त देने को कहा है ?"

ब्राह्मणों ने कहा, "हमारे समान गरीब ब्राह्मणों के पास कर में देने के लिए रक्त के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? महाराज ! सारे संसार के गरीब लोग तो कर में अपना रक्त ही देते रहे हैं। लंकापति रावण ! सारी दुनिया के साम्राज्य हमारे-जैसे लोगों के रक्त से ही सने हैं।"

रावण बोला, "अरे, कोई है क्या ? इस घड़े को ले जाओ और बहुत दूर किसी निर्जन प्रदेश में गाड़ आओ। बहुत गहरा गाड़ना। जो ब्राह्मण मुझे ऐसा दुर्गंधयुक्त रक्त देते हैं, उन्हें तो मुझे जड़मूल से ही नष्ट करना होगा। आप जाइये। आपके लिए क्या किया जा सकता है, इसे मैं सोचूंगा।"

ब्राह्मण बोले, "महाराज ! हम आपकी आज्ञा चाहते हैं और जाते-जाते आपसे फिर विनती करते हैं कि आप इस मार्ग का त्याग कीजिये। हम ब्राह्मण आपके सच्चे धन हैं। हमारे पास जो कुछ है, उसका उपयोग लोक-कल्याण के लिए करने की अनुकूलता हमें दीजिए। देश अपने ब्राह्मणों के भरोसे सुरक्षित रहता है। रावण ! हमें सताकर आप व्यर्थ अपने राज्य की नींव मत हिलाइये।"

रावण बोला, "जाओ, जाओ, दुष्टो ! जाओ ! क्या आप समझते हैं कि लंका का राज्य आपके कारण सुरक्षित है ? लंका तो सुरक्षित है रावण की भुजाओं से और राक्षसों के पराक्रमों से। आप तप करना जानते हैं, तो मैंने भी तप किया है। आप शास्त्र जानते हैं, तो मैंने भी वेदों का अध्ययन किया है। आप जान-बूझकर मेरी आज्ञा का अनादर करना चाहते हैं। मैं इसे सहन नहीं करूंगा। मैं आपके समूचे वर्ग के विषय में अंतिम निर्णय की बात सोच रहा हूं। ब्राह्मणो ! याद रखिए, रावण आपकी इस

गरीबी के मूल में रही धमकी से डरनेवाला नहीं है ।"

ब्राह्मणों ने कहा, "महाराज ! हमारी गरीबी के मूल में धमकी नहीं, बल्कि नम्रता है । राजन ! हमारा यह निश्चित मत है कि आप उल्टे रास्ते आगे बढ़ रहे हैं, अब आपने संसार के कल्याण का मार्ग छोड़ दिया है । भगवान आपको सद्बुद्धि दे । इतना अवश्य याद रखिये कि हमारे समान निर्धन ब्राह्मणों के लहू के छींटे आपके राज्य को मटियामेट कर डालेंगे । हम तो जा रहे हैं ।।

रावण ने दांत पीसते हुए कहा, "देखा इन दुष्टों को ! कैसी धमकी देना जानते हैं और नम्रता के नाम पर मुझे डराना चाहते हैं ! ऐसे लोगों को इकट्ठा करके जला डाला जाय, तो बेचारे दूसरे लोगों को कुछ शान्ति तो मिले ! ये भिखारी हमें हमारे पैसे का उपभोग नहीं करने देते । जाओ, चले जाओ । मैं देखूंगा कि आप कैसे कर नहीं देते !"

: ४ :

छोटी-सी बदली

पलंग पर बैठते-बैठते रावण ने कहा, "अकंपन ! तेरी बात मेरे गले उतरती नहीं ।" और वह फिर पलंग पर लेट गया । उसका एक हाथ पास ही बैठी नागकन्या की गोद में पड़ा था । दूसरे हाथ से उसने एक गंधर्व कन्या के हाथ से शराब की छोटी प्याली ली ।

अकंपन बोला "महाराज ! मेरी बात आपके गले उतरती है, तो भी सच है, न उतरे तो भी सच है । आश्चर्य यही है कि मैं अकेला जीवित कैसे बचा ! वैसे देखें तो सेनापति खर, दूषण और त्रिशिरा तीनों दंडकारण्य की धरती पर चिर निद्रा में सो चुके हैं ।"

रावण ने पूछा, "अकंपन ! यह कैसी बात है कि जनस्थान में हमने चौदह-चौदह हजार राक्षसों की सेना रखी और फिर भी हम हार गये !"

अकंपन बोला, "लंकापति ! दशरथ के उस बेटे ने हमारे चौदह हजार लोगों को एक ही सपाटे में सुला दिया। दीखने में तो उसका शरीर भी हमारे बराबर नहीं है, हाथ-पैर दोनों बिल्कुल छोटे हैं; लेकिन वह कब बाण हाथ में लेता है, कब निशाना लगाता है और कब छोड़ता है, किसी को पता ही नहीं चलता।"

रावण सिर हिलाते-हिलाते बोला, "अकंपन ! मैं भी कुछ तो समझता ही हूं। इन लोगों में ऐसा पराक्रम मैंने कहीं नहीं देखा।"

अकंपन से रहा न गया। उसने कहा, "आप यहां सिर हिलाते बैठे रहेंगे और उधर हमारा सत्यानाश हो जायेगा। आप यहां इस पलंग पर पड़े-पड़े शराब पीते रहेंगे और इन कन्याओं के मुंह की ओर देखते रहेंगे और उधर हमारा सारा राज्य चौपट हो जायेगा। राम ने जनस्थान में कहर-सा मचा दिया है और आप हैं कि बात गले उतरने न उतरने की उधेड़-बुन में पड़े हैं। राजन ! यदि आप इस विषय में तुरंत जागेंगे नहीं, तो बाद में आपको जी भरकर पछताना पड़ेगा।"

रावण ने पूछा, "बहन शूपर्णखा तो सुरक्षित है ?"

अकंपन बोला, "राम पागल हो तो वह आपकी बहन को सुरक्षित रखे !"

रावण उठकर पलंग पर बैठ गया और बोला, "अकंपन ! क्या उस दुष्ट ने बहन के भी प्राण ले लिये हैं ?"

अकंपन ने कहा, "प्राण ले लिये होते, तो अधिक अच्छा होता। राम ने तो बहन के नाक-कान काट लिये हैं। यों कहिए कि उसने आपकी, हमारी और हमारे समूचे राक्षसकुल की आबरू ही ले ली है।"

रावण ने जोर से कहा, "अकंपन, अकंपन ! मैं इस राम को जीवित नहीं छोड़ूंगा।"

अकंपन ने हाथ जोड़े और बोला, "महाराज ! समूचा जनस्थान वीरान बन चुका है। आज वहां एक भी राक्षस फटकता नहीं। उलटे, जो ऋषि-मुनि और ब्राह्मण हमारा नाम-भर सुनकर कांपा करते थे, वे फिर वहां अपने आश्रम खड़े करने लगे हैं।"

बड़े व्यंग्य से रावण बोला, "अकंपन! अच्छा आश्रम खड़े हो चुके !"

अकंपन ने कहा, "महाराज ! मेरी समझ में तो यह आ रहा है कि स्वयं आपकी लंका में ही ऐसे आश्रम खड़े होने लगेंगे और इस धरती पर से हमारा नाम-निशान मिट जायेगा। महाराज ! हमारा दुर्भाग्य है कि हम लोगों का स्वामी आज लंका में पड़ा-पड़ा भोग-विलास में मस्त है। अब आपको अपनी राक्षस प्रजा की चिंता ही क्या रह गई है ? महाराज ! साफ-साफ कहने के लिए मुझ पर नाराज मत होइये। चौदह हजार राक्षस एक पल में धूल चाटने लगें, लंकापति की सगी बहन अपने नाक-कान कटवाकर निर्जन जंगलों में मारी-मारी फिरे, और राक्षसराज रावण लंका में पलंग पर पड़ा-पड़ा रमणियों के हाथ की शराब पीता रहे, यह क्या उचित है ? क्या राम के धनुष की टंकार के साथ ही रावण को जनस्थान नहीं पहुंचना चाहिए ? भला सोचिए, वह राज्य कैसे चल सकता है, जिसमें प्रजा का सर्वनाश होता रहे और राजा को उसकी कोई खबर तक न हो ? महाराज ! आज आपको इस बात की कल्पना तक नहीं है कि हमारे पांव के नीचे की जमीन खिसकती जा रही है।"

अकंपन की ये बातें सुनकर रावण पलंग छोड़कर उठ खड़ा हुआ और बोला, "अकंपन ! बस, अधिक मत बोल। तेरी इन बातों से मेरे अंदर आग जल उठी है। मैं तो समूची पृथ्वी को राक्षसों से भर देने के सपने देखता हूं। मेरा मनोरथ यह है कि हमारी संस्कृति चारों ओर फैले और इन जटावालों और दाढ़ी वालों का कचूमर निकल जाय। लेकिन अब तो सबसे पहले मुझे राम को मारना है।"

अकंपन बोला, "राजन ! राम को मारना तो बहुत आसान है। राम के साथ उसका एक भाई और राम की स्त्री भी है।"

रावण ने पूछा, "सीता भी साथ ही है ?"

अकंपन बोला, "आपने उसे देखा है ?"

रावण ने कहा, "हां। किंतु उस समय तो वह बिलकुल छोटी थी।"

अकंपन बोला, "आज तो वह पूरी जवानी में है। ब्रह्मा ने आजतक सीता के समान दूसरी कोई स्त्री नहीं बनाई। महाराज ! सीता के सौंदर्य की तुलना में आपकी इन सारी स्त्रियों का सौंदर्य दो कौड़ी का ही माना जायेगा ! उसकी देह कैसी पतली और सुडौल बनी है ! हम तो बहुत

सोचते हैं कि ऐसी स्त्री महाराज रावण के महल में ही शोभा दे सकती है।"

रावण ने पूछा, "सीता इतनी रूपवती है ?"

अकंपन बोला, महाराज ! उसके रूप का वर्णन करने के लिए भाषा में शब्द ही नहीं हैं।"

रावण ने कहा, "यदि ऐसा है, तो उसका स्थान मेरे महल में ही हो सकता है।"

अकंपन ने समर्थन करते हुए कहा, "मैं भी यही कह रहा हूं। आप किसी तरह सीता को उठाकर ले आइए। राम अपने आप आत्महत्या कर लेगा और हमारा मार्ग भी मुक्त हो जायगा।"

रावण ने पूछा, "किंतु क्या सीता मेरे साथ आयेगी ?"

अकंपन बोला, "क्या हम राक्षसों को ये सब बातें सोचनी होती हैं ?"

रावण ने कहा, "अकंपन ! मैं उसे पकड़कर ले आऊं और वह मुझसे विवाह करले, तो कितना अच्छा हो ! सीता के आने से लंका कितनी उजली लगने लगेगी ! सीता मेरी पटरानी बनेगी।"

अकंपन आगे बोला, "महाराज! आपके समान त्रिलोक के स्वामी को प्राप्त करने के लिए न जाने कितनी स्त्रियां कठोर तप करती होंगी। फिर भी लंका की पटरानी बनना तो शायद ही किसी के भाग्य में बदा होता है। सीता तो बेचारी वन में भटक-भटककर थक रही है। आप उसे उठा लायेंगे, तो वह बेचारी जीवन-भर आपका उपकार नहीं भूलेगी।"

रावण बोला, "अकंपन ! ठीक है। तू जा। मैं राम को ठिकाने लगाता हूं।"

अकंपन ने कहा, "महाराज ! आज से दस वर्ष पहले जब आपने मुझे चौदह हजार राक्षसों के साथ जनस्थान भेजा था, उस समय आपने राक्षस-साम्राज्य की कैसी-कैसी कल्पनाएं की थीं ? मुझे लग रहा है कि आज हमारे वे सारे सपने मानो बिला रहे हैं। महाराज, लंकापति ! आप तैयार होइये। अपने समूचे कुल के सिरपर मैं एक छोटी-सी बदली घिरती देख रहा हूं। इस बदली को आप आज ही उड़ा देंगे, तो ठीक है, नहीं तो राक्षसराज ! यही बदली आगे हमारे सारे राक्षस-कुल को घेर लेगा।"

रावण बोला, "अकंपन ! तू स्वस्थ हो जा। मैं राम को ठिकाने

लगाता हूं। चिंता मत कर। इसमें ऐसी कौन-सी बड़ी बात है ? डरपोक लोग छोटी-सी घटना को भी कितना बड़ा रूप दे देते हैं ? तू नहीं जानता कि लंकापति की जड़ें कितनी गहरी हैं। तू चल। मैं अभी आता हूं।"

रावण ने अपना रथ जोड़ने का आदेश दिया।

: ५ :

मामा-भानजा

जनस्थान से कुछ दूर अपना एक आश्रम बनाकर मारीच वहां रहता था। मारीच ताड़का नाम की राक्षसी का बेटा और सुबाहु का भाई था। वर्षों पहले राम ने इस ताड़का को मार डाला था और मारीच को ऐसा बाण मारा था कि वह मूर्च्छित होकर समुद्र में जा गिरा था। उसी दिन से मारीच आश्रम बनाकर यहां रह रहा था।

शाम होने को थी। आश्रम के हरिण एक स्वच्छ चबूतरे के पास खड़े-खड़े दूब चबा रहे थे। आश्रम के वृक्ष पक्षियों के कलरव से गूंज रहे थे; स्वयं मारीच दरवाजे के पास वाले बाग में फूल बीन रहा था। इसी बीच आश्रम के दरवाजे पर एक रथ आकर खड़ा हो गया। सुनहरे श्रृंगारवाले चार खच्चर रथ में जुते थे। उन्हें देखकर मारीच ने रथ को पहचान लिया और वह दरवाजे पर आकर बोला, "महाराज ! अभी-अभी तो आप विदा हुए थे, फिर वापस क्यों आ गये ?"

किसी प्रचंड ज्वालामुखी के शिखर-सा भव्य, चमकीला और काले रंग वाला रावण रथ से नीचे उतरा। रावण ने मारीच का हाथ अपने हाथ में लिया और उसके पैर आश्रम के चबूतरे की ओर मुड़े।

रावण बोला, "मामा ! मैं आपके पास से विदा तो हुआ, पर मेरे मन की बेचैनी दूर नहीं हो रही थी।"

मारीच ने रावण की ओर देखकर कहा, "रावण ! अकंपन की बुद्धि

विलकुल भ्रष्ट हो चुकी है। उसने अपने शरीर पर एक खरोंच भी न लगने दी और वह जनस्थान से भाग खड़ा हुआ। वही आज तुझे उकसा रहा है। क्या मैंने तुझसे कहा नहीं ? उन दिनों तो राम बहुत छोटा था। उसके मुंह पर मूंछ की रेख भी नहीं फूटी थी। सिर पर पांच छोटी-छोटी शिखाएं लहराती रहती थीं और कमर पर हरिण का चमड़ा था। विश्वामित्र के पीछे-पीछे वह इस तरह चलता था, मानो भयभीत हो। जानता है, मेरी मां और हम दोनों भाई क्या करते थे ? राक्षस और कर ही क्या सकते हैं ! जहां विश्वामित्र यज्ञ करता, वहां हम मांस के टुकड़े डालते और अवसर मिलने पर अलग-अलग रूप धारण करके हम उसके यज्ञ को भ्रष्ट कर देते। रावण ! मेरी मां ताड़का की तो उस प्रदेश में ऐसी धाक थी कि अच्छे-अच्छे ऋषि-मुनि भी अपने यज्ञ छोड़कर भाग खड़े होते थे, किंतु राम ने हमें छकाया। विश्वामित्र को तो हमने अपना प्रताप दिखा दिया था। उसके यज्ञों को तो हमने कई बार नष्ट किया था; किंतु इस बार राम साथ में था। रावण ! मैं तुझसे क्या कहूं ? जब विश्वामित्र यज्ञ करने बैठा, तो राम और लक्ष्मण पहरा देने लगे। मेरी मां ने अपने नियम के अनुसार हमला बोल दिया। हमने भी धूल और राख का ववंडर खड़ा कर दिया; यज्ञ की भूमि में लहू और मांस की झड़ी लग गई; हमारे राक्षसों ने चारों ओर से चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। ऐसा लगा कि यज्ञ अब समाप्त हुआ, अब हुआ। इसी बीच मेरी मां जोर से चीख उठी और नीचे गिरी। उसकी छाती में से लहू की नदी बहने लगी थी। उसके मुंह में झाग आ गये थे। उसकी देह में से प्राण विदा हो रहे थे। मेरी मां ताड़का गिरी, हजारों राक्षस मिट्टी में मिल गये; मेरा भाई सुबह इस दुनिया से विदा हो गया और मैं स्वयं भी बहुत दूर समुद्र में जा गिरा। रावण ! मेरी मां को तू पहचानता ही है। वह राम के समान दस हजार को एक निवाले में खा जाने की शक्ति रखती थी। वह ताड़का राम के एक ही बाण से मृत्यु को प्राप्त हो गई। राम के बाण कितनी कठोरता के साथ लगते हैं, इसे अकंपन जानता नहीं, इसलिए वह तुझे ऐसी सलाह दे रहा है।"

रावण ने कहा, "मामा ! ताड़का कैसी भी क्यों न हो, आखिर तो

वह स्त्री की ही जात ठहरी !"

मारीच बोला, "ताड़का स्त्री की जात ! हां, सच है कि उसकी देह स्त्री की थी; पर वैसे देखा जाय तो हमारी स्त्रियों में स्त्रीत्व होता ही कहां है ? माना कि ताड़का स्त्री थी, पर सुबाहु तो पुरुष था न ? मैं मारीच तो पुरुष था न ? अरे, देख कल सुबह की ही तो बात है। तेरे खर, दूषण, त्रिशिरा, ये सब तो मूंछोंवाले थे न ? बेचारों की क्या दुर्दशा हुई है, सो कहने को भी कोई बचा है ? रावण ! राम के एक बाण ने मुझे तो सीधा समुद्र तक लुढ़का दिया था। मैं आज भी उस बाण को याद करता हूं, तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अब मैं इस बात की सावधानी रखने लगा हूं कि भूलकर भी उसके रास्ते में न आऊं। रावण ! सच कहता हूं, मैं तो राम से इतना अधिक डरता हूं कि 'र' अक्षर वाला कोई नाम सुनता हूं तो कांप उठता हूं। अकंपन की तो मति फिर गई है। तू तो अपनी लंका में जा और शांति से बैठ !"

मारीच के कंधे पर हाथ रखकर रावण बोला, "मामा ! मति फिरे, तो एक अकंपन की फिरे। हम सबकी एक साथ क्यों फिरे ? सुनिए। मैं यहां से गया और घर जाकर रथ से नीचे उतर ही रहा था कि बहन शूर्पणखा आ पहुंची थी।"

मारीच बोला, "आखिर बहन आई तो सही ! उसके नाक-कान कैसे कटे हैं ?"

रावण ने कहा, "मामा ! बहन आई, सो तो आई ही, पर वह अपने साथ भयंकर तूफान भी लेती आई ! उसने तो आते ही मुझे आड़े हाथों लिया और आग्रह किया कि किसी भी तरह मैं राम से वैर का बदला लूं।"

मारीच बोला, "शूर्पणखा भला तुझसे आग्रह क्यों न करेगी ? स्वयं अपने नाक-कान कटवा चुकी है, इसलिए चाहती है कि भाई को भी अपने जैसा बना दे, तो बेड़ा पार हो !"

रावण ने कहा, "मामा ! ऐसी बात मत बोलिए। बहन तो मेरी भावना को ध्यान में रखकर आग्रह करती है।"

मारीच बोला, "रावण, मैं तुझे भी पहचानता हूं और तेरी बहन को भी पहचानता हूं। लंकापति ! राम को मत छेड़। मैं तो तुझसे कह चुका

हूं कि काल हम सबके पीछे पड़ा है। यही कारण है कि तुम सबको ऐसी उल्टी बातें सूझती हैं।"

रावण ने कहा, "मामा मारीच ! मुझे यह देखकर आश्चर्य हो रहा है कि राम ने आपकी मां को और आपके भाई को मार डाला, फिर भी आप के दिल में वैर की आग नहीं सुलग रही है। मुझे डर है कि हम राक्षस अब धीरे-धीरे ब्राह्मण बनते जा रहे हैं। धर्म, दया, सत्य, एक पत्नीव्रत, पतिव्रत-जैसे विचार हमारे स्वतंत्र समाज में गुप्त रूप से प्रवेश कर रहे हैं और हमारी समूची संस्कृति को खोखला बनाने लगे हैं। जब मैं मारीच के समान धुरंधर वीर में ब्राह्मणों का-सा यह पागलपन देखता हूं, तो मेरे मन में भी विचार आता है कि अवश्य ही हमारा काल निकट आ गया है, नहीं ता ताड़का और सुबाहु को मौत के घाट उतारने वाला राम उन्हीं स्थानों में सीता के साथ सुख-पूर्वक रहे और पास ही मारीच अपने आश्रम में बैठा माला फेरता रहे, यह संभव ही कैसे हो सकता है ! मारीच पता नहीं, हमारा क्या होने वाला है ?"

मारीच बोला, "लंकापति ! किसी नपुंसक को भी उत्तेजित करने-वाले तेरे ये शब्द मेरे दिल में पहुंचकर वहीं जम जाते हैं। मैंने राम का बाण चखा है, तूने चखा नहीं है, इसीलिए तू ऐसी बातें कर रहा है। शूर्पणखा ने तो केवल नाक-कान ही गंवाये हैं, लेकिन तुझे तो अपना सारा राज्य गंवाना पड़ेगा।"

मारीच का हाथ अपने हाथ में लेते हुए रावण ने कहा, "मारीच ! जो होना हो, सो हो जाय। शूर्पणखा लंबे हाथ कर-करके लंका के राज-महल में मुझपर जो तीखे ताने कसती है, मैं मानता हूं कि उनकी तुलना में राम के बाण कम ही तीखे होंगे। मामा मारीच, आप तनिक मेरा विचार कीजिये। मैं कैसा भी क्यों न होऊं, आखिर हूं तो राक्षसों का राजा। राक्षस रात-दिन मेरे लिए कठिन परिश्रम करते हैं और मेरे एक शब्द के बदले में अपने धड़ पर से जिंदा सिर उतार कर रख देते हैं। ऐसे राक्षसों को मारकर राम समूचे जनस्थान को वीरान बना दे और फिर भी मैं बैठा देखता रहूं, तो बताइये, मुझे यह सब शोभा देगा ?"

अपने मस्तक पर हाथ फेरते हुए मारीच बोला, "जिंदा रहना हो

और जिंदा रहकर राक्षसों का जितना भला हो सके, उतना करना हो तो यह सब सहन करने के अलावा और कोई चारा नहीं है। रावण ! अपने राज्य को अधिक उज्ज्वल बनाने के उपाय दूसरे हैं, यह नहीं।"

रावण ने कहा, "किंतु मामा ! आज तो राम को मारने की बात ही मुख्य है। दूसरे मार्गों का विचार तो हम आगे चलकर करेंगे।"

मारीच बोला, "जैसी रावण की मरजी !"

रावण ने कहा, "मेरी मरजी की बात तो है ही; लेकिन मैं आपको अपने साथ लिये बिना जाऊंगा नहीं। हमें कौन राम के साथ लड़ना है ? मैं तो सीता को उठाकर ले जाना चहता हूं।"

मारीच बोला, "रावण, भैया ! मेरी बात मान लो। इन आर्य लोगों के तेज का अंदाज नहीं लग सकता। ताड़का को मारते समय यह राम बहुत ही छोटा था। फिर भी जब उसके बाण छूटते थे, तो ऐसा लगता था मानो विष बुझे बाण छूटे हों। यह सीता भी पतली छड़ी-सी दीखती है, पर इसके अंग में कितनी अग्नि भरी है, इसका हमें क्या पता है ? मेरा तो स्पष्ट मत है कि तू इन लोगों को मत छेड़ !"

रावण उबल पड़ा, बोला, "तब तो मामा ! यही कहिये कि आपकी तरह मैं भी आश्रम में बैठ जाऊं, यज्ञ किया करूं और ये लोग जिस तरह राक्षसों का सर्वनाश करने में लगे हैं, उसकी ओर से आंख मूंदकर योग-समाधि लेलूं ! मामा ! रावण ऐसी मिट्टी का बना नहीं है। मैं राजा हूं। आज करोड़ों राक्षस अपने जान-माल की रक्षा के लिए मेरी ओर निगाह लगाये बैठे हैं। सुमाली के समान वृद्ध जनों की ओर से हमें जो सांस्कृतिक उत्तराधिकार मिला है, उसकी रक्षा करना हमारा धर्म है। रावण को आप मौत के नाम से डरा नहीं सकते ! मेरी अपनी प्रतिष्ठा के लिए, मेरी सगी बहन के संतोष के लिए, मेरे आसरे में जी रहे इन करोड़ों राक्षसों के लिए, यही नहीं, बल्कि समूचे राक्षस-कुल के कल्याण लिए, मुझे राम के साथ वैर बिसाना ही होगा। मारीच ! आपका सुझाया मार्ग सुख और सुरक्षा का मार्ग हो सकता है, पर वह वीर का मार्ग नहीं, बल्कि कायर का मार्ग है। जिसके सिर पर बड़े समाज के मार्ग-दर्शन की जिम्मेदारी होती है, वह ऐसे निर्वीय मार्ग अपना ही नहीं सकता। मामा ! कभी-कभी मृत्यु भी

जीवन से अधिक मूल्यवान होती है। हित-अनहित की आपकी बात को मैं समझता हूं; किंतु अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सिर भी कटवाना पड़े तो उसमें बुरा क्या है? मारीच! तुझे मारनेवाला तो ब्रह्मा को अभी नए सिरे से पैदा करना होगा। मामा! मैं शूर्पणखा को वचन देकर आया हूं। अब मेरा विचार बदल नहीं सकता। आप मेरी मदद कीजिए।"

मारीच ने कहा, "रावण! हम आज की रात बीतने दें। कल सुबह फिर इस विषय में सोचेंगे।"

रावण बोला, "नहीं, मामा! मेरी बात पर यों ठंडा पानी मत डालिये। प्रायः काल ऐसी बातों को खा जाता है। आप यह निश्चित समझिये कि मुझे सीता का हरण करना है। अकंपन ने न कहा होता, शूर्पणखा ने आग्रह न किया होता, तो भी जब से मैंने सीता का नाम सुना है, तभी से मैं विह्वल हो चुका हूं। स्त्रियां तो मेरे पास असंख्य हैं; किंतु उन सबके प्रति अब मेरी कोई आसक्ति नहीं रही है। राम का जो भी होना हो, हो जाये; मुझे तो सीता चाहिए। सीता मेरी पटरानी बनेगी। मामा! इस काम में आपको मेरी मदद करनी ही होगी।"

मारीच ने कहा, "मैं क्या मदद कर सकता हूं?"

रावण बोला, "जो मदद मैं मांगूं, आप मुझे दीजिये। समझ लीजिये कि इस समय आपका भानजा रावण नहीं बोल रहा, बल्कि लंकापति रावण आपको आदेश दे रहा है। मारीच! जो राजा की आज्ञा को नहीं मानता, उसका सिर धड़ से अलग हो जाता है। लंका का राज्य संकट में फंसा है, अतः लंकापति आपको आदेश दे रहा है।"

मारीच ने कहा, "राजन्! मारीच तैयार है। यहां बस जाने के बाद भी एक बार मैं और दूसरे राक्षस राम के बाणों का स्वाद चख चुके हैं। अब तो मेरे सामने प्रश्न यही रह गया है न कि मैं राजद्रोही बनकर लंकापति के हाथों मरूं या अयोध्या के युवराज के हाथों वीर की मौत मरूं?"

रावण बोला, "बस, यही मामा! मरना ही हो, तो राम के हाथों मरने में शोभा है।"

मारीच ने कहा, "लंकापति! मैं भी यही मानता हूं। यदि ऋषियों की बात सच है, तो राम के हाथों मरने में कल्याण भी है।"

रावण बोला, "ऋषियों का ही तो यह सारा पाखंड है। उनके जैसे दुष्ट और कोई नहीं। लेकिन यदि आप मेरी मदद करेंगे, तो राक्षसों का कल्याण अवश्य होगा। बोलिए मामा! आपको मेरी बात मंजूर है या नहीं ?"

दोनों हाथ जोड़ते हुए मारीच ने रावण से कहा, "ठीक है। एक बार नहीं, हजार बार मुझे मंजूर है।"

: ६ :

तपस्वी के वेश में

शरीर पर घुटनों तक पहुंचने वाली गेरुए रंग की कफनी, पैरों में खड़ाऊं, एक हाथ में पानी की तुम्बी, दूसरे हाथ में रंग-बिरंगा छाता और रुद्राक्ष की माला, कपाल पर भस्म का त्रिपुंड, आंखों के कोनों पर सिंदूर की बारीक रेखाएं, सिर पर घुंघराले बाल—इस वेश में एक साधु ने पंचवटी में प्रवेश किया और पर्णशाला के पास आकर बोला, "देवि! भिक्षा दीजिए!"

पंचवटी में भरी दुपहरी का समय था। वृक्ष सब स्तब्ध भाव से खड़े थे; हवा बिलकुल थमी-सी थी; भयभीत से पक्षी अपने घोसलों में बैठे थे; दिशाएं मलीन बन गई थीं, पंचवटी की लताएं इतनी निस्तेज हो गई थीं, मानो मुरझा रही हों; कुछ दूर पर सरोवर के हंस बेचैन-से घूम रहे थे; पंचवटी के हरिण दूब चरना भूलकर फटी आंखों से देख रहे थे और कान इस तरह लगाये हुए थे, मानो कुछ सुन रहे हों।

सीता गहरे विचार में डूबी कुटिया के प्रांगण में बैठी थी। आवाज सुनकर एकदम सजग हो गई और हड़बड़ा कर उठी। उसने कहा, "पधारिये, पधारिये, योगीराज! पधारिए।"

योगीराज ने खड़ाऊं उतारीं; सिर पर तना छाता बंद किया और

पर्णशाला की सीढ़ी पर पैर रखा।

सीता ने आसन बिछाते हुए कहा, "महाराज पधारिये। इस आसन पर बिराजिये।" योगिराज आसन पर बैठकर रुद्राक्ष की माला फेरने लगे और पर्णशाला के चारों ओर देखने लगे।

सीता अंदर से बोली, "महाराज आप जरा बैठिए। मैं आपके लिए फल-फूल ला रही हूं।"

योगिराज ने कहा, "देवि ! मैं फल-फूल का भूखा नहीं हूं।"

एक पत्तल पर फल-फूल रखते हुए सीता ने कहा, "महाराज ! आपने मेरी कुटिया को पवित्र किया है। क्या आप इसे स्वीकार नहीं करेंगे ? महाराज ! थोड़ा तो खाना ही होगा।"

योगी बोला, "आपके समान रमणी की प्रार्थना को मैं ठुकरा नहीं सकता। किंतु देवि ! क्या आप बतायेंगी कि आप कौन हैं और यहां क्यों आई हैं ?"

सीता ने कहा, "महाराज ! सहर्ष बताऊंगी। मैं तो आपके आतिथ्य की बाट ही ज़ोह रही थी। अब आप खाना शुरू कीजिए।"

योगी बोला, "आप अपनी बात शुरू कर दीजिये। मुझे जल्दी है। मैं अधिक समय तक रुक नहीं सकूंगा।"

सीता ने कहा, "मेरा नाम सीता है। मैं जनक राजा की पुत्री हूं। मेरे साथ आर्यपुत्र राम और देवर लक्ष्मण हैं।"

योगी ने पूछा, "जनक की पुत्री इस जंगल में क्यों आई ?"

जवाब में साता बोली, "योगिराज ! मेरे ससुर दशरथ ने आर्यपुत्र को चौदह वर्षों का वनवास दिया है। मैं अपने देवर लक्ष्मण के साथ वनवास में उनके साथ आई हूं।"

योगिराज ने खाना पूरा किया और बोला, "सीता ! तू राजपुत्री है; तेरा पालन-पोषण विदेह के राजमहल में हुआ है; शतानन्द के समान गुरु ने तुझे विद्या दी है; विधाता ने तुझे सौंदर्य की मूर्ति बनाया है। तू इस जंगल में रहने योग्य नहीं है।"

सीता ने कहा, "योगिराज ! आप भूल कर रहे हैं। जहां मेरे राम, वहां मैं, आर्य स्त्रियों के लिए तो जहां उनके पति होते हैं, वहीं स्वर्ग

होता है।"

सीता के ये शब्द सुनकर योगी खिलखिलाकर हँसा और बोला, "सीता ! मुझे आज ही पता चला कि तेरे समान स्त्री भी ऐसे मूर्खतापूर्ण विचार रखती है ? तू तो किसी सम्राट की रानी बनने योग्य है। तू इस जंगल का फूल है ही नहीं।"

सीता ने कहा, "योगिराज ! आपका आशीर्वाद फले। वनवास समाप्त होने पर मेरे राम मुझे अपनी पटरानी बनायेंगे।"

योगी बोला, "मुझे तो दीखता है कि तेरा वनवास आज ही समाप्त होने को है।"

सीता ने कहा, "योगिराज ! आर्यपुत्र कह रहे थे कि अब केवल एक वर्ष बचा है। महाराज ! आपका आश्रम यहां से कितनी दूर है ?"

योगी हँसकर बोला, "मेरा आश्रम ! मेरा कोई आश्रम नहीं; बल्कि रत्नों से जड़ा महल है। ऐसी घास-फूस की झोंपड़ी और गोबर से लिपी दीवारें तो बेचारे राम की ही हो सकती हैं।"

सीता शंकाकुल दृष्टि से देखती हुई बोली, "मेरे राम को 'बेचारा' कौन कह सकता है ! योगिराज ! बेचारे रत्नजटित महल मेरे राम के लिए तरस रहे हैं, किंतु पिता के वचन के कारण राम इस झोंपड़ी में रहते हैं।"

योगी ने जोर से अपना सिर हिलाया और बोला, "मूर्ख सीता !"

सीता ने पूछा, "महाराज ! मेरे राम के विषय में ऐसी बात कहने-वाले आप कौन हैं, कहिए तो ?"

योगी बोला, "सीता ! तू सुनना चाहती है कि मैं कौन हूं ? जिसके घर अग्नि और वायु-जैसे देव चाकरी करते हैं, जिसके घर हजारों गंधर्व और यक्षकन्याएं सोने-चांदी के हिंडोलों में बैठकर झूला करती हैं, जिसका नाम सुनते ही हजारों देव-दानव और गंधर्व स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं, जिसके बल का गान आज दसों दिशाओं में हो रहा है, जिसकी सुवर्णनगरी के चारों ओर महासागर गर्जना करता रहता है और ये राक्षस सारी दुनिया में घूम-घूमकर जिसके नाम का डंका बजा रहे हैं, वही लंकापति रावण हूं मैं !" यों कहते-कहते ही रावण ने योगी का अपना वेश उतार-कर फेंक दिया और अंदर से असली रावण प्रकट हो गया।

विंध्याचल के किसी शिखर के समान प्रचण्ड रावण को देखते ही सीता स्तब्ध रह गई। वह बोली, "रावण ! कपटी राक्षसराज ! आप यहां किसलिए आये हैं ? यह मत समझिये कि जनक की पुत्री और दशरथ की पुत्रवधू आपसे डर जायेगी।"

रावण हँसते-हँसते बोला, "सुंदरी ! तू डरती है या नहीं, इसका पता तो तेरे शरीर से और तेरी आवाज से ही चल जाता है, लेकिन मैं तुझे डराने नहीं आया हूं। मैं तो तेरे प्रेम का प्यासा हूं।"

सीता ने भृकुटी तानकर कहा, "दुष्ट ! तेरी जीभ कटकर गिर क्यों नहीं जाती ? आर्यपुत्र राम को आ जाने दे, फिर देखना कि तेरी क्या दशा होती है !"

रावण अधिक निकट जाकर बोला, "सीता ! राम के आने से पहले ही हम कहीं-के-कहीं पहुंच चुके होंगे। देवि ! तू मेरे साथ चल। त्रिलोक को कंपानेवाला रावण तेरे पैर पूजेगा, हजारों सुंदरियां तेरी सेवा में नियुक्त रहेंगी, दक्षिण का महासागर तेरे लिए सच्चे मोती भेजेगा और जनक की पुत्री लंका की पटरानी बनकर मौज से रहेगी।"

सीता ने रोष में आकर कहा, "मेरे समान पतिव्रता स्त्री से ऐसी बातें कहते हुए तुझे शर्म नहीं आती !"

रावण बोला, "भला, मुझको शर्म क्यों आये ? मुझे तो तुम आर्य-स्त्रियों का यह पतिव्रत एकदम पाखंड प्रतीत होता है। तुम्हारे पुरुषों ने तुम्हें अपने अधीन रखने के लिए यह सारा ढोंग बना रक्खा है। इस दृष्टि से देखें, तो हमारी राक्षस स्त्रियां अधिक स्वतंत्र हैं। तू इस पाखंड को अपने मन से निकाल दे और मेरे साथ चल।"

सीता ने कहा, "दुष्ट रावण ! दूर हट। खबरदार, जो और आगे बढ़ा ! मुझे हाथ लगायेगा, तो समझ लेना कि तेरे प्राण संकट में पड़ जायंगे। इस तरह आर्य स्त्री को छूना मौत को बुलाना है।"

रावण बोला, "सुंदरी ! तुझे उठाकर ले जाना मेरे बाएं हाथ का खेल है। मुझे डर इसी बात का है कि तेरी सुकुमार काया मुरझा जायेगी। सीता ! तू मान जा। बेचारा राम भले अपना वनवास यहां पूरा करे। तू तो लंका की पटरानी बनने के लिए जन्मी है।"

सीता ने कहा, "रावण, तू मेरे राम को पहचानता नहीं, इसीलिए ऐसी बातें कह रहा है।"

रावण ने वितृष्णा से कहा, "सीता, मुझे तेरे राम को पहचानने की आवश्यकता नहीं। मैं तो तेरे प्रेम का प्यासा हूं। तू अपनी राजी से मेरे साथ चलेगी; तो मैं तुझे अपने सिर के मुकुट की भांति रखूंगा और तेरे चरण धोता रहूंगा। राजी से नहीं चलेगी, तो मैं तुझे जबरदस्ती उठाकर ले जाऊंगा।"

सीता कांपती हुई बोली, "रावण ! तू यह क्या कह रहा है ?"

रावण ने कहा, "मैं जो कह रहा हूं, सच कह रहा हूं। कामवासना मुझे जला रही है। तू मीठा अमृत छिड़क दे। मैं जीवनभर तेरा दास बनकर रहूंगा।"

सीता बोलीं, "दुष्ट ! सीता के लिए राम के अतिरिक्त समूचा पुरुष-जगत् भाई-बाप के समान है।"

रावण ने कहा, "सीता के लिए भले ऐसा हो; पर रावण के मन तो चौदहों ब्रह्मांडों की सुंदरियां इच्छाभोग्य हैं।"

सीता हैरान होकर बोलीं, "रावण ! तेरी यह बात सुनकर पृथ्वी फट क्यों नहीं जाती ? ऊपर से आसमान टूट क्यों नहीं पड़ता ? सूर्यनारायण सारे संसार को जला क्यों नहीं डालते ? वायु एक ही सपाटे में पृथ्वी को उड़ा क्यों नहीं देती ? प्रकृति के ये तत्व तुझे सहन क्यों कर रहे हैं ?"

रावण ने कहा, "सीता ! ये सब तो मेरे गुलाम हैं। तू मेरे साथ चलेगी, तो अग्नि और वायु तेरे भी गुलाम बन जायेंगे। ब्रह्मदेव ने मुझे वरदान दिया है। इसलिए मैं किसी से डरता नहीं हूं। चल, चल रही है न ?"

सीता बोलीं, "चुप रह, दुष्ट !"

रावण ने कहा, "तेरा मुझे 'दुष्ट' कहना भी मुझको कितना मीठा लगता है ! तेरी-जैसी रमणियों के तिरस्कार-भरे वचन भी भाव-भरे आमंत्रण के समान होते हैं। सीता ! तू अपनी इच्छा से चलने में अधर्म समझती है, इसलिए मुझे तुझको जबरदस्ती ले जाना होगा !" यों कहकर रावण ने अपने एक हाथ से सीता की चोटी और सिर पकड़ा और दूसरे हाथ से

उसके दोनों पैर उठा लिये। पर्णकुटी से कुछ ही दूर रावण का रथ खड़ा था। वह सीता को वहां ले गया और उसे रथ में डालकर भाग निकला।

किसी पवित्र आश्रम में चर रही निर्दोष हरिणी के अचानक ही बाघ के मुंह में पड़ने पर वह कैसा करुण क्रंदन करती है ! किसी पवित्र वृक्ष पर घोंसला बनाकर रहने वाली चिड़िया को जब बाज़ पकड़ लेता है, तो वह किस बुरी तरह बिलखती है ! किसी ऋषि के आश्रम में रहनेवाली होम की गाय सिंह की चपेट में आ जाती है, तो वह बेचारी किस बुरी तरह छट-पटाती और चिल्लाती है। रावण के हाथ में पड़ी सीता भी उसी तरह फूट-फूटकर रोने लगी। सीता का हृदय-विदारक विलाप सुनकर सारा जनस्थान बिलख उठा, सारे वृक्ष रोने लगे, पशु-पक्षी रोने लगे, झरने सब मटमैले हो उठे, दंडकारण्य के पहाड़ मानो घुलने लगे, समूचा विश्व इतना उदास हो गया, मानो अंदर से फटा जा रहा हो और रावण, लंकाधीश रावण, सीता को रथ में डालकर चलता बना, दूर-दूर गरजते दक्षिण सागर की ओर— दूर-सुदूर लहराते अनन्तता के महासागर की ओर !

: ७ :

लंका में सीता

जीवन में जो कुछ भी बेडौल है, जीवन में जो कुछ भी बेसुरा है, जीवन में जो कुछ भी प्रमाण-विहीन है, जीवन में जो कुछ भी तुच्छ और अमर्याद है, सो सभी राक्षसी है। ऐसे समस्त राक्षसी तत्त्वों के केंद्र का नाम है लंका। यह लंका रावण की राजधानी थी।

लंका के एक आलीशान कमरे में हजारों राक्षसियां पड़ी थीं। किसी के मोटे होंठ बाहर लटक रहे थे; किसी के खच्चर-जैसे कान कनपटी तक पहुंचते थे; किसी का मुंह और बड़े नथुने सारी सूरत को डरावनी बना रहे थे; किसी के अतिशय मोटे गाल मुंह पर लटक रहे थे; किसी की

डरावनी आंखें आँखों की चौखट के बाहर निकलकर इधर-उधर चक्कर काट रही थीं; किसी के चित्र-विचित्र केश सारे मुंह को भयावना बना रहे थे; किसी के जानवरों-जैसे दांत और लाल जीभ मुंह के बाहर निकली पड़ती थी।

ऐसी राक्षसियों के बीच सीता बैठी थीं। उनके निकट रावण द्वारा अपहरण करके लाई गई देव-कन्याएं दानव-कन्याएं और गंधर्व-कन्याएं बैठी थीं। चारों ओर स्फटिक के ऊंचे स्तंभ खड़े थे, आसपास ऊंची-ऊंची रत्न-जटित दीवारें थीं, दीवारों में मणिमय दीपक रखे थे, नीचे फर्श पर भांति-भांति के वैदूर्यों से जड़ी भूमि थी, पास ही एक ओर हीरे-माणिक से जड़ा सोने का बना पलंग था, पलंग के आसपास ऊनी और रेशमी आसन बिछे थे। इन सबके बीच, फिर भी सबसे अछूती, सीता बैठी थीं। रो-रोकर उनकी आंखें सूज गई थीं; उनका मुंह शोक-भार से दब चुका था; उनका दिल डर के मारे कांपा करता था; उनके लंबे और काले बाल बिखरे हुए थे; उनके होंठ फीके पड़ चुके थे।

धूम्राक्षी बोली, "सीता ! महाराज रावण आ रहे हैं।"

सीता ने एक सूनी निगाह डाली। इतने में कालमुख राक्षसराज उनके पास आकर खड़ा हो गया। रावण को देखते ही सीता ने अपनी दृष्टि मोड़ ली और अपने तथा रावण के बीच घास का एक तिनका रख दिया।

नीचे बैठते-बैठते रावण बोला, "जनक-पुत्री ! सीता ! बोलती क्यों नहीं हो ?"

उमड़ते हुए आंसुओं को रोकती हुई सीता कहने लगीं, "राक्षस-राज ! क्या बोलूं ? भगवान ने पुरुषों को स्त्रियों का हृदय पढ़ लेने की आंखें दी होतीं, तो कितना अच्छा होता ? रावण ! मुझे राम के पास वापस भेज दे। भगवान तेरा भला करेंगे।"

रावण तनकर बैठ गया और बोला, "सीता ! भगवान ने भला किया, इसीलिए तो तू मुझे मिल सकी। सीता ! तूने ये स्फटिक के स्तंभ देखे ? पहले ये वरुण की राज-सभा में थे। ये दीपक कुबेर की राज-सभाओं में थे। आज इन दीपकों की साक्षी में रावण का भोग-विलास चलता है। ऐसी वैदूर्यभूमि तो ब्रह्मा के घर भी नहीं है। सीता ! मेरे साथ तू इन सबका

उपभोग कर और मुझे सुखी बना।"

सीता ने कहा, "लंकापति ! तेरे ये खंभे, तेरी ये दीवारें, तेरे ये दीपक, तेरा यह महल और तुम सब मेरे लिए इतने दुर्गंध से भरे हो कि यहां मैं सुख से सांस भी नहीं ले सकती। रावण ! मुझे पंचवटीवाली पर्णकुटी में ले चल। उस हवा के विना मुझे चैन नहीं पड़ेगा।"

रावण बोला, "देवि ! आज रावण चौदह ब्रह्मांडों का स्वामी है। मैं सारे संसार के सुगंधित द्रव्य लाकर इन खंभों और दीवारों पर लगाऊंगा और तू कहेगी तो मैं अपने शरीर पर इन द्रव्यों का लेप करूंगा; किंतु, सीता ! तू मुझे अपना बनाले।"

सीता ने कहा, "रावण ! सारे संसार के सुगंधित द्रव्य भी इस दुर्गंध को कैसे दूर कर सकेंगे ? अपनी इस मलिनता को धोना हो, तो मुझे वापस जनस्थान भेज दे और तू राम के पैरों पड़। बड़े-बड़े मुनियों ने उनके चरणों में लोटकर अपना कल्याण किया है।"

रावण हँसकर बोला, "सीता ! जिस राम में अपनी गद्दी की रक्षा करने की शक्ति नहीं है, जिसे कैकेयी के समान साधारण स्त्री गेरुआ वस्त्र पहना सकती है, जिसमें अपनी स्त्री की रक्षा करने की भी शक्ति नहीं है, जिसका मन बेहद गरीब है और इसी कारण जो निरंतर मुनियों के आश्रमों का आश्रय लेता है, रावण उस बेचारे राम के चरण छूयेगा? सीता ! तू भूल रही है। क्या तू जानती है कि वायु और अग्नि-जैसे देव मेरे यहां नौकर हैं ? क्या तू जानती है कि ये हजारों देव और गंधर्व-कन्याएं निरंतर मेरे साथ विहार करने को तैयार हैं ? हां, यदि कभी तेरा राम आकर मेरे चरण छुए और चाहे, तो इस संसार की एकाध अच्छी कन्या के साथ मैं उसका विवाह अवश्य करा सकता हूं। लेकिन वह बेचारा यहां आयेगा ही कैसे ? और, राम की तरह कंद-मूल खाने और झोंपड़ी में रहनेवाले के मन में विवाह की इच्छा भी क्यों होने लगी ?"

सीता से रहा न गया। उन्होंने कहा, "रावण ! जिन बातों को कहने में हर किसी आदमी को लज्जा का अनुभव होगा, ऐसी बातें तू क्यों कह रहा है ? मुझे वापस ले चल। मैं तेरे पैरों पड़कर तुझसे विनती करती हूं कि मुझे मेरे राम के पास जाने दे।"

रावण बोला, "सीता ! तेरे पास आंसुओं का जैसा खजाना है, वैसा मेरे पास नहीं है। फिर भी अपना सारा खजाना तेरे चरणों में चढ़ाकर मैं तुझसे प्रार्थना करता हूं कि तू मेरी पटरानी बन जा। इन तीनों लोकों में जितनी भी सुंदर स्त्रियां हैं, उन सबको मैंने इकट्ठा किया है, किंतु सीता ! तेरे रूप के सामने उनकी कोई बिसात नहीं। मैं तुझ पर मोहित हुआ हूं ! तू मेरे महल की शोभा बढ़ा।"

सीता ने तीव्र स्वर में कहा, "रावण ! क्या तू यह समझता है कि सीता कभी राम को छोड़कर दूसरे किसी का विचार करेगी ?"

रावण हंसकर बोला, "सीता ! इसमें विचार करने-जैसी बात ही कौन-सी है ? संसार में कभी किसी रंक और दुर्बल प्राणी के हाथ में कोई रत्न पहुंच जाता है ! इसी तरह दुर्भाग्य से तू राम के हाथ में पड़ गई है। किंतु मैं तुझे धूल में लोटते कैसे देख सकता हूं ? मैं तो तुझे संसार के मुकुट में प्रतिष्ठित करना चाहता हूं।"

सीता बोली, "रावण ! तू धन्य है ! तब तो तू मुझे अवश्य ही वापस भेज देगा। रामचंद्र सारे संसार के मुकुट-रूप हैं।"

आंखों में तिरस्कार भरकर रावण ने कहा, "राम संसार का मुकुट है ? राम तो संसार का मैल है, मैल। सीता ! तू नहीं जानती। ये देव, दानव, गंधर्व, आर्य सभी संसार के लिए मैल-रूप हैं। आज संसार के माथे यह मैल चढ़ गया है, जिसे धो डालने के लिए ब्रह्मा ने मुझे वरदान दिया है। तू स्वस्थ हो जा। मुझे स्वीकार कर ले। फिर तू देखना कि मैं संसार का मैल किस तरह धो डालता हूं ? आज तो मैं केवल तेरे प्रेम का प्यासा हूं।"

सीता बोलीं, "रावण ! इस प्यास के प्यासे कभी सुखी नहीं हुये। मैं तुझसे बड़ी विनम्रता से कहती हूं कि तू मुझे राम के पास भेज दे। तेरे आसपास ये हजारों ललनाएं पड़ी हैं। फिर भी तू मुझे क्यों सता रहा है?"

रावण कहने लगा, "सीता ! इन हजारों ललनाओं के बीच रहते हुए भी तेरे बिना मुझे ऐसा लग रहा है, मानो मैं ऊजड़ अरण्य में सड़ रहा होऊं। तेरी देह पर जो यौवन है, वह उनकी देह पर कहां दीख रहा है ? तुझे देखते ही मेरा रोम-रोम उद्दीप्त हो उठता है। तेरे अंग-प्रत्यंग में मुझे कुछ नयापन दिखाई देता है। सीता ! मैं तेरे पैरों में पड़कर कहता हूं कि

तू राम को भूल जा, लंका के भोगों का उपभोग कर और मेरे इस सुलगते हृदय को शांति दे।"

सीता क्रुद्ध होकर बोली, "दुष्ट ! तेरी जीभ कट क्यों नहीं जाती ? सीता के निकट राम को छोड़कर शेष सारा पुरुष-संसार भाई-बेटे के समान है। रावण ! मेरे आसपास ये जो देवकन्याएं और गंधर्व-कन्याएं चक्कर काटा करती हैं, इनकी लंबी आहें मैंने कल रात सुनी हैं। समझ ले कि इन आहों से तेरे महल की ये चौड़ी दीवारें भी रोज-रोज खुदती जा रही हैं। राजन् ! तू वेद का अभ्यासी है। राजधर्म का पालन करने वाला है। तेरे राज्य में स्त्रियां निर्भयता से घूम-फिर नहीं सकेंगी, तो क्या वह एक क्षण भी टिक पायेगा ? क्या संसार का कोई राज्य इस तरह टिका है ?"

रावण ने हँसकर कहा, "सीता ! क्या तू मानती है कि स्त्रियां ही राज्य को टिका पाती हैं ?"

सीता ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया, "अवश्य ! स्त्रियों के शील की रक्षा पर ही कोई भी राज्य निर्भर करता है। राज्य स्त्रियों के शील का रक्षक है। जहां राज्य स्वयं शील का रक्षक बनने के बदले भक्षक बन जाता है, जानता है, वहां क्या-क्या नहीं होता ? रावण ! ऐसे राजा मनुष्य के रूप में उत्पन्न होने के बदले सांड़ के रूप में पैदा हों, तो कितना अच्छा हो ? क्या तुझे अंदाज है कि तेरे पीछे घिसटने वाली इन कन्याओं का हरण करके तूने कितने-कितने परिवारों के कलेजों में खंजर भोंके हैं, और कितने-कितने गृहस्थों के गृह-जीवन को उजाड़ दिया है ? रावण ! मैं कहती हूं, मेरी बात मान जा। मुझे राम के पास वापस भेज दे।"

रावण व्यंग्य की हँसी हँसते हुए बोला, "सीता ! तू कैसी नादानों की-सी बात करती है ? तुझे समझना चाहिए कि जिन कन्याओं को मैं पामर पुरुषों से छुड़वाकर अपने महल में लाता हूं, उन पर तो मैं भारी उपकार करता हूं। तू क्या जाने कि दुनिया की कितनी रमणियां ऐसे पामरों के हाथों से निकलकर मेरे समान रावणों के हाथों में पहुंचती हैं ? सीता ! भले ही आज बात तेरी समझ में न आये, लेकिन दो दिन के बाद तू भी अनुभव करेगी कि तुझे राम के पास से उठा लाने में मैंने तेरा भला

ही किया है ।"

सीता ने मुंह फेरकर कहा, "रावण ! अब अपनी बकवास बंद कर। अब तो तेरे समान नीच के साथ बात करते हुए भी मुझे लज्जा का अनुभव होता है । जा ! चला जा ! याद रखना, तेरे इस कार्य के लिए भगवान तुझे क्षमा नहीं करेगा ।"

रावण बोला, "सीता ! जब मैं तुझे प्रेम से मनाना चाहता हूं, तो तू मुझे डराना चाहती है ! मुझे अपनी काम-वासना ही तृप्त करनी होती, तो कितनी देर लगती ? किंतु सीता ! मैं बलात्कार करना नहीं चाहता। ऐसा बलात्कार करते हुए मेरा दिल कांप उठता है, नहीं तो रावण को बलात्कार करने में कितनी देर लगती है, इसे जानना हो, तो इन दानव-कन्याओं से पूछ ले। लंबकर्णा ! इस सीता को अशोक वन में ले जा ! वहां इसे रहने के लिए जो कुछ भी चाहिए, सो सब देना। खबरदार ! इसे कोई कड़ुई बात मत कहना। सीता ! जा। तेरा उत्तरीय गिर पड़ा है। तू अपनी पसंद का दूसरा उत्तरीय पहन ले। समझ ले कि रावण का जो कुछ भी है, सो सब तेरे चरणों में अर्पित है। अशोक वन में हवा बदलने से तेरे चित्त को शांति मिलेगी और तेरे विचारों में भी अंतर आवेगा।"

सीता ने गहरी व्यथा के स्वर में कहा, "राक्षसराज ! आज मैं तेरे अधीन हूं, इसलिए तू जहां रखेगा, वहां रह लूंगी। राक्षस सचमुच कितने दुष्ट होते हैं, इसका अनुभव मुझे आज हुआ ।"

रावण बोला, "सीता ! अभी तो और अधिक अनुभव होना शेष है। अपनी स्त्रियों के प्रति हम राक्षस कितनी माया-ममता रखते हैं, इसका पता तो किसी राक्षस की स्त्री को ही हो सकता है ।"

यों कहकर रावण उठ खड़ा हुआ और उसके साथ सब राक्षसियां भी खड़ी हो गईं। ज्योंही सीता ने रावण की तरफ पीठ फेरी त्योंही सीता पर खीजी हुई एक राक्षसी रावण के गले से लिपट गई और बोली, रावण ! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं इस सीता को कच्ची-की-कच्ची चबा जाऊं !"

रावण चलते-चलते बोला, "सीता नहीं मानेगी, तो अंत में और क्या होगा ?"

: ८ :

अशोक वन में

लंका के एक छोर पर अशोक वन नामक एक बड़ा जंगल था। बादलों से बात करने वाले ऊंचे छटादार और विशाल तनोंवाले वृक्ष अशोक वन की शोभा बढ़ा रहे थे। रंग-बिरंगे पंखोंवाले, चित्र-विचित्र गरदनोंवाले, लाल-पीली चोंचवाले और तीव्र-कोमल स्वरवाले अनेकानेक पक्षी अशोक वन में निरंतर कलरव किया करते थे। जंगल की शोभा बढ़ाने वाले ऊंचे-नीचे ढालवाले रास्ते, किसी जगह कोई छोटी-सी टेकरी, तो किसी जगह कोई छोटी-सी नदी, कहीं-कहीं छोटे-छोटे तालाब, तो कहीं छोटे-बड़े मैदान, जिनपर रेती बिछी थी, कहीं सरोवर के किनारे एकाध डोंगी, तो कहीं कोई छोटा-सा मंडप, किसी जगह सरोवर में लाल-पीली मछलियां, तो कहीं हरिण और खरगोश—इस प्रकार की अनेकानेक कृत्रिम शोभा से अशोक वन बड़ा ही रमणीय हो उठा था। अशोक वन के ही मध्य भाग में एक छोटा-सा बगीचा बनाया गया था और उसमें अशोक, आम, बबूल, पारिजात आदि के अनेक सुगंधित वृक्ष फूल-फल से लदे हुए थे। इस बगीचे के बीचों-बीच संगमरमर का एक आराम-गृह बना था। आराम-गृह के खंभे नीलम और माणिक के बनाये गए थे। इस आराम-गृह के आसपास चारों ओर संगमरमर के हौद बने थे। आराम-गृह पर चढ़ने के लिए और हौद में नहाने के लिए रत्नजटित सीढ़ियां थीं। आराम-गृह के चारों ओर समुद्री रेत से बिछा एक गोल मार्ग था और इस मार्ग के किनारे ही भांति-भांति के फूलोंवाले पेड़ महक रहे थे। लंका की किसी निर्मल पूर्णिमा की रात को जब चंद्रमा इस आराम-गृह पर अपनी किरणें फेंकता था, तो समूची अशोक वाटिका जगमगा उठती थी और ऐसा भास होता था, मानो कैलास ही लंका में उतर आया हो ! जब-जब लहर आती, तब-तब लंकापति इस अशोक वन में अपनी स्त्रियों के साथ आता, आराम-गृह में अथवा विशाल वन में विहार करता, अपनी प्रियाओं के साथ मद-पान करता, भांति-भांति के कामोद्दीपक भोजन करता, और किसी मद-

विह्वल हाथी की प्रचंडता से विलास में मग्न हो जाता।

अगहन महीने के शुक्लपक्ष की द्वादशी का दिन था। रात लगभग समाप्त होने आई थी। चंद्रमा डूब चुका था। सारा वन-प्रदेश शांत था। पक्षी अपने घोसलों में विश्राम कर रहे थे। केवल एक सीता अशोक के नीचे बैठी गरम-गरम आंसू बहा रही थीं। जिस पीले रेशमी वस्त्र को वह पंचवटी से पहनकर आई थीं, वही उनकी कमर पर बिलकुल मैला होकर पड़ा था; दस-दस महीनों से जिसने तेल और कंघी देखी नहीं, वह उनकी वेणी अस्तव्यस्त स्थिति में उनकी पीठ पर पड़ी थी; उनकी आंखें तेजस्वी होते हुए भी दीन थीं, उनका शरीर उपवास से कृश हो चुका था; उनके गाल बैठ गये थे; उनके मस्तक की बिंदी निस्तेज बन चुकी थी; उनकी देह पर मैल की तहें जमी थीं; उनके मुंह पर शोक का भार था, फिर भी उसकी देह में से एक प्रकार का ओज झर रहा था, सीता के आसपास अनेक कालमुखी राक्षसियां पड़ी नींद ले रही थीं।

इसी बीच रावण ने अशोक वन में प्रवेश किया। उसकी काम-वासना उसे सुख से सोने नहीं दे रही थी। उसने अपनी भयंकर देह को अपने बस-भर सुंदर रीति से सजाया था। हाथ पर और कमर पर आभूषण पहन रखे थे। उसने सिर पर रत्न-जटित मुकुट धारण किया था। उसकी कामासक्त आंखें मदपान के कारण अधिक उन्मत्त बनी थीं। अपने विकराल चेहरे पर उसने प्रयत्नपूर्वक प्रेम और मृदुता का मुलम्मा चढ़ा लिया था। रावण के साथ अनेक राक्षसियों और देव-दानव-गंधर्व-कन्याओं ने वन में प्रवेश किया। किसी के हाथ में मदिरा से भरे उत्तम सोने-चांदी के पात्र थे, किसी के हाथ में मदिरा से भरी छोटी-छोटी प्यालियां थीं, किसी के हाथ में मांस भोजन के पात्र थे, किसी के हाथ में रावण पर हवा करने के लिए पंखे थे, किसी के हाथ में सीता को उपहार में देने के लिए लाये गए वस्त्राभूषण थे। मदोन्मत्त हथिनियों के झुंड में गजराज जिस तरह झूम-झूमकर चलता है, उसी तरह रावण किसी के कंधे पर हाथ टिकाता, किसी के अवयव से छेड़-छाड़ करता, किसी के हाथ से मदिरा पीता, किसी के मुंह पर हलकी चपत लगाता, किसी के कान में गुनगुनाता, किसी को नम्र वचनों से हंसाता और किसी का तिरस्कार करके उसे रुलाता, अशोक वन के आराम-गृह की तरफ

आ रहा था— मानो गजराज प्रकृति की किसी गूढ़ प्रेरणा से प्रेरित होकर अपनी मौत के गड्ढे की तरफ जा रहा हो !

रावण के अशोक वन में प्रवेश करते ही सीता पर पहरा देने वाली सब राक्षसियाँ तुरंत उठ बैठीं और आंखें मलती हुईं दरवाजे की ओर देखने लगीं। रावण के आने की खबर मिलते ही सीता का दिल धड़क उठा और वह संभलकर बैठने की कोशिश में लगी ही थीं कि इतने में रावण आ पहुंचा और उनके सामने खड़ा हो गया।

सीता रेती में बैठी थीं। वहीं उन्होंने अपने पैर उठाकर उनसे अपना पेट ढँक लिया, दोनों हाथों से अपनी छाती ढँक ली और आंखें नीचे को झुकाकर बैठ गईं।

राक्षसराज आया। उसने अंधेरे में डूबी समूची वाटिका पर एक दृष्टि डाली। आसपास फैली हुई राक्षसियों की तरफ देखकर उसने क्रूर हास्य किया और फिर अपनी मद-विह्वल आंखों से सीता को बेहूदे तरीके से निहारता हुआ बोला, "सीता ! इन पिछले दस महीनों से मैं तुझसे विनती करता रहा हूं, फिर भी तुझे अपना शरीर मुझसे छिपाना पड़ता है ? जनक-पुत्री ! मैं कुछ कहूं ? तेरा यह मैला वस्त्र, रो-रोकर सूजी हुई तेरी आंखें, कमर से भी नीचे तक पहुंचनेवाला तेरा यह केश-पाश, जिसे इन महीनों में तेल का स्पर्श तक नहीं हुआ, आभूषण-रहित तेरी यह देह, तेरे फीके होंठ, अन्न के अभाव में कृश बना तेरा यह शरीर—इन सबके साथ तू कुरूप बनने का कितना ही प्रयास क्यों न करे, तो भी तेरी इस समूची देह की आड़ से तेरा सौंदर्य जगमगा उठता है और वह मुझ-जैसों को विह्वल बना देता है। सीता ! मैं सच कहता हूं। तेरे प्रत्येक अंग से एक प्रकार का तेज प्रकट होता है और उस तेज के प्रकाश में मेरे-जैसा व्यक्ति तो पागल बना फिरता है। सीता ! तू सोचती होगी कि मैं यह सब अधर्म की बातें कह रहा हूं, पर असल में बात ऐसी नहीं। दूसरों की स्त्रियों का हरण करके उनपर अत्याचार करना हम राक्षसों का तो स्वधर्म है; किंतु पुरुषत्वहीन लोगों ने इसे अधर्म कहा है। सीता ! तेरे साथ बलात्कार करने में मुझे देर कितनी लग सकती है ? पर नहीं, मैं तेरे अधीन रहना चाहता हूं। जबतक तू स्वेच्छा से रावण को नहीं अपनायेगी, तबतक मैं

कामवासना से पीड़ित होता रहूंगा, कई-कई रातों तक अपने पलंग पर पछाड़े खाता रहूंगा, समूची देह में एक प्रकार के दाह की पीड़ा को भुगतता रहूंगा, पर मैं तुझपर बलात्कार नहीं करूंगा। सीता ! तू आज अपने पूरे यौवन में है। जवानी एक वार खत्म होने के बाद फिर वापस नहीं आती। तू दूसरे का विचार छोड़ दे और रावण के साथ खा-पीकर अपनी जवानी को सुशोभित कर। तुझे डरने की जरूरत नहीं है। बेचारा राम यहां किस तरह आ सकता है ? उस अभागे ने तो कभी की आत्म-हत्या कर ली होगी !"

छाती पर आंसू टपकाती अपनी आंखों को पोंछकर सीता ने अपने और रावण के बीच में घास का एक तिनका रखा और फिर वह बोलीं, "रावण ! राक्षसराज ! मंदोदरी के समान सती के पति रावण ! तू इतना तो सोच कि मैं पराई स्त्री हूं। तेरी अपनी स्त्री को कोई पर-पुरुष ऐसे वचन कहे, तो तुझे वे कैसे लगेंगे ? तुझे स्वप्न में भी यह आशा नहीं रखनी चाहिए की जो सीता राम की है, यह कभी रावण की बनेगी। रावण ! जो मूढ़-मति लोग अपनी भार्या से संतुष्ट न रहकर पशु की भांति चाहे जहां भटकते फिरते हैं, उनके पैर आखिर विनाश के गड्ढे में ही गिरते हैं। रावण ! तेरी लंका में एक भी सत्पुरुष होता, तो तू इस हद तक आगे न बढ़ता। तेरे समान राजाओं का दुर्दैव यह होता है कि कोई तुझे सच्ची बात कहता ही नहीं। लंकापति ! मैं देख रही हूं कि तेरा काल तुझे प्रेरित कर रहा है। तेरे पीछे-पीछे ये जो बेचारी देव-दानव-गंधर्व-कन्याएं घूमती रहती हैं, उनके निःश्वासों की गरम आग को मैं तेरे सिर पर चक्कर काटते देख रही हूं। राजन् ! तेरा बल, तेरा पराक्रम, तेरा वैभव, तेरी सत्ता, तेरे प्रलोभन, ये सब मिलकर भी मुझे राम से अलग करने में असमर्थ हैं। मैं तो तुझे सलाह देती हूं कि तू मुझे वापस भेज दे और रामचंद्र के साथ मित्रता कर ले। रामचंद्र इतने दयालु हैं कि वे अवश्य क्षमा कर देंगे, नहीं तो रावण ! तू और तेरा राज्य दोनों राम के एक ही बाण से तहस-नहस हो जायेंगे। रावण ने दशरथ की पुत्रवधू को छेड़ा था, यह बात संसार के इतिहास में अमिट अक्षरों से अंकित हो जायेगी और किसी के मिटाये मिट नहीं पायेगी !"

सीता के उग्र वचनों से रावण बुरी तरह उबल उठा और बोला,

"सीता ! तेरा एक-एक वाक्य मेरे हृदय में घाव करके उस पर नमक छिड़क रहा है ! जी चाहता है कि तेरे एक-एक वाक्य के साथ तेरा एक-एक टुकड़ा कर डालूं। फिर भी वैदेही ! तेरे प्रति मेरा जो प्रेम है, वह मुझे रोके हुए है। ज्ञान में, सत्ता में, वैभव में, पराक्रम में, तेरे प्रति अपने प्रेम में—इन सब बातों में मैं राम से बढ़कर हूं, फिर भी मूढ़ की भांति तू राम को अपने मन से हटा नहीं सकती !

"सीता, तू स्त्री-जगत् में रत्न के समान है। तेरे समान रत्न को राम-जैसे दरिद्र पुरुष के पास रहने देने में तेरा, अपना और तेरी सृष्टि करने-वाले स्वयं ब्रह्मा का भी अपमान होता है। राक्षसों के राजा के नाते तुम आर्यों की झूठी सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ना मुझे अपना धर्म प्रतीत होता है। सीता ! मैं तुझसे स्पष्ट कहे देता हूं। अब अगले दो महीनों में तूने मेरी बात नहीं मानी, तो मेरे लोग तेरा मांस पकाकर मुझे परोस देंगे ? मुझे लाचार होकर ऐसा आदेश देना पड़े, इससे अच्छा है कि तू स्वयं ही समझ जा और लंका की पटरानी बन जा।"

अपनी ओर से आखिरी धमकी देनेवाले रावण से सीता ने कहा, "राक्षसराज ! तू यह मत समझ कि हम आर्य स्त्रियां मौत से डरती हैं। स्वयं मुझमें इतनी शक्ति है कि मैं अपने आप शाप देकर तुझे भस्म कर सकती हूं, किंतु हम लोग अपनी शक्ति का ऐसा उपयोग करने में हीनता का अनुभव करते हैं। रावण ! तुम राक्षसों में और हम आर्यों में बड़ा अंतर है। तुम लोग अपनी अखूट शक्ति का उपयोग स्थूल भोगों के लिए करते हो, जबकि आर्य अपनी शक्ति का उपयोग संसार के कल्याण के लिए करते हैं। मेरे वचनों से तू जितना घायल होता है, उससे कहीं गहरे घाव राम के बाण तुझ पर करेंगे। रावण ! मैंने अपने राम की आज्ञा ली नहीं है, अन्यथा सीता की तरफ देखनेवाले रावण की आंखें फूट जातीं और पामरतापूर्ण वचन बोलनेवाली उसकी जीभ के टुकड़े-टुकड़े हो जाते। राक्षसराज ! मेरे राम तो युग-पुरुष हैं। उनसे श्रेष्ठ पुरुष आज तीनों लोकों में मिलना कठिन है। कौआ कितने ही सफेद पंख क्यों न धारण कर ले और कुछ समय के लिए मोती चुगना भी सीख ले, लेकिन क्या इतने-भर से वह राजहंस बन सकता है ? कुत्ता कितनी ही बहादुरी क्यों न दिखाये और

जंगल में सिंह की चाल से थोड़ा-बहुत चल-फिर ले, लेकिन क्या इतने-भर से वह मदोन्मत्त हाथियों के गंडस्थलों को भेद सकता है ? रावण ! कहां वे पवित्र और महानुभाव रामचंद्र और कहां तेरे समान पापी और क्षुद्र रावण ! उस महापुरुष के साथ खड़े रहने का भी तुझे अधिकार नहीं है। रावण ! पराक्रम की क्या बात कही जाय ? यदि तुझमें पराक्रम था, तो तू मेरे राम की अनुपस्थिति में मुझे क्यों उठा लाया ? यदि तुझमें पराक्रम था, तो मेरे माता-पिता के घर धनुष क्यों नहीं तोड़ सका ? रावण ! अब भी विचार करले। मुझे वापस भेज दे और अपने समूचे राक्षस-कुल को विनाश से बचा ले। रावण ! मेरे आंसुओं पर तू हँस मत। मेरे समान स्त्री के आंसू केवल पानी की बूंदें नहीं हैं। इन आंसुओं की धाराओं ने तो संसार के बड़े-बड़े साम्राज्यों को धोकर साफ कर डाला है और धुरंधर राजाओं के सिरों को रण-क्षेत्र में धूल चटाई है। अब भी समय है। तू मुझे मेरे राम को सौंप दे और संसार के सर्वनाश को रोकले। रावण ! मैं अपने राम-लक्ष्मण के पैरों की आहट सुन रही हूं। मैं अपने राम के धनुष की टंकार सुन रही हूं। मैं तेरे समूचे राक्षसकुल के सिरों को लंका की भूमि पर लोटते देख रही हूं। मैं लंका की समस्त राक्षसियों के शृंगार को उतरा हुआ देख रही हूं। मैं तेरी समूची लंका को विधवा के रूप में देख रही हूं। और राक्षसराज ! तुझसे अधिक पवित्र, अधिक महानुभाव, अधिक शुद्ध और आर्य हृदयवाले किसी राक्षस के सिर पर तेरा यह राजमुकुट चढ़ते देख रही हूं।"

सीता के ऐसे वचन सुनकर रावण सहसा गरज उठा, "सीता ! तेरा काल तुझसे ऐसी बातें कहलवा रहा है। यहां इकट्ठी सब राक्षसियो ! सुनो ! तुम सब या तो समझाकर, समझाए न समझे, तो कुछ-न-कुछ प्रलोभन देकर और उस पर भी न माने, तो डर दिखाकर सीता को मेरी बनाओ। वह किसी तरह न माने, तो तुम उसे मार-पीट भी सकती हो। किंतु इस बात का ध्यान रखना कि उसकी देह की सुंदरता कम न हो। प्रिये धान्यमालिनी ! दुःख की बात यह है कि सीता को देखने के बाद तुम राक्षसियों के प्रति और इन देव-गंधर्व-कन्याओं के प्रति मेरी कामवासना मानो मर चुकी है। मेरा शरीर सारे ही दिन तप्त बना रहता है और

इतनी-इतनी स्त्रियों के बीच विहार करते हुए भी मैं मानो भूखा ही बना रहता हूं। तुम सब सीता को समझाओगी तभी यह सारा दुःख समाप्त हो सकेगा। मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं दीखता।"

यों कहकर रावण अशोकवन से अपने महल को चला गया। आंखें फाड़कर देखतीं, खीझतीं, धमकियां देतीं, कड़ुवे बोल बोलतीं, डरातीं और मनातीं राक्षसियों के बीच से उठकर सीता पास के एक वृक्ष की ओर मुड़ी।

: ९ :

विभीषण का त्याग

एक बार रावण रथ में बैठकर राजसभा की ओर चला। रथ के आगे और पीछे राक्षस नंगी तलवार लिये चल रहे थे। रथ के दाएं-बाएं हाथ में नंगे खड्गवाले घुड़सवार और हाथी पर सवार इधर-उधर घूम रहे थे। पानी छिड़के हुए राजमार्ग पर रथ को आता देख सैकड़ों राक्षस और राक्षसियां जयनाद करने लगीं; रावण के चरण छू-छूकर सैकड़ों लोग उसे प्रणाम करने लगे; सैकड़ों दूर खड़े-खड़े रावण के दर्शन-मात्र के लिए अधीर हो रहे थे। रथ पर लंका का ध्वज फहरा रहा था और राज के छत्र-चंवर लेकर चलनेवाले राक्षस रावण की सेवा कर रहे थे।

जब रथ राजसभा के पास पहुंचा, तो रावण रथ से नीचे उतरा और माणिक की बनी सीढ़ियों पर पैर रखता हुआ अंदर आकर सिंहासन पर बैठ गया। लंका का सिंहासन त्रिलोक के स्वामी का सिंहासन था। सारी दुनिया के उत्तमोत्तम रत्न उसमें जड़े थे; अत्यंत कोमल चमड़ीवाले प्रियक नामके हरिण के चमड़े को उस पर सजाकर बिछाया गया था; सिंहासन के आसपास हाथों में नंगी तलवारों वाले काले-काले पिशाच खड़े हो गये थे।

रावण ने सिंहासन पर बैठने के बाद तुरंत आदेश दिया, "शत्रु के विषय में तत्काल विचार करने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है, इसलिए समस्त मंत्रियों को बुला लिया जाय।"

रावण के मुंह से आदेश निकलते ही उसके नौकर लंका में चारों ओर फैल गये और घर से, गांव से, शराब की दुकान पर से या बागी-बगीचे से, जो जहां भी मिले, वहां से, सब मंत्रियों को बुला लाये।

राजसभा के मंत्री एक के बाद एक आने लगे। आकर रावण के सिंहासन के निकट खड़े रहकर रावण को प्रणाम करने लगे और वापस मुड़कर अपनी-अपनी जगह पर बैठने लगे। छह महीनों की अपनी नींद पूरी करके अभी-अभी जागा कुंभकर्ण सभा में आया। रावण की नाराजी मोल लेकर भी उसे सच्ची बात सुनानेवाला विभीषण आया। इंद्र को पकड़कर कैद करनेवाला मंदोदरी का पुत्र इंद्रजित आया। तीनों लोकों को थरथरानेवाली राक्षस-सेना का सेनापति प्रहस्त आया। जिसने कुबेर और यम को हराते समय आगे बढ़कर मोरचा संभाला था, वह महापार्श्व आया। महाबल आया। दुर्मुख आया। वज्रदंष्ट्र आया और दूसरे भी अपने-अपने अधिकार के अनुसार आकर अपने लिए निश्चित स्थान पर बैठ गये।

मंत्रियों के कपड़ों से और उनके द्वारा धारण की गई मालाओं में से अगरु और चंदन की महक चारों ओर व्याप्त हो रही थी। समूचे सभागृह में अपूर्व शांति थी। कोई ऊंची आवाज में बोलता नहीं था। सबकी आंखें सिंहासन की ओर एकटक लगी थीं। सबके कान सिंहासन की ओर लगे थे। सबके हाथ कमर में लटकती तलवारों की मूठों पर थे।

सभा पूरी तरह जुड़ चुकी थी। तभी सभा की शांति को चीरता हुआ रावण बोला, "प्रहस्त ! सबसे पहले अपनी सारी सेना को लंका के चारों ओर तैनात कर दो। ऐसी व्यवस्था कर दो कि जिससे कोई जीव-जंतु भी इस लंका के अंदर घुस न सके। इस विषय में कोई असावधानी बरते, तो तुम स्वयं उसका सिर धड़ से अलग कर दिया करो। राज्य पर आई आपत्ति के समय में हम दूसरा कोई विचार कर ही नहीं सकते।"

रावण के मुंह से ये शब्द निकले कि प्रहस्त उठा, बाहर जाकर देखते-देखते समुचित व्यवस्था करने के लिए आदेश देकर लौट आया और

अपनी जगह पर आ बैठा। रावण ने आगे कहना शुरू किया, "मेरे सुख-दुःख के साथियो, मेरी जय-पराजय के भागीदारो, मेरे हिताहित के रक्षको! आज आप सबके सामने अपना दिल खोलकर बात करने के लिए मैंने आप लोगों को बुलवाया है। आप जानते हैं कि आपके सुख-दुःख मेरे सुख-दुःख हैं। आपकी मदद से ही मैंने कुबेर को और यम को पराजित किया है और आज आपके सहयोग से ही तीनों लोकों में किसीका कोई भय न रखते हुए मैं विचरण करता रहता हूं। आपके हित में ही मैंने अपना हित माना है और हम सबने मिलकर ही समूचे राक्षस-कुल का उद्धार किया है।

"अपने दिल की बात मैं बहुत पहले आप सबसे कहना चाहता था, किंतु भाई कुंभकर्ण अपनी नींद में पड़ा था, इसलिए मैं उसकी राह देखता रहा। पर हम सबके सौभाग्य से कुंभकर्ण ठीक समय पर जागा है इसलिए आज मैं अपनी बात आपके सामने रख रहा हूं।

"राम की भार्या सीता के विषय में आप सबने थोड़ा-बहुत तो सुना ही है। इस सीता के संबंध की सच्ची वस्तु-स्थिति मैं आपके सामने थोड़े में रख देता हूं। मुझे सूझ नहीं रहा है कि सीता के सौंदर्य की बात मैं आपसे किन शब्दों में कहूं। ब्रह्मा ने संसार में आजतक उसके समान दूसरी कोई स्त्री रची नहीं, वह आगे रच भी नहीं सकेगा। मैं सीता को अपनी भार्या बनाना चाहता हूं, पर वह स्वीकार नहीं कर रही है। पहले उसने मुझसे एक वर्ष की अवधि मांगी थी, और मैंने उसे वह दे भी दी थी; परंतु अब मेरी वासना मुझे चैन से रहने नहीं देती। इसी बीच हनुमान नाम का एक वानर समुद्र लांघकर लंका में घुस आया, सीता के साथ बात कर गया, अशोक वन को नष्ट-भ्रष्ट कर गया, अपने अनेकानेक राक्षसों को मौत के घाट उतार गया और आखिर जाते-जाते हमारी लंका को भी जला गया! जब हमारे इंद्रजित ने हनुमान को बांध लिया, तो मैंने सोचा था कि उसे मार डाला जाये; लेकिन अपनी लंका में मेरा ही भाई विभीषण मेरे विचार का विरोध करे, तो मैं दूसरों से क्या कहूं? विभीषण की सलाह मानकर मैंने उसे मुक्त कर दिया और वह जाते-जाते हमारी नगरी को जला गया।

"मैं भलीभांति समझता हूं कि राम सात समुद्रों को लांघकर यहां नहीं

आ सकेगा। मैं यह भी भलीभांति समझता हूं कि बेचारा राम यहां आकर भी कुछ कर नहीं सकेगा। आपके साथ रहकर मैंने देवों और दानवों के भी छक्के छुड़ा दिये हैं, फिर यह तो बेचारा आर्य है, भटक-भटककर थक चुका है और रो-रोकर हतप्राण भी हो चुका है। और, वह सुग्रीव ? उसके जैसे वानर किस योग्य माने जायंगे ?

"फिर भी आप मेरे सुख-दुःख के भागीदार हैं, इसलिए यह बात आपके सामने रख रहा हूं और आपकी सलाह चाहता हूं कि इस विषय में क्या करना उचित होगा ?"

रावण की ये बातें सुनकर कुंभकर्ण गुस्से में आकर बोला, "रावण ! कामवासना हम राक्षसों की तो अत्यंत मूल्यवान विरासत है, किंतु इसके लिए इतनी अधिक दीनता क्यों ? महाराज ! आप सीता के पीछे इतने पागल क्यों बन गये हैं ? सीता को अपनी पत्नी बनाने का काम कौन-सा महान काम है, जो ऐसी सभा में उस पर मंत्रणा करना चाहते हैं ?

"दूसरी एक बात और है। आप सीता को उठाकर ले ही आये। अब दस महीनों के बाद आज हम सबसे पूछने का मतलब क्या है ? मैं जानता हूं कि सीता का प्रश्न आज आपका व्यक्तिगत प्रश्न नहीं रह गया है, बल्कि समूचे राक्षसकुल का प्रश्न बन गया है। किंतु महाराज ! ऐसी कोई कार्य-वाही करने से पहले ही आपको हम मंत्रियों से पूछना चाहिए था।

"फिर भी महाराज रावण ! मैं आपको एक बात का विश्वास दिलाता हूं, आप मेरे बड़े भाई हैं, आप समूचे राक्षस-कुल के तारणहार हैं, आप लंका के राजा हैं, आप हम सबके सिरताज हैं, इसलिए यदि आपकी आज्ञा हुई, तो मैं राम-लक्ष्मण दोनों को अपने एक-एक बाण से ही समाप्त कर दूंगा और सब-वानरों को हड़प जाऊंगा ! आपके साथ मेरा कितना भी मतभेद क्यों न हो, फिर भी आपके दुश्मन मेरे भी दुश्मन हैं। राम को मार डालना मेरा काम मान लीजिए। राम के मरने पर समझ लीजिए कि सीता आपकी पत्नी हो ही चुकी।"

कुंभकर्ण की इन बातों से रावण को सहज ही क्रोध आ गया। यह देखकर महापार्श्व बोला, "महाराज ! शहद की इच्छा करना, शहद के छत्तें पर हाथ डालना और मधुमक्खियों के डंकों को सहन करने के बाद

भी शहद की एक बूंद तक चखे बिना लौट आने से बढ़कर मूर्खता और क्या होगी ? आप सीता के साथ बलात्कार क्यों नहीं करते ? वह बेचारी कहां जायेगी ? आप अपनी वासना तृप्त कीजिए। हम सब आपकी मदद के लिए खड़े ही हैं। यह कुंभकर्ण है, आपका इंद्रजित है, सेनापति प्रहस्त है, मैं हूं—इन सबके रहते आपको डर किसका है ?"

महापार्श्व के ऐसे वचन सुनकर रावण सहज ही सोच में पड़ गया और बोला, "मित्रो ! बलात्कार करना तो हम सब पालने में से ही सीखे हैं। लेकिन एक बात कहूं ? आप मेरी हँसी उड़ाना चाहें, तो खुशी से उड़ाइए। सचाई यह है कि जब-जब मैं उस सुंदरी से बात करने जाता हूं, तब-तब वह हम दोनों के बीच घास का एक तिनका रख लेती है। और महापार्श्व ! उस तिनके के सामने आते ही मेरा शरीर कांपने लगता है। बलात्कार तो मैंने किये हैं, पर घास के इस तिनके के बीच में आने पर उस तरफ अपना हाथ बढ़ाने की मेरी शक्ति ही समाप्त हो जाती है ! कई बार मैं दृढ़ निश्चय करके जाता हूं, किंतु उस तिनके के सामने आते ही मेरा निश्चय डिग जाता है और मेरा सारा शरीर पसीने से नहा उठता है। अपने जीवन में मैंने बड़े-बड़े पहाड़ लांघे हैं, गर्जना करनेवाले बड़े-बड़े सागर लांघे हैं, पाताल में भी सहज ही प्रवेश किया है; किंतु इस तिनके के उस पार हाथ बढ़ाते समय मुझे ऐसा भास होता है, मानो मैं मौत के मुंह में जा रहा हूं। बुद्धि से विचार करता हूं, फिर भी वह तिनका मुझे बलात्कार करने से रोकता है। देव, दानव, गंधर्व आदि से न डरने का वरदान देनेवाले ब्रह्मदेव मुझे इस तिनके से क्यों डरवा रहे हैं ? क्या रावण की मृत्यु इस तिनके से ही बदी है ?"

कुंभकर्ण बोला, "महाराज ! आप भ्रमित हो गये हैं। आपके मन में डर बैठ गया है। और कोई बात नहीं है। बस, आप इस डर को अपने मन से निकाल डालिये।"

रावण कहने लगा, "भाई कुंभकर्ण ! मैं यह सब समझता हूं। अपने जीवन की एक घटना आप सबको सुनाऊं ? एक बार मैं एक पर्वत पर पहुंच गया। वहां वेदवती नाम की एक कन्या तप करती थी। मैं उसपर मोहित हो गया और मैंने अपनी इच्छा उस पर प्रकट की, पर वह नहीं मानी।

तब मैंने उसकी चोटी पकड़ी । इतने में तो उसने योगाग्नि प्रकट की और मेरे देखते-देखते जलकर मर गई ! जब मैं सीता पर अत्याचार करने की बात सोचता हूं, तो यह वेदवती मेरी आंखों के सामने आ खड़ी होती है और मेरा अंग-प्रत्यंग शिथिल पड़ जाता है। वैसे देखें तो स्वयं इंद्र भी हमारे सामने खड़े होने की शक्ति नहीं रखता। फिर राम-लक्ष्मण का तो पूछना ही क्या था ? मुझे राम की और उसके वानरों की तो कोई चिंता ही नहीं है।"

रावण की ये बातें सुनकर विभीषण अपने आसन पर खड़ा हुआ। उसने दोनों हाथों से रावण के पैर छुए और बोला, "महाराज ! यदि मैं यह कहूं कि सीता का हरण करके आपने अपनी छाती पर एक बड़ा नाग बैठा लिया है, तो वह गलत न होगा। आपकी इन बातों को ये सब तो समझ नहीं रहे हैं, पर मैं विभीषण भलीभांति समझता हूं। जो लोग अधर्म का आचरण करते हैं, वे ऊपर से कितने ही निडर क्यों न दीखते हों, अंदर से तो डरपोक ही होते हैं। महाराज ! राक्षसों के देश में, राक्षसों की ही नगरी में, डरावनी राक्षसियों के बीच, भूख, प्यास और जागरण आदि से कृश बनी एक छोटी-सी सीता का तिनका आपको थर्रा देता है। इसका भेद इन लोगों की समझ में नहीं आ सकता। इसे समझने के लिए भी भिन्न प्रकार की बुद्धि चाहिए। महाराज ! आप मेरी बात मानें, तो मैं कहूंगा कि सीता को वापस कर दीजिए। मुझे विश्वास है कि इंद्र और कुबेर को हरानेवाले हम लोग राम के बाणों को लौटा नहीं पायंगे। मैं देख रहा हूं कि इस सबके पीछे कोई गूढ़ ईश्वरी संकेत काम कर रहा है। इसलिए कहता हूं कि आप सीता को वापस राम को सौंप दीजिये।"

विभीषण की ऐसी बातें सुनकर प्रहस्त से न रहा गया। वह बोला, "कुमार ! हमें न देवों का भय है, न दानवों का भय है। फिर राम या सुग्रीव से भयभीत होने का कारण क्या ?"

उत्तर में विभीषण ने कहा, "कारण पूछना हो तो महाराज के दिल से पूछो। किसी का भय नहीं है, तो यहां इकट्ठे किसलिए हुए हैं ? ब्रह्मदेव के वरदान के रहते हुए भी महाराज का अंतःकरण इस प्रकार भयभीत क्यों है ? मैं भी स्पष्ट रूप से भय देख रहा हूं, इसीलिए कह रहा हूं कि

सीता को वापस कर दीजिये। मैंने राम को देखा नहीं है, परंतु जो कुछ सुना है, उस पर से मेरा विश्वास यह बना है कि जब उसके बाण चलेंगे तो हमारे सिर धरती पर लोटने लगेंगे। प्रहस्त ! मुझे अधिक दुःख इस बात का है कि भैया तो स्वभाव के उतावले हैं, वे जोश में आकर काम कर डालते हैं, पर हमें तो उन्हें सच्ची सलाह देनी चाहिए। लेकिन हममें से कोई उन्हें वैसी सलाह देता नहीं है और हम केवल उनकी 'हां' में 'हां' मिलाते रहते हैं। महाराज ने अपने गले में एक महासर्प धारण कर लिया है। उससे उन्हें बचाना ही हो, तो हमें उन पर जबरदस्ती करनी होगी। उनके न मानने पर भी हमें सीता को वापस भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए। यदि हम महाराज का भला चाहते हैं तो हम उनकी दुर्मति का पोषण नहीं कर सकते। महाराज ! मेरी तो यही सलाह है कि सीता को राम के पास वापस भेज दीजिये और अपना, हमारा, सारे राक्षस कुल का और संसार का कल्याण कीजिए।"

बृहस्पति के समान निर्मल बुद्धि वाले विभीषण ने जब इस प्रकार कहा तो नौजवान राक्षसों के बीच बैठा इंद्रजित गरज उठा, "काका विभीषण ! मुझे तो आज ही पता चला कि अपनी धर्मबुद्धि की आड़ में आप इतना अधिक डर लिये बैठे हैं। पौलस्त्य कुल में तो क्या, किसी भी कुल में जन्मा पुरुष डर की ऐसी बातें कभी न कहेगा। काका ! मेरी और प्रहस्त की बात तो छोड़िये ही; मैं तो कहता हूं, राक्षस-कुल का एक नन्हा बच्चा भी राम से निपट लेने की शक्ति रखता है। आप हमें व्यर्थ ही क्यों डरा रहे हैं ? अभी कल ही की तो बात है। आपके देखते ही मैं इंद्र को कैद करके ले आया था। क्या यह इंद्रजित राम के समान प्राकृत मनुष्य से डर जायेगा ? आप धर्म के नाम पर मेरे पिता को इस प्रकार डराते हैं, यह मुझसे सहा नहीं जाता। अगर आप सब बूढ़े हो गए हैं, तो हट जाइये; हम नौजवान राम से निपट लेंगे। महाराज ! विभीषण काका असमय ही बूढ़े हो चुके हैं। आप विश्वास मानिये कि हम सब लोग आपके साथ हैं।"

इंद्रजित के मारे वाक्-प्रहारों का सामना करता हुआ विभीषण बोला, "बेटा इंद्रजित ! अभी तो तेरे मुंह में मन्दोदरी का दूध लगा है। तू इस उम्र में अभिमान के ऐसे वचन मत बोल। तेरी बुद्धि अभी बिलकुल कच्ची

है। तू नहीं जानता कि महाराज का हित किस बात में है। जीवन के सूक्ष्म प्रश्नों पर तेरे विचार अभी परिपक्व नहीं माने जायेंगे। तेरे काका ने तुझसे ज्यादा जमाना देखा है। इंद्रजित ! मैं देख सकता हूं कि बिना किसी के डराये केवल एक तिनके से डरने वाले महाराज स्वयं अपने से ही डर रहे हैं। प्रहस्त ! आप संसार के किसी भी मनुष्य को निर्भय कर सकते हैं। स्वयं ब्रह्मदेव भी किसी को अभयदान दे सकते हैं; किंतु अपने आपसे डरने वाले को दुनिया में कोई निडर नहीं बना सकता। आप सब महाराज की परेशानियों को दूर करने की डींगें हांकते हैं; पर यदि आप उनके दिल पर हाथ रखकर देखेंगे, तो पता चलेगा कि वहां तो वही कंप, वही भय और वही थर्राहट मौजूद है। मैं तो फिर कहता हूं कि सीता राम को वापस सौंप दो और जो अपराध हुआ है, उसके बदले में उन्हें वस्त्राभूषण भेंट करो। मैं मानता हूं कि रामचंद्र हमें क्षमा कर देंगे।"

ज्योंही विभीषण ने अपनी बात पूरी की, त्योंही वेग से विनाश की ओर धंसते हुए आदमी की तरह रावण बोला, "विषधर सांपों के बीच बसना बेहतर है, कट्टर-से-कट्टर दुश्मनों के बीच बसना भी बेहतर है, पर भाई कहलाने वाले इन सगे-संबंधियों के बीच बसना बहुत कठिन है। विभीषण ! अपने धर्म के परदे की आड़ में तू कितनी क्षुद्रता का पोषण कर रहा है, दुनिया को इसका क्या पता है ? रावण लंका का राजा बना, यही न तेरी आंखों में खटक रहा है ? क्या इंद्रजित का इंद्र को जीतना भी तुझसे सहा नहीं जा रहा है ? मैंने तीनों लोकों में अपनी कीर्ति फैला दी, यह भी तुझसे देखा नहीं जाता ? विभीषण ! तुझे मुझसे इतनी अधिक ईर्ष्या क्यों ? रक्त के संबंध से मेरा भाई होते हुए भी अंदर से तू मेरा शत्रु है। कुंभकर्ण ! मैंने तुझसे कहा न था कि यह धर्म-ध्वजी किसी समय हमारा सत्यानाश कर देगा ? आज सीता को वापस सौंपने में मेरी प्रतिष्ठा क्या रह जायगी ? राम ने जनस्थान में हमारे सब राक्षसों को मार डाला। उसके बारे में कोई कुछ पूछता नहीं। विभीषण ! तेरी सलाह के अनुसार चलने पर तो मुझे लंका का राज्य छोड़कर वापस गोकर्ण पहुंच जाना चाहिये। विभीषण ! इस समय दूसरे किसी ने ऐसी बातें की होतीं तो उसका सिर काफी पहले धड़ से अलग हो चुका होता !"

रावण के मुंह से निकले इन शब्दों के तुरंत बाद विभीषण खड़ा होकर कहने लगा, "महाराज ! जीभ पर शहद रखकर 'जी हां', 'जी हां', कहने वाले तो हमारी सभा में कई बैठे हैं, किंतु कड़ुए होते हुए भी हितकारी वचन कहनेवाले आपको क्वचित ही मिलेंगे। महाराज ! हमारा काल समीप आ चुका है, इसीलिए मेरी बातें आपके गले उतर नहीं रही हैं। मैं देख रहा हूं कि हम वेग से काल की ओर बढ़ते जा रहे हैं। आपके लिए और अपनी समस्त जाति के लिए जो मुझे हितकर लगा, वही मैंने आपसे कहा है। आपको वह न रुचे, तो मैं लाचार हूं। महाराज ! विभीषण आपसे विदा चाहता है। लंकापति ! मैं फिर कहता हूं कि आप सीता को वापस कर दीजिये। इससे हम सबका कल्याण होगा। महाराज ! आपका और सारे राक्षसकुल का कल्याण हो। मैं अब अपने रास्ते जा रहा हूं। जब काल पुकारता होता है, तो वैद्य को सच्ची दवा भी नहीं सूझती और सूझती भी है, तो रोगी उसे पी नहीं सकता।"

विभीषण अपने चार राक्षसों को साथ लेकर चल दिया। बाद में रावण ने सभा विसर्जित कर दी।

: १० :

घिरते बादल

जब विश्वकर्मा ने त्रिकूट पर्वत पर लंका का निर्माण किया, उस समय उसने उसके चारों ओर एक किला बनवाया था। चारों दिशाओं में किले के चार दरवाजे बनवाये थे और छोर वाले हिस्सों में एक-एक कोने में एक-एक गोलाकार बुर्ज बनवाई थी।

जब रावण ने कुबेर से लंका छीन ली और लंका में राक्षसों की राजधानी स्थापित हो गई, तो इस किले का कोई खास उपयोग न रह गया। लंका के चारों ओर अथाह पानी का गढ़ तो खड़ा ही था, फिर रावण का

राज्य हो जाने के बाद सतत युद्ध का ही रटन करने वाली राक्षस सेना स्वयं उसका जीता-जागता किला बन गई। इस कारण विश्वकर्मा द्वारा बनाया गया किला लगभग बेकार हो चुका था। आज लंका का यह किला फिर जीता-जागता-सा बन गया। किले के चारों दरवाजों पर नंगे खड्ग धारण करनेवाले पिशाच रात-दिन पहरा देते थे; किले की चारों बुर्जों पर दूर तक मार करने वाले अस्त्र सजाकर रख दिये गए थे। किले की दीवार पर युद्ध के विचार-मात्र से उन्मत्त बने राक्षस इधर-से-उधर घूमते रहते थे; किले के ऊंचाई वाले हिस्सों पर से रावण के सेनापति दूर-दूर सुवेल पर्वत पर, और उससे भी दूर गर्जना कर रहे सागर पर और सागर के भी उस पार दक्षिणावर्त के किनारों पर दृष्टि दौड़ाते रहते थे।

जिस दिन हनुमान लंका को जलाकर लौटा, उस दिन से रावण की नींद हराम हो गई थी। यह सच्चाई ही रावण को चौंकाने के लिए काफी थी कि एक वानर सागर लांघ कर लंका में प्रवेश कर सकता है। अब तो वह रात-दिन सीता के और राम के बारे में ही सोचने लगा और जब उसे यह समाचार मिला कि राम की सेना सुवेल पर्वत तक आ पहुंची है, तो उसकी चिंता का पार न रहा।

शुक और सारण नामक अपने दो निजी मंत्रियों के साथ किले के शिखर पर घूमते-घूमते रावण बोला, "शुक! तेरा जिंदा वापस आ जाना तो ठीक ही रहा। अभी कल सुबह तक तो ये वानर सागर के किनारे बैठे-बैठे जमुहाइयां ले रहे थे, और राम मानो मृत्यु-शैया पर सोया हो, इस तरह दर्भ की शैया बनाकर सोया हुआ था। लेकिन आज मैं सुन रहा हूं कि वे लोग सुवेलाचल तक आ पहुंचे हैं। यह कैसी बात है ?"

शुक बोला, "महाराज! यहां इतनी दूर बैठे-बैठे आपको राम के सच्चे समाचार मिलते ही नहीं हैं। उस स्थान पर नियुक्त आपके अधिकारी और गुप्तचर आपकी सत्ता के मद से इतने अंधे बन गये हैं कि वे राम के सारे कामों को, उसकी सारी हलचलों को, तुच्छ मानते हैं। हमारे जासूसों की आंखें भी कुछ ऐसी उलट गई हैं कि राम की सच्ची बातें देख ही नहीं सकते, और देखते भी हैं, तो वे उन्हें उनके सच्चे स्वरूप में आपके सामने रखते नहीं हैं। मुझे आपसे यह कहना चाहिए कि सागर के उस पार

राम की शक्ति कितनी है, ये सारे वानर और भालू राम के एक-एक शब्द पर मर मिटने के लिए किस हद तक तैयार हैं, राम की दुर्बल दीखनेवाली काया के अंदर कितनी प्रबल आत्मा निवास कर रही है, इसकी ठीक जानकारी हम आपको देते ही नहीं हैं। राक्षसराज ! ऐसे अवसर पर तो हमारे झूठे समाचारों की आड़ में कहां कितनी सचाई छिपी है, इसकी खोज आपको अपनी भव्य कल्पना से कर लेनी चाहिये।"

रावण बोला "सारण ! क्या तू मानता हूं कि राम हम राक्षसों को हरा सकेगा ?"

सारण ने कहा, "महाराज ! मुझे तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं। जबतक मैंने दूर रहकर बातें सुनी थीं, तबतक तो मैं भी यही मानता था कि राम-लक्ष्मण को मार डालना हमारे लिए एक मामूली-सी बात है, बच्चों का खेल है। किंतु राम की छावनी देखकर लौटने के बाद मेरे वे विचार बदल गये हैं। आपने राम को देखा है ?"

रावण ने सिर हिलाते हुए कहा, "मैं उसे देखना ही नहीं चाहता। कहते हैं कि वह उसे देखनेवालों की आंखों को ऐसे भुलावे में डाल देता है कि उसको देखने के बाद देखनेवाले को उसकी बात सच लगने लगती है। मेरी राक्षसियां और मेरे गृहमंत्री मुझे सलाह दे रहे हैं कि मैं उसे देखूं ही नहीं; लेकिन तू यह तो बता कि तूने वहां जाकर क्या किया ?"

शुक बोला, "महाराज ! जैसे ही हम राम की छावनी के पास पहुंचे, राम के लोगों ने हमें तुरंत पहचान लिया।"

रावण ने पूछा, "तुम्हें तुरंत पहचान लिया ? इधर हनुमान लंका जलाकर चला गया और हम तो सोते ही रह गये !"

सारण बोला, "महाराज ! राम की समूची सेना की आंखें सजग हैं। सच तो यह है कि आपके पराक्रम ने हमें गाफिल बना दिया है।"

रावण बोला, "अपनी गिरफ्तारी के बाद तो तुम दोनों पर भारी आफत आ पड़ी होगी ?"

शुक ने कहा, "महाराज ! यह भी कोई पूछने की बात है ? वे हमें पकड़कर रामचंद्र के पास ले जा रहे थे, तभी रास्ते में वानरों ने लात और घूंसे मार-मारकर हमें अधमरा कर दिया।"

रावण ने आवेश में आकर कहा, "यहां विभीषण धर्म की पूंछ बनकर बातें किया करता था। उससे कहा क्यों नहीं कि हम तो मात्र दूत हैं ?"

सारण बोला, "आप की बात सच है। पर हमने पहले से यह कहा नहीं था कि हम संदेशा लेकर आये हुए हैं और असल में हम दूत थे भी नहीं। हमें तो गुप्त रूप से राम की सारी स्थिति और व्यवस्था का पता लगाना था।"

रावण ने कहा, "चाहे दूत कहो, चाहे जासूस कहो, मतलब तो काम निकालने से है न ? जानकारी इकट्ठी करनी हो, तो जासूस और संकट में फंसने के बाद बच निकलना हो तो दूत ! युद्ध में तो यही चलता है। हां, तो कहो, आगे क्या हुआ ?"

सारण बोला, "आगे ? महाराज ! आगे की क्या बात करूं ? राम अपने भाई लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ एकान्त में बैठे थे। वानर हमें वहीं ले गये। राम को देखते ही उनकी वंदना में हमारे हाथ बरबस जुड़ गये। इस अपराध के लिए आप हमें क्षमा कीजिये। किंतु महाराज ! उनके-जैसी सौम्य मूर्ति मैंने आजतक कहीं नहीं देखी। बिलकुल सादे। उनके पास हमारे महल की-सी कोई शोभा-सामग्री थी ही नहीं। एक सादे आसन पर राम खुले बदन बैठे थे। उनके शरीर पर एक भी आभूषण नहीं था। पास ही एक बहुत साधारण धनुष पड़ा था। महाराज ! हमारे पहुंचने पर राम ने हमें सम्मानपूर्वक बुलाया। हमें अपने पास ही बैठा लिया और वानरों से हमारे बारे में सारी बातें सुन लीं।"

रावण ने पूछा, "फिर ?"

शुक बोला, "फिर, बड़ी उदारता से स्वयं राम ने हमें वह सारी जानकारी दे दी, जिसे हमें गुप्त रूप से, चोरी-छिपे, प्राप्त करना था।"

रावण ने जोर देकर पूछा, "स्वयं राम ने ?"

सारण बोला, "यही तो उसकी विशेषता है ! राम ने हमसे हँसते-हँसते कहा, मेरी कोई बात छिपी नहीं है। मैं धर्म की रीति से लड़ना चाहता हूं। मुझे सीता को मुक्त कराना है। आप अपने रावण से जाकर कहिये कि पंचवटी से सीता का हरण करते समय उसने जो शौर्य दिखाया है, उसी शौर्य को धारण करके वह तैयार रहे !"

रावण ने पूछा, "तब तो तुम्हें राम की सेना की सारी जानकारी मिल चुकी होगी ?"

शुक बोला, "सब मिली है। हम सारे वानर-सेनापतियों को पहचानते हैं और उन सबके बलाबल का भी हमें पता है।"

रावण हर्षित होकर बोला, "तब तो बाजी जरूर हमारे हाथ रहेगी। हमें राम की सेना का भेद मालूम हो गया है, इसलिए अब जीत तो हमारी ही समझो।"

सारण ने कहा, "महाराज ! हम भी राक्षस हैं, अतएव जैसा आप मानते हैं, हमें भी वैसा ही मानना चाहिए। किंतु जब आप एकान्त में बैठाकर हमसे पूछते हैं, तो हमें आपको सच बात कहनी चाहिए। राम को हराने के बारे में आपका हिसाब ठीक नहीं है। हमने राम की सेना देखी है। उसमें अधिकतर वानर और ऋक्ष हैं। हमारे राक्षसों ने संसार के अनेक राष्ट्रों से लड़-लड़कर लड़ाई के काम में जिस युक्ति-प्रयुक्ति का और पशुता का विकास किया है, उसे जंगल के ये प्राणी कम ही विकसित कर पाये हैं, किंतु सीता को प्राप्त करने की उनकी उत्कटता और उससे भी अधिक रामचंद्र के लिए मर-मिटने की उनकी भावना और उनका आग्रह इतना उग्र है कि उसके सामने आपके समान व्यक्ति को भी झुकना पड़ सकता है।"

रावण बोला, "सारण ! इंद्र और कुबेर को हरानेवाला रावण उस साधारण-से राम के आगे झुकेगा ?"

शुक ने कहा, "महाराज ! इंद्र तो केवल देवों का राजा था। राम भले ही दो हाथों और दो पैरोंवाला मनुष्य हो, पर दक्षिण के चराचर जगत् पर उसका जबरदस्त प्रभुत्व है। महाराज ! जिस बाली की ओर आपके-जैसा व्यक्ति भी अंगुली नहीं उठा पाया, उस बाली को राम ने एक ही बाण से मारा है और सुग्रीव के साथ मित्रता की है। संसार में किसी के आगे न झुकनेवाला हमारा अथाह सागर भी राम के आगे इतना दीन बन गया, मानो पानी से भरा कोई छोटा-सा गड्ढा हो। आपत्ति के समय में कुमार विभीषण को आपके साथ रहना चाहिए था, पर वे आज ही राम की शरण में पहुंचे हैं। मैंने तो सुना है और कुछ अपनी आंखों से देखा भी है कि दक्षिण के वानर और ऋक्ष ही नहीं, बल्कि जरूरत पड़ने पर

दक्षिण के वृक्ष और पत्थर भी राम की मदद में खड़े रहेंगे। महाराज! आप अवश्य मानिये कि आज हमें ऐसा लग रहा है, मानो सारी सृष्टि राम के पक्ष में है और हमारे विरुद्ध है! इसलिए किसी भी उपाय से आपको राम के साथ समझौता कर लेना चाहिये। आप सीता को वापस सौंप दीजिये, राम को मना लीजिए और सब की रक्षा कीजिये।"

रावण गरज उठा, "राम के साथ समझौता? मैं सीता को वापस दूं? सारण! तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है। रावण की यह रीति नहीं कि शत्रु के दूर रहने पर लड़ाई की बड़ी-बड़ी बातें करे और जब शत्रु बिलकुल समीप आ जाय, तो दो हाथ जोड़कर उससे याचना करने लगे! तुझे डर लगता हो, तो तू अपनी रक्षा के लिए विभीषण के पीछे-पीछे उधर जा सकता है। मुझे देखना है कि राम रावण को कैसे हराता है। तू मुझे यह बता कि राम के सेनापति कौन-कौन हैं, किस-किस की, कितनी-कितनी शक्ति है, और राम ने अपनी सेना की व्यूह-रचना किस प्रकार की है, आदि-आदि।" यों कहकर रावण राम की सेना को किले पर से देखने लगा।

... ...

रावण बोला, "दादा! आपको इस बुढ़ापे में यह क्या सूझा?"

माल्यवान ने कहा, "भैया! मुझे जो सूझा है, वह ठीक ही सूझा है। रावण! तूने राम का नकली सिर बनाया, उसे लहू से तर किया, साथ में धनुष-बाण भी ले गया, लेकिन क्या इतने पर भी सीता मानी?"

रावण ने सिर हिलाते हुए कहा, "सीता क्यों मानने लगी! उसने तो उलटे मुझसे कहा, जिस तरह तूने मेरे राम को मारा है, उसी तरह मुझे भी मार डाल, जिससे हम दोनों मृत्यु के घर इकट्ठे हो जायं!"

माल्यवान बोला, "बात यही है। देखने में सीता का शरीर बहुत छोटा है। कहां हमारी राक्षस स्त्रियां और कहां बेचारी सीता!..."

रावण बीच ही में बोल उठा, "शूर्पणखा-जैसी का तो एक कौर ही समझिए!"

माल्यवान कहने लगा, "फिर भी तीनों लोकों को कंपानेवाला रावण सीता पर हाथ तो नहीं डाल पाता है न? रावण! तेरी मां मुझसे कह रही थी कि तुझे राम के साथ समझौता कर लेना चाहिये और सीता को

वापस कर देना चाहिये। बाद में कोई अवसर मिले तो फिर अपने मन की कर लेना। मुझे लग रहा है कि आज प्रकृति की सारी शक्तियां हमारे विरुद्ध हैं।"

रावण बोला, "दादा ! प्रकृति की शक्तियों के अनुकूल होने पर विजय प्राप्त करने में पराक्रम ही क्या है ? प्रकृति की सारी शक्तियां विरोध में हों, अत्यन्त निकट का भाई-जैसा भाई द्रोही बनकर बैठ गया हो, सारे मंत्री हिम्मत हारकर संधि कर लेने की सलाह दे रहे हों, समूची सेना पस्त हालत में हो और चारों दिशाओं में अंधेरा और निराशा छा चुकी हो, ऐसे समय में विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने और स्वयं पराजय के मुंह में से विजय को खींच लाने में ही वीरता है ! आज रावण को युद्ध से विरत करके आप राक्षसों का अथवा मेरा कौन-सा कल्याण करनेवाले हैं ? इंद्र और कुबेर-जैसों को हरानेवाला रावण राम के समान सामान्य मनुष्य के साथ संधि करे, क्या इससे अधिक इष्ट यह नहीं है कि वह इस विशाल महासागर में जल-समाधि ले ले ! सुमाली का नाती और कैकसी का पुत्र जंगलों में भटकनेवाले राम के साथ संधि करे इसमें किसी की क्या शोभा है ! दादा ! आपको तो उलटे मुझे हिम्मत बंधानी चाहिये। जब वानरों की इतनी बड़ी सेना सागर की छाती पर चलकर आज लंका को कंपा रही है, ऐसे समय मेरी मति कुण्ठित हो जाय और मैं सीता को वापस भेजने की बात सोचने लगूं, तो आपको मुझे रोकना चाहिए। आप वयोवृद्ध हैं। अतएव राक्षस-कुल की प्रतिष्ठा की रक्षा आपको करनी चाहिये। माल्यवान ! जाइए, मेरी माता से कह दीजिये कि उसका रावण राम से डरकर उसकी कोख को लजायगा नहीं ! क्या शत्रु से डरकर भागनेवाले पुत्रों के कारण पुत्रवती कहलाने की अपेक्षा वांझ रह जाना हजार गुना अच्छा नहीं है ? दादा ! मेरी मां से कह दीजिये कि या तो रावण राम का सामना करके धरती माता की गोद में सो जायेगा, या..."

माल्यवान ने पूछा, "या क्या होगा ?"

जवाब में रावण बोला, "दादा ! जबान तक आई बात ध्यान से उतर गई। या तो...हां...या तो सीता को पटरानी बनाकर तेरे पैर छूने आयेगा।"

माल्यवान ने कहा, "बेटा रावण। तेरी अभिलाषा पूरी हो ! रावण ! मैं जांता हूं, पर तेरी मां का मन मानेगा नहीं।"

रावण बोला, "आप उसे मना लीजिये।"

माल्यवान ने कहा, "मैं तुझे समझा चुका हूं, पर तेरी बात मेरे दिल में तो खटक ही रही है।"

रावण कहने लगा, "आप. अपनी आंखों देख लेंगे, तो खटका मिट जायेगा। दादा ! मैं जब गोकर्ण पर गया था, तब भी अपनी मां के आशीर्वाद लेकर गया था। आज भी अपनी मां के अशीर्वाद से ही मैं राम को हरानेवाला हूं।".

यों कहकर दोनों एक-दूसरे से अलग हुये।

... ...

पुष्पक में बैठे-बैठे रावण ने कहा, "त्रिजटा ! तू अपनी सीता को यह सब दिखा। देख, सुग्रीव के इन वानरों को ये गिद्ध नोच रहे हैं; देख, उधर, उस तरफ न जाने कितने ऋक्षों से धरती पटी पड़ी है, और देख, उधर दूर पर राम और लक्ष्मण पृथ्वी पर मरे पड़े हैं। देखे ? आज सीता को मेरी शक्ति का विश्वास होगा।"

त्रिजटा बोली, "महाराज ! सीता तो यह सब देखकर रोती रहती है।"

रावण ने कहा, "उससे कह कि वह अपने राम को अंतिम बार देख ले। वह बेचारा तो बहुत पहले ही यमराज के घर पहुंच चुका है। उसकी देह निश्चेष्ट हो चुकी है। उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके हैं !"

त्रिजटा बोली, "महाराज ! सीता तो पागल हो गई है और मुझसे पूछ रही है कि यह सब स्वप्न है या सच है ?"

रावण ने हंसकर कहा, "त्रिजटा ! सीता जो कुछ देख रही है, वह सब सच है और राम से मिलने की आशा स्वप्न है। त्रिजटा ! देख, वे बेचारे हजारों वानर परेशान होकर इधर-उधर घूम रहे हैं। देख, वह विभीषण सिर पर हाथ रखे राम के पास बैठा है। त्रिजटा ! देख, वह वानरराज सुग्रीव लक्ष्मण के पैरों के पास बैठकर रो रहा है, और वह हनुमान तो कहीं दीखता ही नहीं है। लगता है, बहुत पहले कहीं भाग चुका है। त्रिजटा ! सीता से कह कि अब वह राम की आशा छोड़ दे और रावण

की पटरानी बन जाय ।"

त्रिजटा बोली, "महाराज ! सीता कुछ बोल ही नहीं रही है। केवल आपसे विनती करती है कि इस पुष्पक विमान में ही आप उसे मार डालें और नीचे फेंक दें, जिससे आखिर चिता पर तो वह और उसके राम एक हो सकें !"

रावण ने कहा, "त्रिजटा ! मैं सीता को इस तरह मार डालूं, तो संसार के एक श्रेष्ठ रत्न को मैंने क्यों नष्ट कर दिया, इसका जवाब मुझे ब्रह्मदेव को देना पड़ेगा। त्रिजटा ! अब तुम दोनों जाओ । कुछ ही देर में इन वानरों को और राम-लक्ष्मण को अग्निदाह दिया जायेगा। सीता उसे देखेगी, तो उसको आघात पहुंचेगा ।"

त्रिजटा बोली, "महाराज ! सीता कह रही है कि उसे कुछ देर और राम-लक्ष्मण को देख लेने दिया जाय । आपको काम हो, तो आप पधारिये ।"

रावण ने कहा, "अच्छी बात है। सीता की इच्छा है, तो कुछ देर के लिए तुम दोनों यहीं रुक जाओ । पर ध्यान रखना, कहीं बहुत देर न हो जाय ! मुझे काम है। मैं जाता हूं ।"

यों कहकर रावण विमान से उतरा और चला गया ।

सीता त्रिजटा से कहने लगीं, "बहन त्रिजटा ! मैं तुझसे क्या कहूं ? जब मैं छोटी थी, तो मिथिला के अच्छे-से-अच्छे ज्योतिषियों ने मुझसे कहा था कि मेरा सौभाग्य अखंड रहेगा। विश्वामित्र ! आपने और शतानंद ने हमारे विवाह के समय मुझे जो आशीर्वाद दिये थे, क्या वे सब आज मिथ्या सिद्ध हुए हैं ? जनस्थान के ऋषि-मुनियो ! आप मुझसे कहा करते थे कि मेरी देह पर सौभाग्यवती के सभी चिह्न हैं। क्या यह सब भी मिथ्या था ? इक्ष्वाकु-कुल के वसिष्ठ ! आपने मुझसे कहा था कि मैं वीरमाता बनूंगी। क्या आपके इस आशीर्वाद को भी मैं मिथ्या समझूं ? समूचे संसार के पवित्र तत्त्वों ने मुझे क्यों ठगा होगा ? त्रिजटा ! मुझ अभागिन को सारी दुनिया ने ठुकरा दिया है। अब मेरे जीने का कोई अर्थ नहीं रहा ।"

कुछ देर विचार करने के बाद त्रिजटा ने जवाब दिया, "सीता ! सीता ! मैं स्वयं राक्षसी हूं। अनेकानेक देव-कन्याओं और अनेकानेक दानव-कन्याओं को समझा-समझाकर मैंने रावण को सौंपा है। किंतु सीता ! तेरे

शील के सामने मैं दीन बन गई हूं। तुझे समझाने में मैंने कोई कसर नहीं रखी; लेकिन जब-जब मैंने तुझसे बात की है तब-तब ऊपर से मजबूत दीखनेवाले मेरे मन के किले को तूने कमजोर कर डाला है। सीता! हम तो राक्षस हैं। किसी भी उपाय से संसार का उपभोग करना ही हमारा लक्ष्य है। संसार में साधुता, सज्जनता, पवित्रता, एक-पत्नीव्रत-जैसी अनेकानेक चीजें मौजूद हैं, यह सब तो तूने मुझे सिखाया और मेरे हृदय में तूने भारी परिवर्तन ला दिया। तेरे इस उपकार का बदला मैं कैसे चुकाऊं! सीता! अपने महाराज का द्रोह करके मैं तुझसे कहती हूं कि राम-लक्ष्मण जीवित हैं, मरे नहीं हैं।"

सीता अचानक बोली, "त्रिजटा बहन! यह तू सच कह रही है या केवल मेरा मन रखने के लिए तूने यह बात कह दी है?"

त्रिजटा ने कहा, "सीता! मैं जो कह रही हूं, सच कह रही हूं। इंद्रजित ने दोनों को मूर्च्छित कर दिया है। उनके प्राण अभी उनकी देह में हैं। देख, उनके मुख पर की कांति अभी कम नहीं हुई है। ये विभीषण और सुग्रीव भी इस बात को जानते हैं, इसीलिए मूर्च्छा के दूर होने की राह देखते हैं। हनुमान उनके लिए औषधि लेने गया है। देख, वह औषधि लेकर उड़ता हुआ आ रहा है।"

सीता बरबस बोल उठी, "आर्यपुत्र! जागो, जागो!"

इतने में पीछे से आवाज आई, "त्रिजटा! सीता को लेकर तुरंत अशोक वन चली जाओ। महाराज ने तुमसे कहा था, फिर भी तुम इतनी देर तक क्यों रुकी रही हो? तुरंत चली जाओ। महाराज का कड़ा आदेश है।"

पुष्पक विमान अशोक वन की ओर उड़ा।

... ...

रावण बोला, "कुंभकर्ण! अब अपने संकट के समय याद करने योग्य भाई एक तू ही बचा है। विभीषण तो बहुत पहले से दुश्मन की गोद में जाकर बैठ गया है। वह लंका का राज्य चाहता था, तो उसने मुझसे क्यों नहीं कहा? जैसे, बाली को मरवा कर सुग्रीव राजा बना, वैसे ही अब रावण को मरवा कर विभीषण राजा बनेगा। कुंभकर्ण! तू तो किसी तरह जागता ही नहीं था!"

कुंभकर्ण बोला, "मुझे तो जब जगाया, मैं तुरंत जाग उठा।"

रावण ने कहा, "इस यूपाक्ष से पूछ।"

यूपाक्ष कहने लगा, "कुमार ! आपको जगाना तो बहुत ही कठिन काम है। पहले तो हमने आपके दरवाजे पर हरिण, भैंसे, सुअर आदि के ढेर खड़े किये, अनाज की बड़ी-बड़ी टेकरियां खड़ी कर दीं; लड्डू से भरे बरतनों के ढेर लगा दिये। इतनी तैयारी के बिना जो आपको जगाने निकले, वह जिंदा ही क्योंकर बचे ! फिर मैंने अपने राक्षसों को आपके शयन-गृह के अंदर भेजा, पर आपके नथुनों से निकलनेवाले श्वासोच्छ्वास के आगे किसकी ताकत थी कि टिक पाये ? आखिर एक राक्षस जैसे-तैसे गुफा के अंदर घुसा। उसने आपको चारों ओर से खूब झकझोरा; शंख और भेरी की आवाज का भारी कोलाहल करवाया, और अंत में आपके पेट पर पशुओं की दौड़ शुरू करवाई ! लेकिन आप जागें, तब न ! आपकी नींद तो ब्रह्मा के वरदान की नींद ठहरी। आखिर बड़ी मेहनत के बाद आपने करवट बदली, अंगड़ाई ली और फिर आप जागे।"

कुंभकर्ण बोला, "अब जगाने के बाद भी चुप रहोगे या नहीं ! रावण! बोल, मुझे क्या करना है ! तुम्हें देवों का डर हो, तो मैं उनका संहार कर दूं; तुम्हें दानवों का डर हो, तो मैं उन्हें समूचे-के-समूचे ही खा जाऊं; तुम्हें गंधर्वों का डर हो, तो मैं उन्हें पेट में समा लूं।"

रावण बोला, "भाई ! तेरे ये शब्द मेरे घायल हृदय पर अमृत छिड़क रहे हैं। मुझे भय न देवों का है, न दानवों का और न गंधर्वों का ही। मुझे भय केवल इस राम का है। मुझे भय केवल इन वानरों का है। चौदह ब्रह्मांडों में किसी से न डरनेवाला रावण आज काले सिरवाले एक छोटे-से मनुष्य से डर रहा है। कुंभकर्ण ! मुझे बचा और राक्षसों की लाज रख।"

कुंभकर्ण बोला, "भैया ! मैंने आपको पहले ही कहा है कि आप सीता को वापस लौटा दीजिए। आप उसको किसी ऐसी अशुभ घड़ी में ले आये हैं कि तब से अबतक आपको कभी शांति नहीं मिली।"

रावण क्रोध-भरे स्वर में बोला, "कुंभकर्ण ! जब बीमार दीनस्वर में अपनी बीमारी की बात कह रहा हो, तो क्या उस समय वैद्य बीमारी के कारण बताकर उलाहना देगा ? मैं तो मानता था कि जब सारी दुनिया

रावण को छोड़ देगी तब भी मेरी मां के पेट से जन्मा कुंभकर्ण मेरे साथ रहेगा। भाई ! तुझे जगाकर मैंने भूल की। तू खुशी से फिर सो जा।"

कुंभकर्ण बोला, "रावण भैया ! मेरी बात का इतना बुरा क्यों मान गए ?"

रावण ने कहा, "भाई ! तेरी बात का बुरा न मानूं, तो क्या इस खंभे का बुरा मानूं ? तू मेरे भाई का-सा भाई है। हमारे अनेक योद्धा मर चुके हैं; मंत्री और सेनापति रण-क्षेत्र में सोए हैं, और मैं भी घायल होकर लौटा हूं। ऐसे समय तुझे न जगाऊं, तो और किसे जगाऊं !"

कुंभकर्ण बोला, "महाराज ! बुरा मत मानिए। आखिर आप मेरे बड़े भाई हैं; समूची लंका के स्वामी हैं; राक्षसकुल के आधार हैं। विचारों में आपसे अलग होने पर भी आप मुझे अपने साथ ही समझिये। आप तनिक भी चिंता न कीजिये। राम की क्या बिसात कि मेरे सामने टिक सके ! उस बेचारे को तो जबतक हम खेलने देंगे, तभी तक वह खेलेगा—लड़ेगा। वैसे उसकी ताकत ही कितनी है ?"

यों कहकर कुंभकर्ण ने रावण को प्रणाम किया। वह मैदान में कूद पड़ा। उसने अनेकानेक वानरों का संहार किया और अंत में वह स्वयं भी रण-क्षेत्र में काम आ गया।

... ...

हाथ पटकते हुए रावण बोला, "अविंध्य ! खेल खत्म ! बेटा इंद्रजित ! मुझे, अपनी माता को, अपनी पत्नियों को और समूची लंका को छोड़कर तू कहां चला गया ? बेटा ! तुझे अपने पिता पर तनिक भी दया नहीं आती ? तेरे कहने पर तो मैंने सगे भाई विभीषण को जाने दिया; तेरी हिम्मत पर तो, किसी की परवा न करके, मैंने राम के साथ युद्ध छेड़ा। इतने दिनों से युद्ध चल रहा है, फिर भी तेरे पराक्रम पर विश्वास रखकर मैं निश्चित घूमता रहा हूं। बेटा ! आज तूने भी मुझे दगा दे दिया। अविंध्य ! मुझे लग रहा है कि प्रकृति के समस्त तत्वों ने मिलकर मेरे विरुद्ध एका कर लिया है, पर यह रावण यों डरनेवाला नहीं है।"

अविंध्य ने कहा, "महाराज ! आप शांत होइये। आप अब भी सीता को वापस सौंप देंगे, तो लंका में शांति हो सकेगी।"

रावण ने गुस्से में आकर कहा, "अब सीता को सौंपूं ? सीता को वापस सौंपना ही होता, तो मैं प्रहस्त के समान अपने मंत्रियों को क्यों मरने देता ? सीता को वापस सौंपना होता, तो अपने मां-जाए सगे भाइयों को मौत के मुंह में क्यों धकेलता ? सीता को वापस सौंपना होता, तो अपने जीवन के दाहिने हाथ के समान पुत्र को धरती पर क्यों सुलाता ? अब तो मैं इस दुष्टा को मार ही डालूंगा। मेरा, मेरे पुत्र का, मेरे सारे राज्य का और समस्त राक्षसों का नाश इस दुष्टा ने ही किया है ! सीता ही इस सारे अनर्थ का मूल है। जिस क्षण मैं इस पापिनी को लंका में लाया, उसी क्षण से मेरे दुर्भाग्य का आरंभ हुआ है। इसलिए मैं इसे नष्ट कर डालूंगा, तो सबकुछ शांत हो जायेगा। सीता के मरने से तीनों लोकों के सब उपद्रव शांत हो सकेंगे।"

यों कहकर रावण ने क्रोध में अपनी तलवार म्यान से खींच ली और वह अशोक वन की तरफ बढ़ा। तभी उसके पीछे जाकर अविंध्य ने उसे रोका और कहा, "महाराज ! रावण के समान तीनों लोकों का विजेता अपने वीर शस्त्र का प्रयोग एक स्त्री की देह पर करके उसे उसके रक्त से रंजित करे, क्या यह बात आपके नाम को कलंकित करनेवाली नहीं होगी ? आप महारथी हैं। आपके हाथों अनेकानेक संसार-प्रसिद्ध शत्रु रण-क्षेत्र में लेटे हैं। आज इन उन्मत्त वानरों से त्रस्त होकर आप सीता को मारेंगे, तो आपकी कीर्ति को सदा के लिए कलंक लग जायेगा। सीता बेचारी क्या करे ? आप हिम्मत रखिये। अभी हम राक्षसों का पुण्य समाप्त नहीं हुआ है। अभी तो आप मौजूद हैं; विरूपाक्ष, महोदर, महापार्श्व आदि बचे हैं—आपमें से एक-एक समूचे संसार को जीतने में समर्थ हैं। आप सब इकट्ठे होकर राम पर हमला बोल दीजिये और फिर देखिये कि वानरों की क्या दशा होती है !"

अविंध्य की बातें सुनने के बाद रावण ने तलवार म्यान में की, वह शांत होकर अशोक वन से वापस आया और उसने स्वयं युद्ध के मैदान में उतरने का निश्चय किया।

: ११ :

अंतिम संग्राम

अधिकतर राक्षस मर मिटे; कुंभकर्ण के समान भाई रण-क्षेत्र में सदा के लिए सो गया। इंद्र को बांधकर घर लानेवला इंद्रजित भी चला गया; धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकंपन, प्रहस्त, अतिकाय, निकुंभ आदि अकेले होने पर भी दस-दस हजार दुश्मनों को भारी पड़नेवाले राक्षस रण-भूमि में सो गये।

यह देखकर रावण स्वयं राम के साथ युद्ध करने निकला, मानो जीवन की शून्यता में से किसी नए ही प्रदेश में प्रवेश कर रहा हो, इस प्रकार के हर्ष के साथ उसने अपना रथ आगे बढ़ाया।

सामने से राक्षसराज को आता देखकर रामचंद्र उसके सम्मुख आये और बोले, "रावण, लंकापति ! मेरी अनुपस्थिति में सीता का हरण करके तूने चोर का काम किया है। क्या भगवान शंकर के कैलास को डगमगा देनेवाला रावण पति की अनुपस्थिति में पत्नी का हरण करने-जैसा पराक्रम कर सकता है ? रावण ! मैंने तेरे विषय में बहुत-कुछ सुन रखा है। तू वेदों का अभ्यासी है, तूने अपनी उग्र तपश्चर्या से ब्रह्मा को प्रसन्न किया है, तूने देवों और दानवों के सिर पर पैर रखा है। तेरे समान वीर को यह नीच काम क्योंकर सूझा ?"

उत्तर में रावण ने कहा, "रामचंद्र ! तेरी वाक् चतुरी की मुझे आवश्यकता नहीं। तेरी बातों से मैं भुलावे में आनेवाला नहीं हूं। तू निश्चित समझ ले कि हम सीता को छोड़ेंगे नहीं। तू चाहे, तो मैं सीता पर अधिक दया दिखा सकता हूं; तू चाहे, तो सीता के बदले में मुंहमांगी देवकन्याओं से तेरा विवाह करवा सकता हूं; तू चाहे, तो तुझे अयोध्या का राज्य वापस दिला सकता हूं; पर सीता तो रावण की ही रहेगी। सीता को वापस करने की बात तो तुझे अपने मुंह से निकालनी तक नहीं चाहिए।"

रामचंद्र क्रुद्ध होकर बोले, "दुष्ट ! सज्जन पुरुष को शोभा देनेवाले शब्द तेरी जीभ पर आ ही नहीं सकते। एक चरित्रवान मनुष्य को शोभा

देनेवाली उच्चता की आशा तुझसे कैसे रखी जाय ? तेरी तपश्चर्या की आड़ में भोग-वासना की दुर्गंध-ही-दुर्गंध भरी थी ! मुझे नहीं लगता कि पृथ्वी अब तेरा बोझ अधिक समय तक ढो सकेगी। रावण ! शायद तू समझ न पाता हो, पर असल में तू स्वयं ही अपनी मौत को खोज रहा है।"

यों कहकर रामचंद्र ने रावण पर बाणों की बौछार शुरू कर दी।

एक ओर रावण, दूसरी ओर रामचंद्र; एक ओर राक्षस, दूसरी ओर आर्य पुरुष; एक ओर विकराल पशुबल, दूसरी ओर अडिग आत्मबल; एक ओर प्रचंड शरीरवाला और निरी पशुता से भरा रावण, दूसरी ओर सुंदर मानव देहवाले और प्रभुतापूर्ण रामचंद्र; एक ओर संसार के सारे आसुरी बल, दूसरी ओर चौदहों ब्रह्मांडों का आध्यात्मिक तेज। दोनों समान बलवान, दोनों समान पराक्रमी, दोनों समान वेगवान—संसार-रूपी महामाया की तराजू में कौन अधिक वजनदार सिद्ध होगा ?

राम ने एक बाण मारा। रावण ने उसे अपने एक बाण से काट दिया। राम ने दो बाण मारे और रावण ने अपने दो बाणों से उन्हें काट गिराया। राम ने पांच बाण मारे, तो रावण ने भी पांच मारे। राम ने एक अस्त्र चढ़ाया तो रावण ने दूसरा चढ़ाया। रावण ने अपनी तलवार खींच ली, तो रामचंद्र ने उसका स्वागत किया। क्षण में दोनों चक्र की तरह घूम गये और क्षण में बाणों की बौछार शुरू कर दी। क्षण में परस्पर घायल हो गये और दूसरे ही क्षण ढाल-तलवार लेकर आमने-सामने खड़े हो गये। वानर और राक्षस संसार के दो महावीरों का युद्ध निगाह गड़ाकर देखते रहे। एक ओर संसार के भूत, प्रेत और पिशाच खड़े होकर रावण को प्रोत्साहित कर रहे थे, दूसरी ओर संसार के ऋषि-मुनि जगत् की शांति और कल्याण के लिए रामचंद्र पर विजय के आशीर्वाद बरसा रहे थे। सभी आंखें राम-रावण के हथियारों की दिशा में घूम रही थीं।

इसी बीच रामचंद्र ने रावण की छाती पर ऐसा कड़ा प्रहार किया कि रावण को मूर्च्छा आ गई। रावण का सारथि डर के मारे रावण के रथ को लेकर लंका की ओर चल पड़ा। रावण के रथ को लौटते देखकर सब वानर जोरों से चीखने-चिल्लाने लगे और सारा रणक्षेत्र राम के जय-जयकार के भारी घोष से गूंज उठा।

रथ में बेहोश पड़ा रावण इस जय-जयकार से सहसा जाग उठा और क्रोध में आकर बोला, "अरे सारथि ! तू रथ को कहां ले जा रहा है ?"

सारथि ने डरते-डरते कहा, "महाराज ! आप बेहोश हो गये थे, इसलिए मैं आपको लेकर लंका की ओर जा रहा था।"

रावण उठकर बैठ गया और बोला, "अरे मूर्ख ! तेरे रथ में दो-चार गांवों का मुखिया नहीं बैठा है, बल्कि तीनों लोकों को कंपानेवाला लंकापति रावण बैठा है। तुझे इसका ध्यान है या नहीं ? इतनी बड़ी शत्रु-सेना के देखते रथ वापस करके तूने आज रावण की कीर्ति को कलंकित किया है। आज जब कि मेरे और राम के युद्ध को देखने के लिए सचराचर जगत् आंखें जमाये बैठा है, ऐसे समय में रावण का रथ लौट पड़ा, इसे मैं बड़ा अपशकुन समझता हूं। चल, अब रथ को जल्दी मोड़ ले और मुझे राम के सामने पहुंचा दे।"

सारथि ने रथ को रण-क्षेत्र की ओर मोड़ा। वानर-सेना फिर अचंभे में आकर उसे देखने लगी। रावण रथ में बैठा-बैठा मन-ही-मन बोल रहा था, "सारथि ! रथ खड़ा कर दे। यह वेदवती मुझे क्यों बुला रही है ? वेदवती ! तुझे देखते ही मुझे पसीना छूटने लगता है। तू जा; 'राम को हराने के बाद मैं स्वयं आऊंगा और तुझसे क्षमा मागूंगा। तेरी आंखों का तेज मुझसे सहा नहीं जाता।"

सारथि ने पूछा, "महाराज ! आप किसके साथ बात कर रहे हैं ?"

रावण ने कहा, "सारथि ! तू अपना रथ हांके चल। भाई, दुनिया दौड़ी जा रही है, ऐसे समय मनुष्य का मन क्या-क्या विचार करता है, सो कौन जान सकता है ? खैर, यह तो मैंने योंही कहा।"

रथ कुछ ही दूर गया था कि उसका एक परदा हवा से खुल गया। इस पर रावण बोल उठा, "ओ ब्राह्मणो ! मुझे मत सताओ। आपके लहू से भरा घड़ा एक हजार हाथ गहरा गड़वाया हो, तो भी उसकी दुर्गंध तो आये बिना नहीं रहती ! ऐसी दुर्गंध ने तो बड़े-बड़े महाराज्यों पर विष के छींटे बरसाए हैं। मैंने आपकी पवित्रता और गरीबी का मूल्य मांगा, इसके लिए आप मुझे क्षमा करो !"

सारथि ने पूछा, "महाराज ! आप किससे बात कर रहे हैं ?"

रावण ने कहा, "सारथि ! तू अपना रथ हांके चल। आज इतने वर्षों के बाद रावण को अपने अंतर्मन के साथ बात करने का अवसर मिला है। तू उसमें बाधक मत बन। मैं किससे बात कर रहा हूं, संसार में किसी को इसका पता चल नहीं पायेगा। सारथि ! लंका वापस पहुंचने पर मैं तुझे लंका का आधा राज्य दूंगा।

सारथि बोला, "महाराज ! अब हम रामचंद्र के बिलकुल निकट आ पहुंचे हैं।"

सारथि ने रथ को ठीक रामचंद्र के सामने लाकर खड़ा कर दिया। तभी रावण गरजा और बोला, "रामचंद्र, अयोध्या के कुमार ! तू रावण को इतना डरपोक मत समझ कि घायल होने पर वह भागे और लंका पहुंच जाय। मैं कैसा भी क्यों न होऊं, आखिर तो लंका का राजा हूं ! मेरा अपना स्वाभिमान है। मेरी अपनी एक प्रतिष्ठा है। मेरे सिर एक बड़े राष्ट्र के कल्याण की जिम्मेदारी है।"

रामचंद्र ने प्रश्न किया, "रावण ! तुझमें आज यह समझदारी कहां से आ गई?"

रावण बोला, "रामचंद्र ! क्या तू यह मानता है कि मुझमें यह समझदारी तेरे दर्शन से आई है ? रामचंद्र ! आजतक मैंने अनेक वीरों से युद्ध किये हैं, कइयों के कड़े प्रहार सहन किये हैं, कइयों को पृथ्वी पर सुलाया है; किंतु आज जब तेरे बाण मेरी ओर आते हैं, तो कुछ नया ही अनुभव करता हूं।"

रामचंद्र ने कहा, "रावण ! तू सीता को चुराकर ले आया, तुझे यह क्या सूझा? अनुभवी लोग कहते हैं कि जब मृत्यु समीप आती है, तो मनुष्य के हाथों ऐसा अनुचित काम हो जाता है। रावण ! मुझे तुम राक्षसों को जड़मूल से मिटाना है। मैंने अपना सारा जीवन ही इस काम में बिता दिया है। रावण ! अब मैं तुझे छोड़ूंगा नहीं।"

रावण हंसकर बोला, "रामचंद्र ! तू कैसी पागलपन-भरी बातें करता है ? क्या रावण तुझ-जैसे के हाथ मरेगा ? हां, मुझे तुझसे डर अवश्य लगता है। लेकिन यह तो व्यर्थ का डर है। रामचंद्र ! शायद तू मुझे मार डाले, लेकिन क्या मेरे मर जानें से सारे संसार के राक्षस अदृश्य हो जाने

वाले हैं ? रामचंद्र ! जबतक यह जगत जगत बना रहेगा, तबतक हम राक्षस भी इसमें रहने वाले हैं। राक्षस-विहीन जगत की कल्पना करनेवाले लोग मूर्ख हैं।"

रामचंद्र ने कहा, "रावण ! तू अब भी समझ जा। सीता मुझे वापस दे दे।"

रावण बोला, "रामचंद्र ! तूने अभी रावण को पहचाना नहीं। जब-तक रावण जीवित है, तू सीता की आशा मत रख। सीता के लिए यातो रावण है, और नहीं तो राम। राम और रावण दोनों एक साथ पृथ्वी- पर टिक नहीं सकते।"

ऐसा कहकर रावण ने अपने बाण छोड़ने शुरू किये। रामचंद्र तो तैयार ही थे। उन्होंने रावण को अनेक बाण मारकर घायल कर दिया और अंत में अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ा, जिससे रावण गिर गया।

रावण ने कहा, "सारथि ! अब रावण लंका तक पहुंच नहीं सकता।"

सारथि का गला रुंध गया। वह बोला, "महाराज ! आप यह क्या कह रहे हैं ?"

रावण ने कहा, "मैं सच कह रहा हूं। सारथि ! मुझे पकड़कर रख। रामचंद्र, अयोध्याकुमार ! घड़ी भर पहले तू मुझे जितना कड़ुवा लगता था, इस समय उतना ही मीठा लग रहा है। कुमार ! तेरे इस अंतिम बाण से मेरी आत्मा पर पड़ा कितना सारा भार कम हो गया है ? इन चौदह ब्रह्मांडों के भार ने मुझे बिलकुल ही कुचल डाला था। क्या सभी सम्राट अपने साम्राज्य के बोझ तले इसी प्रकार दबकर मरते होंगे ? ब्रह्मदेव, आज यह मौत जितनी मीठी लग रही है उतनी मीठी यह है, मुझे इसका पता होता तो मैं अमरता मांगता ही नहीं। सारे संसार के तपस्वी लोगो ! कभी भूलकर भी अमरता मत मांगना। इतिहासवेत्ता तो मुझसे बार-बार कहा करते थे कि संसार में किसी की अमरता टिकी ही नहीं; लेकिन मैं उन लोगों की बात को हंसकर उड़ा देता था। आज उनके वचन मुझे सोलहों आने सच लग रहे हैं। भाई विभीषण ! मैंने तेरी बात नहीं मानी। सीता ! तुझ जैसी योगमाया को मैं पहचान नहीं पाया। तेरे शील के अडिग पर्वत से टकरा कर आज रावण की नैया चूर-चूर हो चुकी है।

रामचंद्र ! अनेकानेक ऋषि मेरे पास आये और मुझसे कह गए कि रामचंद्र युगपुरुष हैं, पर मैंने उनकी बात मानी नहीं। आज तेरे समान युग-पुरुष के हाथों मेरी मृत्यु हो रही है, इससे अधिक सौभाग्य मेरा और क्या हो सकता है ? सारथि ! लंका में जाकर मेरे महल की बड़ी घंटी बजाना और घोषणा करना कि रामचंद्र एक साधारण मनुष्य नहीं, बल्कि युग-पुरुष हैं। ऐसे युग-पुरुष के हाथों रावण की मृत्यु हुई है। इससे आज ब्रह्मा का वर-दान सफल बना है। सारथि ! मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा रहा है। तू मुझे रथ से नीचे उतारकर धरती पर सुला दे। धरती माता तीनों लोकों को त्रस्त करने वाले रावण को जमीन का थोड़ा टुकड़ा देने से इंकार नहीं करेगी। भाई ! मैं चला, मंदोदरी..."

हजारों राक्षसियों के साथ और हरण करके लाई गई देव-दानव कन्याओं के साथ विहार करनेवाला रावण आज धरती पर अकेला सोया था। उसके चारों ओर रात का अंधेरा छा गया।

दूर-सुदूर दक्षिण का सागर गर्जन कर रहा था। सोने की लंका के गढ़ पर से विधवाओं के विलाप की ध्वनि काले अंधियारे को चीरकर रामचंद्र की छावनी से टकरा रही थी। □

यह पुस्तक

चौंतीस साल पहले जब राजबंदी के रूप में मैं नागपुर के केन्द्रीय कारागार में बंद था, मैंने स्व० नानाभाई भट्ट द्वारा गुजराती में लिखे रामायण के पात्रों की कथाओं का मौखिक हिंदी अनुवाद अपने साथियों को सुनाया तो वे बहुत प्रभावित और प्रेरित हुए। उनके आग्रह पर मैंने, बाद में, इन पात्रों का हिंदी रूपांतर किया।

मुझे हर्ष है कि रामायण के पात्रों की अति मधुर और मर्मस्पर्शी कथाएं हिंदी के पाठकों को सुलभ हो रही हैं।

गुजराती के पाठक पिछले पैंतीस-चालीस वर्षों से इन अनूठी और अर्थ-गम्भीर कथाओं का जैसा गहन रसास्वादन करते आ रहे हैं, हिंदी के पाठकों के मन में भी इनके लिए वैसा ही रस और रुचि जागे, यही अनुवादक के नाते मेरी नम्र भावना है।

—काशिनाथ त्रिवेदी

मंडल का
आध्यात्मिक साहित्य

□□

१. गीता-माता
२. अनासक्ति-योग
३. गीता-बोध
४. गीता-पदार्थकोश
५. गीता की महिमा
६. भागवत कथा
७. भगवद्गीता
८. भागवत धर्म
९. विष्णु-सहस्रनाम
१०. बुद्ध-वाणी
११. श्री अरविन्द का जीवन-दर्शन
१२. रामायणकालीन संस्कृति
१३. भारत सावित्री (खंड १, २, ३)
१४. तुलसी-रामकथा माला (चार भाग)
१५. रामायण के पात्र (भाग १-२)